रंजीतसिंह

लेखक

श्री सीताराम कोहली

अनुवादक

श्री रामचंद्र टंडन

१९३९

हिंदुस्तानी एकेडेमी

संयुक्त प्रांत, इलाहाबाद

प्रकाशक
हिंदुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद

मूल्य एक रुपया

मुद्रक
नारायण प्रसाद, नारायण प्रेस, इलाहाबाद

अनुवादक का वक्तव्य

गवर्नमेंट इंटरमिडिएट कालिज, होशियारपुर (पंजाब) के वर्तमान प्रिंसिपल और गवर्नमेंट कालिज, लाहोर के भूतपूर्व प्रोफ़ेसर श्री सीताराम कोहली एम्० ए० सिख इतिहास के विशेषज्ञ हैं। सन् १९१५ में पंजाब यूनिवर्सिटी ने उन्हें महाराजा रंजीतसिंह की सरकार के रेकार्डों को ठीक करने के लिए विशेष रूप से नियुक्त किया था। ख़ालसा सरकार के चालीससाला काग़ज़ात पंजाब पर अंग्रेज़ों के अधिकार प्राप्त करने के समय, अर्थात् सन् १८४९ ई० से पंजाब सरकार के सेक्रेटेरियट के दफ़्तर में ज्यों के त्यों पड़े हुए थे। चार वर्षों के परिश्रम से कोहली महोदय ने इन सब को क्रम दिया, और प्रत्येक विभाग के संपूर्ण पत्रों की सूची तिथि तथा नंबरवार, टिप्पणी-सहित तैयार की। इसे पंजाब सरकार ने 'ख़ालसा दरबार रेकार्ड्स' के नाम से दो जिल्दों में प्रकाशित किया है। इन्हीं खोजों में व्यस्त रहते हुए लेखक को महाराजा रंजीतसिंह के इतिहास से विशेष दिलचस्पी उत्पन्न हो गई। अतएव इस विषय पर उन्हों ने प्राय: सभी प्रकाशित पुस्तकें पढ़ीं और अप्रकाशित सामग्री की भी छान-बीन की।

परिणाम-स्वरूप उन्हों ने महाराजा रंजीतसिंह पर एक पुस्तक लिखी जो उर्दू में हिंदुस्तानी एकेडेमी द्वारा सन् १९३३ में प्रकाशित हो चुकी है। प्रस्तुत पुस्तक उसी का हिंदी रूपांतर है।

हिंदी पुस्तक के इस समय प्रकाशित होने का एक विशेष सुयोग है। आगामी जून मास में महाराजा रंजीतसिंह के मृत्यु की शताब्दी मनाई जायगी। इस अवसर पर यह प्रामाणिक पुस्तक पाठकों को हिंदुस्तान के इतिहास के एक अमर चरित्र की स्मृति दिलाने में सहायक होगी।

अनुवादक

२५ मार्च, १९३८

विषय-सूची

चित्र

नक़शा





महाराजा रंजीतसिंह

पहला अध्याय

सिख धर्म का आरंभ और गुरुओं का वर्णन

सिख धर्म की नींव

सिख धर्म की नींव गुरु नानक देव ने पंद्रहवीं सदी के अंत में डाली थी। यह महात्मा सन् १४६६ ई० में पैदा हुए। इतिहास के अध्ययन से मालूम होता है कि इस समय में हमारे देश में भक्ति-मत की लहर पूरे ज़ोरों पर थी और देश के प्रत्येक भाग में धार्मिक नेता इस नए मत का प्रचार कर रहे थे। भक्त कबीरदास, स्वामी वल्लभाचार्य, महात्मा चैतन्य इत्यादि इन्हीं दिनों अपनी धार्मिक शिक्षा से जनता को लाभ पहुँचा रहे थे। भक्ति-मत की शिक्षा बड़ी सीधी-सादी थी, जिस का सारांश यह था कि 'ईश्वर एक है और सब जगह उपस्थित है।' लोग उसे भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं। परंतु उसकी आज्ञाएं सब के लिए एक-सी हैं। वेद या क़ुरान, प्रत्येक धार्मिक पुस्तक उसी की तरफ़ से है। इस लिए उस का सन्मान करना प्रत्येक मनुष्य का धर्म है। उस के दरबार में ज़ात-पाँत का कोई भेद नहीं; चाहे कोई शूद्र हो या ब्राह्मण, हिंदू हो या मुसलमान प्रत्येक व्यक्ति अपने अच्छे कर्मों के कारण ईश्वर के सामने पहुँच सकता है। इस मत के पथ-प्रदर्शक शारिरिक तपस्या और पूजा के आडंबरों में विश्वास न रखते थे, और न संसार-त्याग को ही अच्छी दृष्टि से देखते थे। इस संबंध में यह बात

विशेष रूप से उल्लेख्य है कि इन सभी प्रचारकों ने अपने-अपने देश की, जन साधारण की भाषा में अपने विचारों का प्रचार किया जिन्हें प्रत्येक आदमी सहज में समझ सकता था।

पहले पाँच गुरु

गुरु नानक देव ने भी प्रायः इन्हीं विचारों की शिक्षा दी। उन की मृत्यु सन् १५३८ ई० में हुई। उन के स्थान पर गुरु अंगद गद्दी पर बैठे, जिन्हों ने नानक के कार्य को बड़ी तत्परता से ग्रहण किया। गुरु अमरदास तीसरे गुरु थे जो सन् १५५२ ई० से १५७३ ई० तक गद्दी पर स्थित रहे। इन के बाद इन के दामाद रामदास जी गुरु गद्दी पर सुशोभित हुए। सन् १५८१ ई० में इन की मृत्यु हुई। इन के बेटे अर्जुन देव ने गद्दी सँभाली। तब से सिख गुरुओं की गद्दी इसी वंश में चली आई।

धार्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति

सिख धर्म की नींव पड़े इस समय सत्तर वर्ष हो चुके थे। इस बीच में यह भली-भाँति जड़ पकड़ चुका था। गुरु अंगद को न केवल आत्मिक सिद्धि प्राप्त थी वरन् यह भाषा-विज्ञ भी थे। उन्हों ने गुरुमुखी अक्षर निकाले। इसी लिपि में गुरु नानक जी की जीवनी लिखी गई। गुरु रामदास ने अमृतसर[1] शहर की नींव रक्खी जो बाद में सिखों का धर्म-

[1] शहर अमृतसर के लिए भूमि अकबर ने दी थी। अकबर की धार्मिक सहनशीलता की नीति के कारण गुरु रामदास का सम्राट् से अच्छा व्यवहार था। सिख मत की बेरोक-टोक आरंभिक उन्नति का एक यह भी कारण है कि उस समय बाबर से लेकर अकबर तक मुग़ल बादशाहों की धार्मिक नीति उग्र न थी।

क्षेत्र और केंद्रीय स्थल बन गया। गुरु अर्जुन देव ने ग्रंथ साहब का संग्रह किया। इस प्रकार सिखों के लिए एक नई भाषा, एक पवित्र स्थल और एक धार्मिक ग्रंथ प्राप्त हो गए। सारांश यह कि इस मत को अग्रसर करने और दृढ़ बनाने के सब सामान एकत्र हो गए। गुरु के अनुयायी संख्या में नित्य बढ़ने लगे जिन के भेंट और चढ़ावे से गुरु साहब की वार्षिक आय भी पर्याप्त हो गई, और उन्हों ने धार्मिक और सांसारिक दृष्टि से समाज में ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया।

गुरु अर्जुन देव का वध—१६०६ ई० में

गुरु अर्जुन देव का होनहार बेटा जो बाद में गद्दी पर बैठा बहुत सुंदर और गुणी बालक था। अतएव पंजाब प्रांत के वज़ीर माल दीवान चंदूशाह ने उस के साथ अपनी बेटी का विवाह करने की इच्छा प्रकट की। गुरु अर्जुन देव ने किसी कारण इसे स्वीकार न किया। इस पर दीवान चंदूशाह इतना क्रुद्ध हुआ कि गुरु जी का जानी दुश्मन बन गया। संयोगवश चंदूशाह को बदला लेने का अवसर भी जल्दी ही हाथ लगा। जहाँगीर के गद्दी पर बैठते ही उस के बेटे शाहज़ादे ख़ुसरो ने बाप के विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा किया और आगरे से भाग कर लाहौर आया। गोंदवाल में वह गुरु साहब की सेवा में भी उपस्थित हुआ। उन्हों ने शाहज़ादे के साथ सहानुभूति प्रकट की। चंदूशाह के षड्यंत्र से यह बात सम्राट् के कानों तक पहुँचाई गई। जहाँगीर ने, जो सिख मत के पहले से ही विरुद्ध था, गुरु साहब पर दो लाख रुपए जुरमाना कर दिया। परंतु उन्हों ने जुरमाना देने से

स्पष्ट रूप से इन्कार कर दिया। परिणाम यह हुआ कि उन का वध करा दिया गया।[1]

गुरु अर्जुन देव का वध सिखों के इतिहास में बड़ा महत्त्व रखता है। इस घटना का उन के बाद के इतिहास पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। वरन् यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि यह उन अत्याचारों के क्रम का आरंभ था जिस के कारण इस धार्मिक और सुधारक मत को विवश होकर सैनिक बाना पहनना पड़ा।

बाद के चार गुरु—सन् १६०६ ई० से १६८५ ई० तक

गुरु अर्जुन देव के बाद उन के पुत्र गुरु हरगोविंद गद्दी पर बैठे। गुरु हरगोविंद को अपने पिता के वध का शोक अवश्य था फिर भी कुछ दिनों तक सम्राट् जहाँगीर के साथ उन का संबंध अच्छा रहा। कुछ काल बाद जहाँगीर ने उन के पिता के जुरमाने का दो लाख धन प्राप्त करना चाहा, परंतु उन्हों ने स्पष्ट जवाब दे दिया। इस लिए सम्राट् ने उन्हें ग्वालियर के क़िले में बंदी कर दिया। कुछ समय बाद उन्हें जेल से मुक्ति मिली। अब उन्हों ने अपने पंथ को कमज़ोर दशा पर ध्यान दिया और समय की आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर थोड़ी-सी फ़ौज नौकर रख ली, और अपने शिष्यों को भी हथियार रखने की आज्ञा दी।

यह सिक्खों के सब से पहले गुरु थे जिन्हें फ़ौजी जीवन ग्रहण करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। इन्हें अपने जीवन-काल में पंथ के

---

[1] 'तुज़ुक-जहाँगीरी,' पृष्ठ ३५ (नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ)

अस्तित्व को बनाए रहने के निमित्त तीन बार मुग़ल सूबादारों से युद्ध करना पड़ा। इन तीनों युद्धों में गुरु हरगोविंद का पल्ला भारी रहा। गुरु हरगोविंद सन् १६४४ ई० में इस असार संसार से प्रयाण कर गए। उन के बाद उन के पोते गुरु हरराय गद्दी पर बैठे।[१] गुरु हरराय ने अपने जीवन का अधिकांश आराम व चैन से बिताया। सन् १६६१ ई० में उन की मृत्यु पर उन का छोटा लड़का हरकिशन गद्दी पर बैठा। परंतु उस की मृत्यु थोड़े ही समय में हो गई। सन् १६६५ ई० में गुरु तेग़ बहादुर ने गद्दी सँभाली। दस साल के बाद सन् १६७५ ई० में औरंगज़ेब ने इन्हें दिल्ली बुला कर क़त्ल करा दिया।

गुरु गोविंद सिंह—सन् १६७५ ई० से सन् १७०८ ई० तक

गुरु तेग़ बहादुर के बाद उन का बेटा गोविंदराय (गोविंद सिंह) गद्दी पर शोभायमान हुआ। गुरु गोविंद सिखों के दसवें और अंतिम गुरु थे। उस समय उन की अवस्था केवल पंद्रह वर्ष की थी। वह बाल्यावस्था से ही बड़े सुयोग्य और दूरदर्शी थे। पिछले सत्तर वर्ष (सन् १६०६ ई० से सन् १६७५ ई०) में उन के वंश और पंथ पर जो कठिनाइयां पड़ीं वह सब उन के सम्मुख थीं। उन के परदादा गुरु अर्जुन देव और दादा गुरु हरगोविंद पर जहाँगीर ने जो कष्ट पहुँचाए थे वह उन से बे-ख़बर न थे। सिख इन घटनाओं से पहले ही बिगड़ चुके थे अब गुरु तेग़ बहादुर की हत्या ने उन्हें सरकार से और भी विमुख और

[१] गुरु हरगोविंद के पाँच बेटे थे। गुरुदत्त बड़ा बेटा था जो अपने पिता की ज़िंदगी में ही मृत्यु पा चुका था। हरराय इसी का बेटा था। एक बेटे का नाम तेग़ बहादुर था जो बाद में १६६५ ई० में गद्दीनशीन हुआ।

शंकित कर दिया। औरंगज़ेब की धार्मिक नीति हिंदुओं के लिए तो विष का प्रभाव रखती थी, इस लिए हिंदू प्रजा उस से अप्रसन्न थी। दक्षिण में शिवाजी हिंदू-धर्म के नाम पर प्रोत्साहन दे कर हिंदुओं को अपने झंडे के नीचे एकत्र कर रहा था।

नई नीति

समय की गति देख कर गुरु गोविंद सिंह ने भी ऐसी ही तैयारियां आरंभ कर दीं। गुरु गोविंद की अवस्था अधिक न थी। इस के अतिरिक्त सिखों में स्वयं आपस में बहुत मेल न था। औरंगज़ेब क्रोध की दृष्टि से सिखों को देखता था। इन बातों पर विचार कर गुरु गोविंद ने इसे ही उचित समझा कि कुछ समय के लिए पहाड़ी प्रदेश में शरण ली जाय। अतएव वह ज़िला अंबाले के निकट रियासत सिरमौर के पहाड़ों में जा बसे और बीस वर्ष तक बड़ी शांति-पूर्वक अपने कार्य में तत्परता से सन्नद्ध रहे। इस थोड़े समय में उन्हों ने अपने शिष्यों को उस महान् जातीय सेवा के लिए बिल्कुल तैयार कर लिया, जिसे कि वह पूरा करना चाहते थे। उन्हों ने पंथ में कई नए नियम चलाए। अपने शिष्यों का नाम सिख के स्थान पर सिंह रक्खा। उन्हें युद्ध-विद्या में निपुणता प्राप्त करने की आज्ञा दी। सिख-पंथ को ख़ालसा की पदवी दी—और यह बात उन के मन में दृढ़ कर दी कि ईश्वर का हाथ तुम्हारे सिर पर है, और जब तुम धर्म और देश की रक्षा में लड़ोगे तो विजय की देवी अवश्य तुम्हारे साथ रहेगी।

पहाड़ी राजाओं और मुग़लों से युद्ध

इसी बीच में गुरु गोविंद सिंह ने जमुना और सतलज नदी के बीच के पहाड़ी प्रदेश में अपनी रक्षा के लिए पोंठ, चमकोर, और मखवाल

इत्यादि कुछ दृढ़ दुर्ग भी निर्माण कर लिए थे। सन् १६६५ में गुरु जी ने हिंदौड़, नाहन, और नालागढ़ इत्यादि के पहाड़ी हिंदू राजाओं को जातीय युद्ध में भाग लेने के लिए निमंत्रित किया। परंतु मुग़ल बादशाहों को कर देने वाले राजाओं से ऐसी उम्मीद कब हो सकती थी? प्रत्युत इस के पहाड़ी राजाओं ने मिल कर गुरु जी के साथ युद्ध आरंभ कर दिया। औरंगज़ेब आरंभ में उन की अधिक सहायता न कर सका क्योंकि वह स्वयं दक्षिण की झंझटों में फँसा हुआ था, जहां मरहठों ने उस की फ़ौज का नाक में दम कर रक्खा था। इस लिए इन राजाओं की हार हुई। अब पंजाब के सूबेदारों ने इन की सहायता के लिए फ़ौज भेजी। यह युद्ध ग्यारह-बारह वर्षों तक चलता रहा। इन युद्धों में गुरु जी के चारों बेटे और बहुत से जान निछावर करने वाले शिष्य काम आए। अंत में सन् १७०७ ई० में गुरु जी पंजाब छोड़ कर दक्षिण चले गए और वहीं गोदावरी नदी के तट पर अपचल नगर स्थान पर अड़तालीस वर्ष की अवस्था में इस संसार से यात्रा कर गए।[१]

गुरु गोविंद सिंह की कृतियों का परिणाम

गुरु गोविंद सिंह ने सिखों में स्वतंत्रता की नवीन स्फूर्ति संचारित कर दी थी। सिखों में त्याग का भाव पहले से ही मौजूद था क्यों कि सभी सिख गुरु स्वार्थ त्याग के अच्छे उदाहरण थे। इस लिए हर एक सिख पंथ की सेवा और रक्षा को अपना प्रथम कर्तव्य समझते थे। परंतु अब गुरु गोविंद सिंह के व्यक्तित्व ने सोने पर सोहागे का काम

[१] गुरु गोविंद सिंह के एक पठान नौकर ने अवसर पाकर उन के सीने में छुरी भोंक दी जिस के घाव से वह कुछ दिनों के बाद मर गए।

किया। इन की फ़ौजी शिक्षा ने सिखों के चंचल हृदयों के लिए एक नया द्वार खोल दिया। इस सैनिक भाव ने सिखों को देश और धर्म की स्वतंत्रता के लिए मरने-मारने के लिए तैयार कर दिया। गुरु गोविंद सिंह स्वयं त्याग व बहादुरी की जीती-जागती मूर्ति थे। और यही भाव उन्हों ने अपने शिष्यों के हृदयों में कूट-कूट कर भर दिया था।

सूरा सो पहचानिए जो लड़े दीन के हेत।
पुर्ज़ा-पुर्ज़ा कट जाए पर कभू न छोड़े खेत॥

अतएव इस स्वतंत्रता के युद्ध में गुरु गोविंदसिंह ने अपने चारों बेटे और सैकड़ों भक्त शिष्यों को बलिवेदी पर चढ़ाया। यही वसीयत और यही फ़ौजी उत्साह था जो आड़े समय में सिखों के काम आया और जिस ने उन्हें जीवित रक्खा। जिस समय न कि सिक्खों का कोई गुरु था और न कोई राजनीतिक नेता ही था और दूसरी ओर उन पर तत्कालीन शासन कठिन से कठिन त्रास दे रहा था, उस कठिन समय में भी सिखों ने साहस को हाथ से न जाने दिया, बराबर युद्ध जारी रक्खा और अंत में पंजाब में अपना शासन स्थापित करने में वे सफल हुए। यह सब गुरु गोविंद सिंह के अथक प्रयत्न का परिणाम था।

बंदा बहादुर—सन् १७०८ ई० से सन् १७१६ ई० तक

यद्यपि गुरु गोविंदसिंह सिखों के अंतिम गुरु थे परंतु वह राजनीतिक कार्यों को चलाते रहने के उद्देश्य से बंदा बैरागी को अपना उतराधिकारी बना गए। बंदा बैरागी ज़ात का राजपूत और जम्मू की रियासत पूँछ का निवासी था। जवानी में ही घर-बार छोड़ कर फ़क़ीर हो गया था। फ़िरता-

फिराता गोदावरी नदी के किनारे जा पहुँचा था और अपचल नगर के निकट ही ठहरा था। यहीं गुरु गोविंद सिंह ने उस से भेंट की। बंदा कुछ दिनों गुरु जी की सेवा में रहा। गुरु जी आदमी को पहचानने में निपुण थे। शीघ्र ताड़ गए कि इन भगवे वस्त्रों में राजपूती ख़ून और अनुपम त्याग छिपा हुआ है अर्थात् गूदड़ों में लाल मौजूद है। अतएव बंदा बैरागी को देश-सेवा के लिए प्रोत्साहन दिया, और उसे पंजाब में जा कर अपना अपूर्ण राजनीतिक कार्य पूरा करने की आज्ञा दी। बंदा फ़ौरन तैयार हो गया। और गुरु गोविंद सिंह जी से उन के शिष्यों के नाम पत्र ले कर पंजाब पहुँचा।

बंदा का उत्साह

फ़ौजी दृष्टि से पंजाब की दशा पहले की अपेक्षा ख़राब थी। शाही फ़ौज तीस साल से दक्षिण की लड़ाइयों में लगी हुई थी। औरंगज़ेब, जो बड़ा ज़बरदस्त शाहंशाह और अनुभवी सेनापति था, मृत्यु का ग्रास बन चुका था। पंजाब में कोई योग्य फ़ौजी अफ़सर मौजूद न था। बंदा युद्ध की बातों में निपुण था, और बहुत ऊँचे दर्जे का सेनापति था। उस ने दो साल के भीतर ही झेलम से सरहिंद तक सारे प्रदेश को उलट-पलट दिया और उस पर अधिकारी बन बैठा।

शाही फ़ौज की बेचैनी

इस के बाद बंदा ने सिरमौर की पहाड़ी रियासत पर जो जमुना और सतलज नदियों के बीच में स्थित है अधिकार कर लिया। जब यह दिल हिलाने वाले समाचार बहादुर शाह दिल्ली-सम्राट् को निरंतर मिले तो वह बंदा को दमन करने के लिए चला और बड़ी शीघ्रता से पंजाब पहुँचा।

इस बीच में बंदा नाहन के क़िले से भाग निकला और जम्मू के पहाड़ी प्रदेशों में उस ने शरण ली। बहादुर की आयु ने धोका दिया और फ़रवरी सन् १७१२ ई० में वह लाहौर में चल बसा। सम्राट् की मृत्यु पर उस के बेटों में परंपरा के अनुसार तख़्त प्राप्त करने के लिए युद्ध छिड़ गया। बहादुर शाह का बड़ा बेटा जाँदार शाह क़रीब एक साल तक गद्दी पर बैठा रहा परंतु सन् १७१३ ई० में वह भी अपने भतीजे फ़र्रुख़सियर के हाथों क़त्ल हुआ।

बंदा का दमन

शाही वंश का यह घर का कलह सिखों के लिए दैवी सुअवसर प्रमाणित हुआ। बंदा इस अवसर को अच्छा जान कर मैदानी प्रदेश में आ पहुँचा। रावी और व्यास नदी के बीच गुरदासपुर के निकट एक बड़ा क़िला तैयार किया। और वहां से सरहिंद के इलाक़े में लूट-मार आरंभ की। सम्राट् फ़र्रुख़सियर जब सन् १७१६ में घरेलू झगड़ों से मुक्त हुआ तो उस ने बंदा की तरफ़ ध्यान दिया। उस ने अपने तूरानी सेनापति अब्दुस्समद ख़ां को भारी तोपख़ाने के साथ बंदा को दमन करने के लिए भेजा। सिखों ने बड़ी बहादुरी से उस का सामना किया। परंतु अंत में बंदा और उस के साथी गुरदासपुर के क़िले में घिर गए और बाद में गिरफ़्तार कर लिए गए। बंदा एक लोहे के पींजड़े में बंद कर के दिल्ली लाया गया, जहां उसे बड़ी तकलीफ़ देकर क़त्ल कर दिया गया। बंदा ने गुरु गोविंद सिंह के राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति में जी जान से प्रयत्न किया। उस के नेतृत्व में सिखों ने सैनिक दृष्टि से प्रत्यक्ष उन्नति की। लगातार आठ बरस तक यह लोग योद्धाओं की भाँति शाही फ़ौजों

का मुक़ाबला करते रहे और इस परीक्षा में यह पूरे उतरे। बंदा की उच्च कोटि की सिपहसालारी ने इन में नई जागृत उत्पन्न कर दी। झेलम से सरहिंद तक का प्रदेश लगभग एक साल तक सिखों के अधीन रहा। देश की व्यवस्था तथा शासन के लिए बंदा बहादुर ने मुसलमान हाकिमों के बजाय सिख शासक नियत किए जिस से सिखों को मुल्की व्यवस्था में भी पूर्ण-रूप से शिक्षा मिल गई। इस थोड़े समय में सिखों ने दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति की, और बंदा ने अपने गुरु के विश्वास को रुपए में सोलह आने ठीक सिद्ध कर दिखाया।



दूसरा अध्याय

पंजाब में खालसा राज्य का स्थापित होना

(सन् १७१६ ई० से सन् १७६४ ई० तक)

बंदा बहादुर के बाद सिखों की दशा

बंदा बहादुर की हत्या के अनंतर सिखों का कोई नेता न रहा। अब्दुस्समद ख़ां ने भी हिंसा और दमन की नीति ग्रहण कर ली। इस लिए सिखों को विवश होकर पंजाब के शहर छोड़ कर पहाड़ों में शरण लेनी पड़ी। जो सिख इन तकलीफ़ों को सहन कर सके वह सिख मत के प्रकट चिह्नों को छोड़ कर हिंदू समाज में मिल-जुल गए। अतएव बीस साल तक सिखों को कठिन से कठिन अत्याचार सहन करने पड़े। लेकिन गुरु के शिष्यों ने बड़े साहस से इन्हें सहन किया और मस्तक पर ज़रा-सा बल न आने दिया। गुरुओं के बलिदान सदा उन के ध्यान में रहते थे। यही स्मृति उन्हें पंथ की रक्षा और सेवा के लिए सदा तत्पर रखती थी। ज्यों ही इन्हें अवसर मिलता था यह लोग लूट-मार के लिए मैदानों में आ मौजूद होते थे। सन् १७३९ ई० में पहली बार उन्हें ऐसा अवसर हाथ आया। इस साल ईरान के शाह नादिर शाह ने हिंदुस्तान पर आक्रमण किया और दिल्ली-सम्राट् को घोर पराजित कर दिल्ली नगर को ख़ूब लूटा। इस हलचल से लाभ उठा कर सिख जवान पहाड़ी प्रदेशों से बाहर निकल खड़े हुए और उन्हों ने लूट-खसोट का काम शुरू कर दिया। इन में से कुछ ने

नादिर शाह के पड़ाव पर भी छापा मारा और बहुत-सा माल और असबाब ले कर भाग गए।

सिख जत्थों की नींव

इस प्रकार छापा मारने में इन्हें बहुत सफलता प्राप्त हुई। इन की हिम्मत बढ़ गई। और यह लोग बीस-बीस पचास-पचास के जत्थे बना कर इधर-उधर घूमने लगे। इन्हें जहां अवसर मिलता वहां ही हाथ साफ़ करते। रुपया-गहना, माल-मवेशी इत्यादि ले कर ग़ायब हो जाते। यह सीधी-सादी ज़िंदगी बसर करते थे। हर एक सिख के पास एक तेज़ चलने वाला घोड़ा, एक तलवार, एक बरछी और दो ओढ़ने के कंबल होते थे। लूट का रुपया यह लोग नष्ट न करते वरन् घोड़े और अस्त्र ख़रीदने में व्यय किया करते थे। जिस का परिणाम यह हुआ कि बहुत से मनचले नौजवान सिखों के जत्थों में भरती होने लगे। प्रत्येक नए रँगरूट को एक घोड़ा, एक तलवार, दो कंबल मिल जाते थे। इस तरह सिख जत्थों की संख्या बढ़नी आरंभ हो गई।

सिख जत्थों की प्रबलता का भेद

प्रत्येक जत्थे का एक सरदार होता था, जिसे जत्थादार कहते थे। प्रत्येक जत्थादार अपने सिपाहियों में लूट का माल बराबर-बराबर बाँट देता था। इस कारण जत्थे में कोई फूट न होने पाती थी और सब सिपाही जत्थे से लगे रहते थे। इस के अतिरिक्त इन जत्थों के सदस्य एक ही धर्म के अनुयायी थे और पंथ की रक्षा प्रत्येक आदमी अपना परम धर्म समझता था। इस लिए प्रत्येक जत्थादार दूसरे की सहायता करना अपना धर्म समझता था और इस के लिए हरदम तैयार रहता

था। यह सभी जत्थे केवल एक उद्देश्य के साधन में संलग्न थे, और वह पंथ के बल को बढ़ाना और दृढ़ करना था।

दिल्ली-साम्राज्य की अनिर्वचनीय दशा

इन दिनों दिल्ली का साम्राज्य बहुत कमज़ोर हो चुका था। देश में चारों ओर अवनति के चिह्न लक्षित होते थे। देश में कोई ऐसी प्रबल शक्ति न थी जो देश की दशा को सुधार सके। दिल्ली साम्राज्य के भाग्य का अस्त हो चुका था। ऐसी दशा में दिल्ली साम्राज्य के सूबादारों को अपने-अपने स्वतंत्र राज्य स्थापित करने की चिंता लगी हुई थी। वह दिल्ली के शाह से अलग हो कर अपने-अपने प्रदेशों को सुदृढ़ करने में लगे। अतएव दक्षिण के सूबेदार आसफ़जाह निज़ामुलमुल्क ने हैदराबाद में अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया। अलीवर्दी खां ने बंगाल में अधिकार कर लिया। नवाब वज़ीर अवध प्रांत में बलशाली बन बैठा। बाद में यही प्रबल रियासतें बन गईं। दिल्ली-साम्राज्य के सूबेदारों के अतिरिक्त मरहठे भी मुग़ल-साम्राज्य को दबाने के प्रयत्न में लगे हुए थे। मरहठों ने अपने आंतरिक भेदों को दूर कर के इतना बल संचय कर लिया कि सन् १७१६ ई० में दिल्ली-सम्राट् ने एक शाही फ़रमान द्वारा उन्हें स्वतंत्र शासक स्वीकार कर लिया। इस के अनंतर मरहठों का साहस और भी बढ़ गया। उन्हों ने दिल्ली-साम्राज्य के प्रदेशों में भी लूट-मार आरंभ कर दी, और एक के बाद दूसरे प्रदेश को विजय करने लगे, और बीस वर्ष के भीतर ही भीतर उन्हों ने गुजरात, मालवा और बुंदेलखंड पर अपना पूर्ण अधिकार कर लिया। यहां तक कि सन् १७३७ ई० में मरहठा

सर्दारों ने दिल्ली के आस-पास के स्थानों को ख़ूब लूटा। सन् १७३९ में नादिर शाह के आक्रमण ने दिल्ली साम्राज्य की अवशेष शक्ति का भी अंत कर दिया। सिख नौजवानों के लिए यह अनुपम अवसर था। इस से उन्हों ने पूरा लाभ उठाया। रावी के तट पर एक-दो क़िले भी बना लिए। इन का साहस द्विगुणित हो गया और वह अधिकाधिक लूट-खसोट में लग गए।

एमनाबाद का युद्ध—सन् १७४५ ई०

सन् १७४५ ई० के लगभग सिखों का एक बड़ा टुकड़ा लाहौर के निकट एमनाबाद क़स्बे में एकत्र हुआ। लाहौर के सूबादार ने उन्हें भागाना चाहा और एक फ़ौज लेकर दीवान जसपत राय को उन के विरुद्ध भेजा। घमासान युद्ध हुआ। सिख बड़े उत्साह और पराक्रम से लड़े। एक साहसी सिख युवक दीवान के हाथी की दुम पकड़ कर ऊपर चढ़ गया और तलवार का ऐसा हाथ मारा कि दीवान का सिर तन से जुदा हो गया। सिर उठा कर नीचे छलांग मारी और दौड़ गया। यह देख कर दीवान की फ़ौज के पाँव उखड़ गए। और वह मैदान से भाग निकली। जसपत राय के क़त्ल का समाचार सुन कर उस के भाई दीवान लखपत राय के क्रोध का अंत न रहा, और वह एक बड़ी सेना ले कर सिखों पर टूट पड़ा। सिखों की हार हुई और सैकड़ों सिख योद्धा भागते हुए गिरफ़्तार कर लिए गए, और वह बड़ी निर्दयता से लाहौर में क़त्ल कर दिए गए। यह स्थान शहीदगंज के नाम से प्रसिद्ध है।

भाइयों को वैर

एमनाबाद की लड़ाई के बाद लाहौर के शासक ने सिखों पर अत्यंत

निर्दयता प्रदर्शित की। संभव था कि इन बेचारों को कठिनाई के वही दिन देखने पड़ते जो अब्दुस्समद ख़ां के समय में इन्हें देखने पड़े थे। परंतु सौभाग्यवश पंजाब के शासन के लिए नवाब ज़करिया ख़ां के बेटों, यहिया ख़ां और शाहनवाज़ ख़ां में झगड़ा आरंभ हो गया। अंत में शाहनवाज़ खां ने अपने बड़े भाई पर विजय पाई और उसे पंजाब से बाहर निकाल दिया। स्वयं सूबा मुल्तान और लाहौर पर अधिकारी हो गया। यहिया ख़ां सहायता के लिए सीधा दिल्ली पहुँचा। अब शाह-नवाज़ ख़ां डरा कि कदाचित् उसे सूबेदारी से पृथक् होना पड़े। अतएव अपनी रक्षा के विचार से अफ़ग़ानिस्तान के शाह अहमद शाह अब्दाली से उस ने पत्र व्यवहार आरंभ किया और उसे हिंदुस्तान पर आक्रमण करने के लिए निमंत्रित किया।

अहमद शाह अब्दाली के आक्रमण—(१७४८ से १७६१ ई० तक)

अहमद शाह अफ़ग़ानिस्तान के अब्दाली या दुर्रानी क़बीले का सरदार था और नादिर शाह के पास एक प्रतिष्ठित पद पर आसन्न था जब सन् १७४७ ई० में नादिर शाह क़त्ल कर दिया गया तो अहमद शाह अफ़ग़ानिस्तान का बादशाह बन बैठा। नादिर शाह के हिंदुस्तान पर आक्रमण के समय अहमद शाह भी उस के साथ था और मुग़ल साम्राज्य की अव्यवस्था से पूर्णतया परिचित हो गया था। अतएव शाहनवाज़ ख़ां के निमंत्रण को उस ने प्रसन्नता-पूर्वक स्वीकार कर लिया और एक बड़ी सेना सहित अटक नदी पार कर के पंजाब में आ उपस्थित हुआ। परंतु इस बीच में दिल्ली-सम्राट् के समझाने-बुझाने से शाहनवाज़ ठीक

रास्ते पर आ चुका था। अतएव अब्दाली की सहायता करने के बदले उस का सामना करने के लिए तैयार हो गया। परंतु अहमद शाह कब टलने वाला था। दुर्रानियों के एक ही हमले ने शाहनवाज़ ख़ां की फ़ौज के छक्के छुड़ा दिए। शाहनवाज़ लाहौर से भाग निकला। अहमद शाह लाहौर से दिल्ली की तरफ़ बढ़ा। सरहिंद के मुक़ाम पर दोनों फ़ौजों की मुठभेड़ हुई। इस युद्ध में सम्राट् के वज़ीर के बेटे मीर मनू ने बहादुरी की वह प्रतिभा दिखाई कि दुश्मनों ने भी उस की प्रशंसा की। अब्दाली की हार हुई और उसे अपना-सा मुँह ले कर वापस होना पड़ा। दिल्ली-सम्राट् ने प्रसन्न होकर मीर मनू को पंजाब का शासक नियुक्त किया।

ख़ालसा दल की नींव

अहमद शाह अब्दाली का आक्रमण सिखों के लिए शुभ मेघ जैसा प्रमाणित हुआ। एक ओर उन्हें पंजाब के शासकों के अत्याचार से कुछ समय के लिए मुक्ति मिली। दूसरी तरफ़ इस गिरी दशा में उन्हें अपने आप को सुदृढ़ करने का अवसर मिला। अमृतसर के निकट सिखों ने एक दुर्ग का निर्माण किया जिस का नाम उन्हों ने रामरूनी रक्खा। इसी बीच में सिखों के एक प्रबल सेनापति सरदार जसासिंह कलाल ने विभिन्न सिख जत्थों को एक ही संगठन में संयुक्त कर दिया और उन को मिला कर उस ने एक फ़ौज तैयार कर ली। इस का नाम ख़ालसा दल रक्खा। यह सिखों की सब से पहली नियम-पूर्वक फ़ौज थी जो एक सेनापति के नेतृत्व में थी।

नवाब मीर मनू का अधीनता स्वीकार करना

नवाब मीर मनू (मुईनुल्मुल्क) ने जब अपनी सूबेदारी को सुदृढ़ कर लिया तो उस ने सिखों की ओर ध्यान दिया। उस ने पंजाब की दशा सुधारने के लिए उग्र नीति ग्रहण की। परंतु सिखों के सौभाग्य से अहमद शाह अब्दाली ने हिंद पर दूसरी बार आक्रमण किया। इस बार मीर मनू ने शाह की अधीनता मान ली और गुजरात, स्यालकोट, पसरौर इत्यादि ज़िले की कुल आय कर-रूप में देना स्वीकार कर लिया। अहमद शाह अफ़ग़ानिस्तान लौट गया। तीन साल बीत गए परंतु मीर मनू ने कर न भेजा। अहमद शाह ने नवाब मुईनुल्मुल्क को इस अपराध का दंड देने के लिए पंजाब पर तीसरी बार आक्रमण किया। मीर मनू भी सामना करने के लिए तैयार हो गया। दुर्रानी फ़ौज लाहौर शहर का चार मास तक अवरोध किए पड़ी रही। शहर में रसद का सामान चुक गया। मीर मनू ने तंग आ कर जंग करना उचित समझा। लड़ाई में मीर मनू का सेनापति दीवान कोड़ामल काम आया। उस के दूसरे अफ़सर आदीना बेग ने विश्वासघात किया और युद्ध-क्षेत्र से वापस लौट गया। यह देख कर नवाब मुईनुल्मुल्क ने अपने आप को अहमद शाह अब्दाली के हवाले कर दिया। अब्दाली ने उस की बहादुरी और शौर्य से प्रसन्न हो कर पंजाब की सूबेदारी उसे ही प्रदान की और स्वयं लगभग एक करोड़ रुपया कर-रूप में ले कर काबुल वापस गया।[1]

---

[1] दीवान अमरनाथ ने अपनी पुस्तक 'ज़फ़रनामा रंजीतसिंह' में मीर मनू और अब्दाली की भेंट का इस प्रकार वर्णन किया है कि शाह ने मीर मनू से पूछा कि "तुम्हारे साथ क्या वर्ताव किया जाय?" नौजवान मनू ने बेधड़क जवाब दिया

मीर मनू की मृत्यु

अब नवाब मीर मनू ने अहमद शाह अब्दाली के नायब के रूप में बे-धड़क राज्य करना आरंभ कर दिया। परंतु वह अधिक समय तक जीवित न रह सका। तीन मास के अनंतर एक दिन घोड़े से गिर कर मर गया। उस की विधवा बेगम ने सूबेदारी का प्रबंध करना चाहा, परंतु ऐसे कठिन समय में स्त्री के लिए शासन करना बहुत कठिन काम था। दिल्ली-सम्राट् ने पंजाब पर फिर अपना अधिकार करने का प्रयत्न किया जिस पर अहमद शाह अब्दाली ने झुँझला कर चौथी बार सन् १७५५ ई० के आरंभ में हिंद पर आक्रमण किया। अपने पुत्र शाहज़ादा तैमूर को सूबेदार नियुक्त किया और स्वयं दिल्ली की तरफ़ बढ़ा। सरहिंद पर अधिकार कर के दिल्ली पहुँचा। शहर को जी खोल कर लूटा। नजीबुद्दौला ख़ां रुहेला को दिल्ली के दरबार में अपना प्रतिनिधि छोड़ कर लौट गया।

सिखों का लाहौर पर अधिकार—सन् १७५६-१७५८ ई०

अहमद शाह अब्दाली के निरंतर आक्रमणों का यह परिणाम हुआ कि पंजाब के शासन में घोर अव्यवस्था फैल गई। अब पंजाब में ऐसा कोई स्थायी शासन न था जो इस दशा को दूर करता। अतएव सिख जत्थेदार ऐसे सुअवसर से लाभ उठाने में कहां कोताही कर सकते थे?

कि "अगर तुम व्यापारी हो तो मुझे बेंच दो, अगर तुम क़साई हो मुझे क़त्ल कर दो, अगर तुम बादशाह हो तो मुझे मुक्त कर दो।" उस के बाद अहमद शाह ने पूछा—"अगर मैं तुम्हारे हाथ में क़ैद होता तो तुम मुझ से क्या व्यवहार करते?" नवाब ने कहा—"मैं स्वतंत्र नहीं हूँ। अपने बादशाह का नमक अदा करने और अपनी विवशता के कारण लोहे के पींजड़े में डाल कर अपने बादशाह के पास दिल्ली भेज देता।"

उन्हों ने अपने बल को कई गुना बढ़ा लिया था। उन की एक नियमित फ़ौज अर्थात् दल ख़ालसा बन चुकी थी। उन में बीसियों नामी सिपहसालार उत्पन्न हो चुके थे। शाहज़ादा तैमूर एक साधारण योग्यता का शासक था जिस का दबाना सिखों के बाएं हाथ का काम था। ज्यों ही तैमूर ने सिखों के तीर्थस्थल अमृतसर और उन के क़िले रामरूनी पर आक्रमण किया सिख हज़ारों की संख्या में जमा हो गए और "अकाल! अकाल!" की घोषणा करते हुए वैरियों पर टूट पड़े। सिख इस प्रकार की अनियमित लड़ाई में कुशल थे। वह खुले स्थल पर एक जगह डट कर लड़ने से बचते थे। इन का नियम था कि अवसर पाकर वैरी पर छापा मारा, माल व असबाब लूटा और फ़ौरन जंगलों में ग़ायब हो गए। सिख सवारों के पास हलका-फुलका असबाब और तेज़-तर्रार घोड़े होते थे, और यह आन की आन में दौड़ कर छिप जाते थे। अतएव वह बार-बार छापे मार कर वैरी की नाक में दम कर दिया करते थे। और शाहज़ादा तैमूर को भी उन्हीं कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। तैमूर विवश हो कर युद्ध-क्षेत्र से लौटा। शाहज़ादे की लौटती हुई सेना का सिखों ने पीछा किया और वह खलबली मचाई कि तैमूर ने लाहौर छोड़ कर चनाब नदी के किनारे दम लिया। दल ख़ालसा के सरदार जसासिंह कलाल ने लाहौर पर अधिकार कर लिया और अपने नाम का सिक्का चलाया। उस के चाँदी के सिक्के पर निम्नलिखित शेर अंकित है—

सिक्का ज़द दर जहान फ़ज़्ल अकाल।

मुल्क अहमद गिरफ़्त जसा कलाल॥

पंजाब मरहठों के अधिकार में

यद्यपि लाहौर पर सिखों का अधिकार हो गया था और उन्हों ने अपने नाम का सिक्का भी जारी कर दिया था, परंतु इस समय तक इन में इतना बल न था कि अधिक काल तक लाहौर पर अपना अधिकार बनाए रहते। अतएव फ़ौज के आ जाने पर शाहज़ादा तैमूर ने उन्हें लाहौर से निकाल दिया। उधर अहमद शाह अब्दाली के वकील नजीबुद्दौला ख़ां के विरुद्ध भी दिल्ली के वज़ीर विद्रोह का जाल तन रहे थे। ग़ाज़ीउद्दीन वज़ीर ने महराठा पेशवा को दिल्ली में निमंत्रित किया। मरहठे पश्चिमी हिंदुस्तान में सब से बड़ी शक्ति बन चुके थे। अब उन्हें राजधानी पर अपना अधिकार जमाने का अवसर मिला तो शीघ्र ही उन्हों ने निमंत्रण स्वीकार कर लिया। पेशवा ने एक बड़ी सेना के सहित अपने भाई राघोबा को दिल्ली रवाना किया। नजीबुद्दौला बड़ी कठिनाई से जान बचा कर भागा। राघोबा दिल्ली पर अधिकार कर के पंजाब की तरफ़ बढ़ा। रास्ते में अब्दाली के प्रतिनिधि को भी सरहिंद से निकाला। शाहज़ादा तैमूर को भी अटक के पार भगा दिया, और फिर मरहठों ने लाहौर पर अपना अधिकार कर लिया।

पानीपत की तीसरी लड़ाई—सन् १७६१ ई०

अहमद शाह यह अपमान कब सहन कर सकता था? साथ ही वह यह भी जानता था कि इस बार उस का सामना दिल्ली के कमज़ोर बादशाह के साथ नहीं वरन् मरहठों की बलशाली शक्ति के साथ है। अतएव अहमद शाह अब्दाली ने युद्ध की तैयारी में कोई कसर उठा न रक्खी। एक बड़ी सेना ले कर वह हिंद की ओर चला। सन् १७६१ ई०

में पानीपत में दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई। मरहठों की भारी हार हुई। उन के दो लाख सैनिक युद्ध में काम आए और घायल हुए। मरहठों की बढ़ती हुई शक्ति को भारी आघात पहुँचा, और उन्हें कुछ काल तक सँभलना कठिन हो गया। दिल्ली की रही-सही शक्ति भी जाती रही। दिल्ली-सम्राट् अपने पूर्वजों और पितामहों की गद्दी को छोड़ कर पहले अवध और फिर बंगाल में शरणागत हुए। अहमद शाह अब्दाली दिल्ली में अधिक काल तक न ठहरा और अपना एक नायब नियुक्त करके अफ़ग़ानिस्तान लौट गया। ज़ैन ख़ां को सरहिंद का सूबेदार और ख़्वाजा उबेद को लाहौर का शासक नियुक्त किया।

सिख गुरुमता—१७६२ ई०

पानीपत के युद्ध के समय सिखों ने जी खोल कर लाभ उठाया। बल्कि अब्दाली के लौटते समय उस के डेरों को ख़ूब लूटा। इस के बाद सब ख़ालसा सरदार अपने-अपने जत्थों समेत दरबार साहब अमृतसर में इकट्ठा हुए। एक बड़ी सभा हुई जिस में भविष्य का कार्य-क्रम निश्चित हुआ। इस प्रकार की सभाएं अमृतसर में समय-समय पर होती रहीं। ऐसी सभाओं को सिख अपनी बोली में गुरुमता कहते थे।

घूराघारा का भयानक युद्ध—सन् १७६२ ई०

ख़्वाजा उबेद ने सिखों को दमन करना चाहा। परंतु उस की हार हुई। ख़्वाजा का बहुत युद्ध का सामान सिखों के हाथ आया। सतलज पार सिखों के दूसरे गरोह ने सरहिंद के शासक ज़ैन ख़ां और उस के सहायक मालेरकोटला के शासक हंगम ख़ां को लूटा। जब यह दिल तोड़ने

वाली ख़बरें अहमद शाह को मालूम हुईं तब वह तत्पर सेनापति सिखों के दमन के लिए रवाना हुआ। पिछली जीतों के कारण सिखों के हौसले बढ़े हुए थे। दल ख़ालसा में भी अच्छी वृद्धि हो चुकी थी। अतएव इस बार सिख सरदार अब्दाली का सामना करने के लिए डट गए। यह पहला युद्ध था जिस में सिख एक जगह खुले मैदान में अपने वैरियों से लड़े। इतिहासकारों का अनुमान है कि सिखों की फ़ौज चालीस हज़ार के लगभग थी। लुधियाने से बीस मील की दूरी पर घूराघारा नामक स्थल पर दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई। सिख धर्म पर निछावर हो जाने वाले थे और बड़ी वीरता से लड़े। अकाल का घोष करते हुए आगे बढ़ते थे और दम के दम में मृत्यु की देवी के गोद में चले जाते थे। यद्यपि सिख धड़ाधड़ी से कट रहे लेकिन गुरु के शेर पीछे हटने का नाम न लेते थे। इस भयानक युद्ध में लगभग पंद्रह हज़ार सिख काम आए। अब्दाली ने सिखों को अपमानित करने की इच्छा से दरबार साहब की ईंट से ईंट बजा दी। सिखों के पवित्र तालाब को गाय के रक्त से अपवित्र कर दिया और उन्हें शिक्षा देने के लिए जगह-जगह क़त्ल किए गए सिखों के सिर लटका दिए।

सिखों का सरहिंद पर अधिकार—सन् १७६३ ई०

इतनी भारी क्षति इस छोटी सी जाति को नष्ट कर सकती थी। परंतु सिख पराजय के विचार को ध्यान में कब ला सकते थे? वह बहुत-सी कठिनाइयां झेल चुके थे। मुसीबतें और कठिनाइयां सहन करते-करते लोहे से फ़ौलाद बन चुके थे। 'तेग़ों के साये तले पल कर जवां हुए हैं।' यह कहावत ठीक इन्हीं को चरितार्थ करती थी। अहमद शाह के मुँह मोड़ते ही सिखों ने झुंड के झुंड इकट्ठा होना आरंभ किया और उस के

नायब ज़ैन ख़ां पर धावा बोल दिया। दिसंबर सन् १७६३ ई० में ज़ैन ख़ां अपने सहायक मालेरकोटला के शासक हंगम ख़ां सहित लड़ता हुआ मारा गया। सिखों ने सूबा सरहिंद पर अधिकार कर लिया। अगले वर्ष अब्दाली ने पंजाब पर फिर चढ़ाई की परंतु इस बार अपने उद्देश्य में असफल रहा। सिखों के एक बड़े नामी जत्थादार आला सिंह[1] को अपनी तरफ़ से सरहिंद का शासक नियुक्त करना ही उस ने उपयुक्त समझा। स्वयं अफ़ग़ानिस्तान में विद्रोह दमन करने के लिए चला गया।

सिखों का लाहौर पर स्थायी शासन—सन् १७६४ ई०

अहमद शाह के वापस आते ही सिखों ने मिल कर लाहौर पर आक्रमण किया। अब्दाली का नायब काबुलीमल छोटे से युद्ध के बाद भाग निकला। सिख लाहौर पर अधिकारी हो गए। दल ख़ालसा के तीन सेनानायकों—गूजर सिंह, सोभा सिंह, और लहना सिंह—ने लाहौर के आस-पास का प्रदेश आपस में बाँट लिया।[2] ख़ालसा नाम पर सिक्का जारी किया गया और सिक्कों पर निम्न शेर अंकित किया गया।

देग व तेग़ व फ़तह व नसरत बे दरंग।
याफ़्त अज़ नानक गुरू गोविंद सिंघ॥

अब्दाली का अंतिम आक्रमण—सन् १७६७ ई०

लाहौर के हाथ से निकल जाने का समाचार सुन कर अब्दाली तिलमिला उठा। परंतु बुढ़ापे और बीमारी के कारण विवश था। अतएव

[1] बाबा आला सिंह आधुनिक पटियाला नरेश के वंश का संस्थापक था।

[2] लाहौर के पूर्वी भाग का विस्तृत मैदान अब तक क़िला गूजरसिंह के नाम से प्रसिद्ध है।

दो वर्ष तक चुप रहा। इस बीच में सिखों ने अपनी शक्ति को सुदृढ़ करने में कोई उपाय उठा न रक्खा। तीसरे साल सन् १७६७ ई० में अब्दाली आख़िरी बार फिर पंजाब आया। सिख लाहौर छोड़ कर इधर-उधर भाग गए। अहमद शाह बे-खटके बढ़ा चला आया। बाबा आल्हा सिंह के पोते राजा अमर सिंह को अपना सरहिंद का नायब स्वीकार किया। सतलज पहुँचते ही अब्दाली की फ़ौज का एक भाग, जिस की संख्या लगभग बारह हज़ार थी बिना उस की आज्ञा के काबुल लौट पड़ा। अतएव अब्दाली को भी विवश लौटना पड़ा। वह अभी अटक पार हुआ ही था कि सिखों ने लाहौर पर अधिकार कर लिया। बल्कि सिख जत्थादार सरदार चड़त सिंह[1] ने रोहतास के सुदृढ़ दुर्ग से अधिकारियों को मार भगाया और उसे अपने अधीन कर लिया।

पंजाब में ख़ालसा राज्य

मुग़ल साम्राज्य के भाग्य का अस्त हो चुका था। मरहठों की शक्ति पानीपत के मैदान में पराजित हो चुकी थी। पंजाब में कोई ऐसी शक्ति न थी जो सिखों का सामना कर सकती। अतएव सिख जत्थादारों ने बिना किसी रुकावट के पंजाब पर अपना अधिकार जमाना आरंभ किया। थोड़े ही समय में झेलम नदी से सहारनपूर तक सब मैदानी प्रदेश पर ख़ालसा राज्य स्थापित हो गया। मुल्तान, सिंध, और काश्मीर मुसल्मानों के अधिकार में थे और जम्मू-काँगड़ा के पहाड़ी प्रदेशों पर हिंदू राजपूत अधिकारी थे।

[1] सरदार चड़त सिंह महाराजा रंजीतसिंह का दादा था।

ख़ालसा राज्य की व्यवस्था :

१—बराबरी का उसूल

जत्थे के छोटे-बड़े सब सदस्य बराबर समझे जाते थे। वह सब गुरु के संघ और ख़ालसा पंथ के सदस्य थे। पंथ की रक्षा के लिए लड़ते थे। लड़ाई में जो माल और धन उन के हाथ आता था बराबरी के नियम के अनुसार सब में बराबर-बराबर बाँटा जाता था। यदि किसी प्रदेश पर एक जत्थे का अधिकार हो जाता तो उस के देहात और क़स्बे भी क़रीब-क़रीब इसी उसूल पर बाँट लिए जाते थे। हर एक जत्थे का एक सरदार होता था, जिस को जत्थे के शेष लोग अपना नेता स्वीकार करते थे। जत्थे का कोई सदस्य जब चाहता दूसरे जत्थे से संयुक्त हो सकता था, या उसे अपना नया जत्था स्थापित कर लेने की पूरी स्वतंत्रता थी। अतएव ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहां जत्थे से निकल कर लोगों ने अपने-अपने नए जत्थे बना लिए।

२—वर्ष भर का कार्य-क्रम

वर्षा ऋतु के समाप्त होने पर प्रति वर्ष तमाम सरदार अपने-अपने जत्थों समेत दशहरे के अवसर पर अपने पवित्र स्थल अमृतसर में इकट्ठा होते थे और अपना गुरुमता या सभा करते थे। इस अवसर पर सब से पहले प्रत्येक मंदिर के पुजारी ग्रंथ साहब का पाठ करते फिर उपस्थित लोगों में कड़ाह-प्रसाद वितरित होता। गुरु के सिंह आपस में प्रेम से मिलते, ख़ालसा पंथ की उन्नति और भलाई के विषय पर विचार करते, आपस के झगड़े निपटाते और आने वाले वर्ष के धावों का निर्णय करते।

गुरुमता के निर्णय की पाबंदी सब पर उचित होती। क्योंकि यह ख़याल किया जाता था कि सभा के निर्णय में गुरु जी का गुप्त हाथ उपस्थित है, और गुरुमता का संपूर्ण कार्य उन्हीं की आध्यात्मिक सहायता से चल रहा है। गुरुमता ख़ालसा प्रजातंत्र-शासन का एक प्रकार से केंद्र था, जो स्वतंत्र सिखों को अपने से सन्नद्ध रखता था। गुरुमता की बैठक दशहरे के अतिरिक्त अन्य अवसरों पर भी आवश्यकतानुसार हो सकती थी। हर मंदिर के अकाली महंत आवश्यकता के समय बड़े-बड़े सरदारों को सूचना दे दिया करते थे। और वह अपने जत्थों को ले कर आ उपस्थित होते थे।

३—देश का प्रबंध

प्रत्येक जत्थेदार के अधिकार का क्षेत्र उस के प्रदेश तक सीमित होता। हर सरदार अपने देश में शांति रखने का पूर्ण प्रयत्न करता था। प्रत्येक सरदार का यह उद्देश्य होता था कि उस की प्रजा अमन-चैन से काम-काज में लगी रहे। उन से किसी प्रकार के सुधार की आशा करना भूल थी। क्यों कि यह लोग शासन के नियमों से अभी परिचित नहीं हुए थे। अतएव उन्हों ने मुग़लों के समय के नियमों और प्रबंध-रीतियों को ही स्वीकार किया। दीवानी और फ़ौजदारी के मुक़द्दमे गाँव और पंचायतों द्वारा निर्णय होते थे। ज़मीन के संबंध में भी न्यूनाधिक पुरानी रीति से वसूलयाबी होती थी।

४—छोटे जत्थों का व्यक्तित्व

चूँकि शरीर और मस्तिष्क से सभी मनुष्य एक से नहीं हैं, इस लिए स्वाभाविक है कि प्रत्येक व्यक्ति नेता नहीं बन सकता। साधारण श्रेणी के

मस्तिष्क वालों को उच्च कक्षा के मस्तिष्क वालों की शरण ग्रहण करनी पड़ती है और उन की बड़ाई को स्वीकार करना पड़ता है। इसी प्रकार सिखों के छोटे-छोटे जत्थे मिल कर बड़े जत्थे बनने आरंभ हुए। और उन के बड़े नेता भी प्रकट हुए। परंतु छोटे जत्थों का व्यक्तित्व बिल्कुल लोप न होता था। बड़े जत्थे के झंडे के नीचे इकट्ठा होकर भी वह अपने चिह्न बनाए रखते थे। इस से उन का बल बना रहता था और प्रत्येक जत्था अपनी विशेषता प्रदर्शित करने का इच्छुक था।

५—जत्थों का विभाग

जिस प्रकार एक जत्थे के सदस्य लूट के माल को आपस में बाँट लेते थे, उसी प्रकार विभिन्न जत्थे जो एक धावे में सम्मिलित होते थे विजित देश व माल को बाँट लेते थे। इस प्रकार विभिन्न जत्थे प्रदेशों पर अधिकारी हो गए। सन् १७६४ ई० के निकट सिखों के बारह मुख्य जत्थे स्थापित हो चुके थे, जिन्हों ने झेलम से सहारनपूर तक का तमाम मैदानी प्रदेश आपस में बाँट लिया था। इन जत्थों का विस्तृत वर्णन हम अगले अध्याय में करेंगे।



तीसरा अध्याय

बारह सिख मिस्लें

सिख मिस्लों की नींव

यह बताया जा चुका है कि पंजाब प्रदेश बारह मुख्य जत्थेदारों में विभक्त हो चुका। इन बड़े जत्थों को मिस्ल के नाम से भी पुकारते हैं। फ़ारसी भाषा में लिखे हुए इतिहासों में जत्था मिस्ल के नाम से ही निर्दिष्ट किया गया है। अतएव हम भी इस पुस्तक में 'मिस्ल' शब्द ही व्यवहार करेंगे।[1] बारह मिस्लों के विभिन्न नाम थे। मिस्लें अपने संस्थापकों के नाम या किसी विशेषता के कारण भिन्न-भिन्न नामों से पुकारी जाती थीं। यह मिस्लें निम्न-लिखित थीं—

१—भंगी

यह मिस्ल सब मिस्लों में बलशाली और प्रमुख गिनी जाती थी। इस का संस्थापक जसा सिंह जाट था, जो गाँव पंजवार ज़िला अमृतसर का निवासी था। यह व्यक्ति बंदा बहादुर की सेना में सम्मिलित था। जसा सिंह के बाद इस मिस्ल की बाग सरदार जगत सिंह ने सँभाली। कहा जाता है कि जगत सिंह भंग बहुत पीता था, इसी वजह से यह मिस्ल भंगी

---

[1] मिस्ल अरबी भाषा का शब्द है जिस का शब्दार्थ बराबरी है। यह जत्थे बराबरी के उसूल या मंतव्य पर बने थे, इस लिए मिस्ल के नाम से पुकारे गए हैं।

मिस्ल के नाम से प्रसिद्ध हुई। गूजर सिंह, सोभा सिंह और लहना सिंह सरदार जिन्हों ने सन् १७६४ ई० में लाहौर पर अधिकार कर लिया इसी मिस्ल के सरदार थे। लाहौर के अतिरिक्त अमृतसर, स्यालकोट, गुजरात, चिनीवट और झंगसियाल भी इसी मिस्ल के वशवर्ती स्थानों में थे। इस मिस्ल का सैनिक बल दस हज़ार सवार के लगभग बताया जाता है।

२—रामगढ़िया मिस्ल

इस मिस्ल की नींव ज़िला अमृतसर के ख़ुशहाल सिंह जाट ने डाली थी। ख़ुशहाल सिंह पहले बंदा की फ़ौज में भरती था। इस की मृत्यु पर जस्सा सिंह तरखान इस मिस्ल का सरदार नियुक्त हुआ। यह व्यक्ति अत्यंत साहसी और बहादुर सैनिक था। अहमद शाह अब्दाली के आक्रमणों के समय यह सिखों का प्रमुख नेता था। इस ने अमृतसर के रामरूनी दुर्ग को सुदृढ़ बनाया और उस का रामगढ़ नाम रक्खा। इसी कारण इस की मिस्ल का नाम रामगढ़िया मिस्ल पड़ गया। रामगढ़िया मिस्ल के अधिकार में दोआबा बिस्त, जालंधर का कुछ भाग, बटाला और कलानूर के क़स्बे थे। जब महाराजा रंजीतसिंह ने इस मिस्ल को विजय किया तो इन के अधिकार में एक सौ से अधिक दुर्ग थे। इस मिस्ल का सैनिक बल तीन हज़ार सवारों पर आश्रित था।

३—कन्हैया मिस्ल

इस मिस्ल का संस्थापक सरदार अमर सिंह गाँव काहना काछ, ज़िला लाहौर का निवासी था। इसी लिए यह मिस्ल काहने वाली या कन्हैया मिस्ल के नाम से प्रसिद्ध हुई। अहमद शाह अब्दाली के समय में जय

सिंह कन्हैया इस मिस्ल का विख्यात सरदार था, जिस की सरदारी में इस मिस्ल ने बड़ी उन्नति की । इस के अधिकार में दोआबा बारी अर्थात् व्यास और रावी के बीच की भूमि थी, और प्रदेश कोहिस्तान की तलहटी तक फैले हुए थे । कलेरियां, गढ़ोठा, हाजीपुर, और पठानकोट इसी मिस्ल के अधीन थे । महाराजा रंजीतसिंह की शादी इसी सरदार जय सिंह की पोत्री से हुई थी । इस मिस्ल का सैनिक बल लगभग आठ हज़ार सवारों का था ।

४—अहलूवालिया मिस्ल

प्रसिद्ध सरदार जसा सिंह कलाल इस मिस्ल का सब से पहला सरदार था जिस ने ख़ालसा दल की नींव रक्खी थी । जसा सिंह पहले फ़ज़ीलपूरिया मिस्ल से संबद्ध था । जब उस का बल समुचित रूप से बढ़ गया तो उस ने अपनी नई मिस्ल स्थापित कर ली । जसा सिंह अहलू गाँव का रहने वाला था । इस लिए इस मिस्ल को अहलूवालिया कहते हैं। वर्तमान रियासत कपूरथला का संस्थापक सरदार जसा सिंह था । इस मिस्ल का बल तीन हज़ार सवारों का ख़याल किया जाता है ।

५—सकरचकिया मिस्ल

इस मिस्ल की नींव सन् १७५१ ई० के लगभग सरदार चड़त सिंह ने डाली थी, जिस के पूर्वज गुजरानवाला के निकट मौज़ा सकरचक में रहते थे । इस लिए यह मिस्ल सकरचकिया कहलाई । महाराजा रंजीतसिंह के पिता सरदार महान सिंह के समय में इस मिस्ल का सैनिक बल लगभग पचीस सौ सवारों का था ।

६—नकई मिस्ल

इस मिस्ल का संस्थापक सरदार हीरा सिंह था। यह मिस्ल अहमद शाह अब्दाली के समय में स्थापित हुई। हीरा सिंह लाहौर ज़िले की वर्तमान तहसील चूनियां के परगने फ़रीदाबाद का निवासी था। इस प्रदेश को मुल्क नका कहते थे। इसी लिए यह मिस्ल नकई के नाम से विख्यात हुई। इस मिस्ल के अधिकार का प्रदेश मुल्तान तक फैला हुआ था, और शर्क़पूर, गोगेरा, कोट कमालिया इत्यादि इसी में सम्मिलित थे। महराजा रंजीतसिंह का विवाह इसी मिस्ल के एक सरदार ज्ञान सिंह की कन्या से हुआ था। इस मिस्ल का सैनिक बल दो हज़ार सवारों का माना जाता है।

७—डलीवाली मिस्ल

गुलाब सिंह इस मिस्ल का संस्थापक था, जो डेरा बाबा नानक के निकट मौज़ा डलीवाल का निवासी था। इस मिस्ल के सरदार तारा सिंह घेबा ने सरहिंद को तहस-नहस किया। इस मिस्ल के अधिकार में सतलज नदी के पश्चिम का देश था। इस के सैनिक बल का अनुमान आठ हज़ार सवारों का है।

८—निशानवालिया मिस्ल

इस मिस्ल की नींव संत सिंह और मोहर सिंह सरदारों ने रक्खी थी। यह दोनों सरदार दल खालसा के पताका-वाहक थे। इसी कारण इस मिस्ल को निशानवालिया मिस्ल कहते हैं। यह मिस्ल अंबाला ज़िले पर अधिकार रखती थी, यद्यपि इस के कुछ अधीन प्रदेश सतलज के

पश्चिम भी स्थित थे। इस मिस्ल का सैनिक बल बारह हज़ार सवारों का था।

९—करोड़सिंघिया मिस्ल

इस मिस्ल का संस्थापक करोड़ा सिंह था जिस के कारण इस मिस्ल का नाम करोड़सिंघिया पड़ गया। इस मिस्ल के अधिकार में सतलज नदी के पश्चिमी किनारे से मिले प्रांत थे, जो करनाल तक फैले हुए थे। इस का बल बारह हज़ार सवारों का था।

१०—शहीदिया निहंग मिस्ल

यह सब मिस्लों से छोटी मिस्ल थी। इस मिस्ल के सरदार उन बहादुरों के वंशज थे जो गुरु गोविंद सिंह जी के झंडे तले दमदमा के निकट शहीद हुए थे। इसी कारण यह शहीद मिस्ल कहलाई है। इसी मिस्ल में गुरु गोविंद सिंह के अकाली ख़ालसा या निहंग ख़ालसा भी सम्मिलित थे जो बहुधा शरीर पर नीले रंग के कपड़े और सिर पर लोहे का चक्र पहिनते हैं। यह मिस्ल भी सतलज के पश्चिम के प्रदेशों पर अधिकारी थी और इस का बल दो हज़ार सवारों का था।

११—फ़ज़ीलपूरिया मिस्ल

इस मिस्ल का संस्थापक नवाब कपूर सिंह पहले-पहल बंदा बहादुर की फ़ौज में भरती हुआ और अपनी बहादुरी के कारण सरदारी के पद पर पहुँचा। कपूर सिंह बहादुर सिपाही होने के अतिरिक्त कुशाग्र बुद्धि था और दूरदर्शी सेनापति भी था। इस की मिस्ल वालों ने इसे नवाब की पदवी दी और वह इसी नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह व्यक्ति मौज़ा

फ़जीलपूर ज़िला अमृतसर का निवासी था। इसी लिए इस की मिस्ल इस नाम से विख्यात हुई। इस मिस्ल के अधिकार के प्रांत सतलज नदी के दोनों तटों पर स्थित थे। इस का सैनिक बल ढ़ाई हज़ार सवारों का था।

१८—फुलकियां मिस्ल

फूल नामी एक व्यक्ति ने इस मिस्ल की नींव डाली। इस लिए यह मिस्ल फुलकियां कहलाई। फूल भट्टी वर्ग का राजपूत था, सरदार आला सिंह जो वर्तमान पटियाला वंश का संस्थापक था और जिसे अहमद शाह अब्दाली ने अपनी ओर से सरहद का शासक नियुक्त किया था इसी वंश का था, और फुलकियां मिस्ल का ही सरदार कहलाता था। इसी मिस्ल के अन्य सवारों ने नाभा और झींद के वर्तमान वंशों की नींव डाली थी। रियासत कैथल का संस्थापक भी फुलकियां मिस्ल के सरदारों में था। इस मिस्ल का सैनिक बल लगभग पाँच हज़ार सवारों का था।

सिख मिस्लदारों के परस्पर संबंध

सिखों का सम्मिलित बल लगभग सत्तर हज़ार सवारों का था। इस बड़ी सेना के साथ उन्हों ने अपने विजयों को नित्य-प्रति बढ़ाना आरंभ किया। ऊपर इस की चर्चा हो चुकी है कि सिखों में कोई केंद्रीय शासन न था, जो विभिन्न सरदारों को वश में रखता, और सिख शासन को सुदृढ़ बनाता। प्रत्येक सरदार अपने शासन-क्षेत्र में स्वतंत्र था; जो जी में आता था करता था। हां, किसी बाहरी आक्रमण के समय यह सब सरदार मिल जाते थे, और सब ख़ालसा के झंडे के नीचे एकत्र हो कर

पंथ की रक्षा के लिए लड़ते थे, परंतु बाहरी भय की अनुपस्थिति में एक-दूसरे के साथ युद्ध करने में भी संकोच नहीं करते थे। इन मिस्लों की सीमाएं स्पष्ट रूप से नियत न थीं, परंतु एक-दूसरे के प्रदेशों से मिली हुई थीं। इस के अतिरिक्त प्रत्येक मिस्ल के भीतर भी फूट और झगड़े के बीज उपस्थित थे। प्रत्येक व्यक्ति मिस्ल का सरदार बनने का प्रयत्न करता था।

इस संबंध का परिणाम

अहमद शाह अब्दाली के आक्रमण सदा के लिए बंद हो चुके थे। देश की कोई भीतरी शक्ति सिखों की बराबरी की न थी। सिख लोग जो तलवार के धनी थे, कैसे चुप रह सकते थे? अतएव उन्हों ने अपने बल को आंतरिक युद्धों में व्यय करना आरंभ किया। अवसर पाकर अपने साथी सरदारों पर आक्रमण करते और ख़ूब लड़ते। आपाधापी का बाज़ार गर्म हुआ और 'जिस की लाठी उस की भैंस' वाली कहावत चरितार्थ होने लगी। अतएव अठारहवीं सदी के अंत के पचास वर्षों का पंजाब का इतिहास इन्हीं आपस के कलहों की कहानी है। एक मिस्ल के सरदार दूसरी मिस्ल के सरदारों के साथ मिल कर तीसरी मिस्ल पर आक्रमण करते। कभी दो तीन मिस्लों की सम्मिलित फ़ौज किसी और मिस्ल के देश पर अधिकार कर लेती। सारांश यह कि पूरी अव्यवस्था फैली हुई थी। इन्हीं दिनों अर्थात् सन् १७८४ में एक अंग्रेज़ यात्री मिस्टर फ़ारेस्टर पंजाब से गुज़रा, जिस ने सिखों की दशा को अपनी आँखों देखा। वह लिखता है कि मिस्लदारों की हुकूमत इस ढंग पर रहनी असंभव है। इन में से कोई न कोई ऐसा सरदार अवश्य पैदा होगा, जो सब मिस्लदारों को अधीन

कर के अपना बलशाली शासन स्थापित करेगा। और उस की यह भविष्य-वाणी यथार्थ भी हुई। मिस्टर फ़ारेस्टर के लिखने से चार साल पहले ही पंजाब का शेर पैदा हो चुका था जिस ने बीस वर्ष की अवस्था में इस बात का बीड़ा उठाया और थोड़े समय में ही सिख मिस्लों को विजय करके सिख साम्राज्य स्थापित किया। आइए, यह जानने का प्रयत्न करें कि वह कौन था और किस वंश से उस का संबंध था।



चौथा अध्याय

महाराजा रंजीतसिंह के वंश का पूर्व-इतिहास

सरदार बुधसिंह

वह अद्भुत व्यक्ति जो मिस्टर फ़ारेस्टर की भविष्य-वाणी पूरी करने, सिख सरदारों के आंतरिक कलह को दूर करने, एक विशाल सिख साम्राज्य स्थापित करने और पंजाब का नाम उजागर करने के लिए पैदा हुआ था महाराजा रंजीतसिंह था। यह सकरचकिया मिस्ल का सरदार था। इस मिस्ल की नींव अहमद शाह अब्दाली के आक्रमण के समय में सरदार चड़त सिंह ने डाली थी। सरदार चड़त सिंह के पूर्वज सन् १५५५ ई० में मौज़ा सकरचक में बसे थे। यह ज़मींदार थे और कई पुश्तों तक खेती पर ही गुज़र करते थे। इस वंश का पहला व्यक्ति जिस ने सिख धर्म स्वीकार किया बुद्धूमल था जो बाद में बुधसिंह[1] के नाम से प्रसिद्ध हुआ। बुधसिंह जब बालिग़ हुआ तो सुंदर और सुगठित जवान निकला और स्वभाव का बड़ा निडर सिद्ध हुआ। उस हलचल के समय में बुधसिंह ने अपने जैसे मनचले बहादुरों का एक गरोह इकट्ठा कर लिया। डाके मारने शुरू किए और जल्दी ही अपने आस-पास के प्रदेशों में अपनी वीरता के लिए भी सुप्रसिद्ध हो गया।

---

[1] मुंशी सोहन लाल 'रोज़नामचा रंजीतसिंह' में लिखते हैं कि बुधसिंह ने गुरु हरराय के समय में सिख धर्म स्वीकार किया। गुरु हरराय सन् १६६१ ई० में मरे थे।

सकरचक में अपने निवास के लिए क़िला जैसा एक घर भी बना लिया। बुधसिंह की सारी आयु इसी प्रकार के धावे मारने में व्यतीत हुई। उस के शरीर पर तलवार के तीस घाव और नौ गोलियों के निशान मौजूद थे।

सरदार नोधसिंह

सरदार बुधसिंह के दो बेटे थे एक का नाम नोधसिंह और दूसरे का चंदासिंह था। नोधसिंह का विवाह सन् १७३० ई० में मौज़ा मजीठ, ज़िला अमृतसर में, एक अमीर ज़मींदार की कन्या के साथ हो गया। नोधसिंह भी अपने बाप की तरह बड़ा बहादुर, साहसी, निडर और योद्धा प्रमाणित हुआ। थोड़े ही समय में चारों ओर उस के नाम की धाक बँध गई। नादिर शाह के आक्रमण के समय, गिरी हुई दशा से लाभ उठाने के निमित्त, नोधसिंह ने और भी अधिक हाथ-पाँव मारने शुरू किए। अधिक लूट-मार के उद्देश्य से नोधसिंह फ़ज़ीलपूरिया मिस्ल के सरदार नवाब कपूर सिंह के साथ मिल गया। एक बार दोनों ने मिल कर अहमद शाह अब्दाली के पड़ाव पर भी छापा मारा जिस के कारण नोधसिंह कई नामी सरदारों से बढ़ गया, और उस ने अपने छोटे से गरोह की प्रतिष्ठा और ख्याति सब के हृदयों में स्थापित कर दी। सरदार नोधसिंह सन् १७५२ ई० में इस संसार से प्रस्थान कर गया।

सरदार चड़त सिंह

सरदार नोधसिंह के चार बेटे थे। चड़त सिंह, दलसिंह, चैतसिंह और माघोसिंह। सब से बड़े बेटे चड़त सिंह की अवस्था इस समय

बीस वर्ष की थी। उसी ज़माने में सरदार जसा सिंह अहलूवालिया और सरदार हरीसिंह व झंडासिंह भंगी ने अपनी-अपनी मिस्लें स्थापित कर ली थीं, और पृथक्-पृथक् प्रदेशों पर अधिकारी हो चुके थे। चड़त सिंह यद्यपि आयु में छोटा था परंतु बड़ा तेज़ और समझदार था। उस ने मित्रों से यह सलाह की कि प्रदेशों के चुने-चुने बहादुरों को इकट्ठा कर के उन्हें भी एक नई मिस्ल की नींव डालनी चाहिए। चड़त सिंह यत्न-शील और मेल-मिलाप वाला युवक था। दो वर्ष के भीतर ही अपने उद्देश्य को व्यावहारिक रूप देने में वह सफल हुआ। लगभग एक सौ सवार और प्यादों को साथ ले कर उस ने अपनी मिस्ल का झंडा खड़ा किया। उस के ससुर अमीर सिंह और उस के बेटे गुरुबख़्श सिंह ने चड़त सिंह के इस साहस में बढ़ावा दिया, और पर्याप्त सहायता भी पहुँचाई। अमीर सिंह यद्यपि उस समय बुढ़ापे के पंजे में था, अपने समय का बड़ा वीर और योद्धा सैनिक था। गूजरानवाला के लोग उस के नाम से काँपते थे। इस कारण चड़त सिंह के काम में सुगमता हो गई। मुंशी सोहन लाल अपनी पुस्तक में यह चर्चा करते हैं कि चड़त सिंह ने यह नियम निर्धारित कर दिया था कि वही व्यक्ति मेरी मिस्ल में प्रवेश कर सकता है जो केश रक्खे और अमृत चक्खे। अतएव मिस्ल में भरती करने से पूर्व वह स्वयं लोगों को अमृत चखाया करता था।

एमनाबाद की लूट

एमनाबाद का मुसल्मान शासक वहां की हिंदू प्रजा को सताया करता था। चड़त सिंह ने अवसर अच्छा जाना। यद्यपि उस की मिस्ल

को स्थापित हुए थोड़ा ही समय हुआ था परंतु चड़त सिंह ने अपने नौजवानों को साथ ले कर एमनाबाद का घेरा कर लिया। बहुत से धन व माल के अतिरिक्त शाही शस्त्रागार से बहुत सी बंदूकें व अन्य अस्त्र और शाही अस्तबल से सैकड़ों घोड़े चड़त सिंह के हाथ लगे। इस सफलता से सरदार चड़त सिंह का साहस और भी द्विगुणित हो गया। उस ने गुजरानवाला में एक सुदृढ़ दुर्ग भी निर्माण कर लिया।

लाहौर के शासक का गूजरानवाले पर आक्रमण

गूजरानवाला लाहौर से छत्तीस मील की दूरी पर है। लाहौर के सूबेदार ख़्वाजा उबैद ने सरदार चड़त सिंह को इस गुस्ताख़ी का मज़ा चखाने के लिए गूजरानवाला पर चढ़ाई कर दी। ख़्वाजा उबैद के साथ बहुत लोग थे। चड़त सिंह ने अपने बनाए नए क़िले में शरण ली। रात के समय जब अवसर मिलता ख़्वाजा की फ़ौज पर छापा मार कर फिर भीतर हो रहता। ख़्वाजा उबैद इस से तंग आ गया। उस ने घेरा उठा लिया, और वापस चला गया। चड़त सिंह अपने नौजवानों को ले कर दुश्मन की फ़ौज पर टूट पड़ा। शाही सेना को उस ने ख़ूब लूटा। लड़ाई का बहुत-सा सामान सैकड़ों ऊँट और घोड़े सरदार के हाथ आए।

सरदार चड़त सिंह का विजय

सरदार चड़त सिंह ने अपने क़िले को और भी सुदृढ़ बना लिया। अब उस की मिस्ल का बल अच्छा बढ़ चुका था। अतएव उस के मन में देश-लाभ की आकांक्षा समाई। वज़ीराबाद के प्रदेश से मुसल्मान हाकिम को निकाल कर स्वयं अधिकारी बन गया और उस प्रदेश पर इलाक़े की

थानेदारी अपने साले गुरुबख़्श सिंह को सौंप दी। झेलम नदी के पार पिंड दादनख़ां और उस के आस-पास के प्रदेशों पर अपना अधिकार कर लिया। यहां एक मज़बूत क़िला इसी साल बनवाया। चड़त सिंह ने खेवड़े की नमक की कान पर अधिकार प्राप्त किया, जो उस के लिए आय का साधन सिद्ध हुआ। दाहनी ओर पिठूहार के इलाक़े विजय किए। चकवाल, जलालपूर इत्यादि के ज़मींदारों को अपना आश्रित बनाया। चड़त सिंह अभी झेलम नदी के क़रीब अहमदाबाद में ही स्थित था कि उसे समाचार मिला कि अहमद शाह अब्दाली अटक पहुँच गया है। अतएव सरदार ने रोहतास के प्रसिद्ध क़िले पर चढ़ाई कर दी। अब्दाली के क़िलेदार नूरुद्दीन ख़ां को मार भगाया और क़िले पर अधिकार कर के अपना थाना क़ायम कर लिया। सारांश यह कि पंद्रह वर्ष के थोड़े समय में चड़त सिंह ने अपने अधिकार को ख़ूब बढ़ाया। इस की मिस्ल ने दिन-दूनी रात-चौगुनी तरक़्क़ी की। गूजरानवाला, वज़ीराबाद, रामनगर, स्यालकोट, रोहतास, पिंड दादनख़ां और धनी के इलाक़े इस की रियासत में सम्मिलित थे जिन की सालाना आय लगभग तीन लाख रुपए थी।

सरदार चड़त सिंह की मृत्यु—सन् १७७१ ई०

जिस दिन से सरदार चड़त सिंह ने पिंड दादनख़ां और खेवड़े की नमक की कान पर अपना अधिकार स्थापित किया उस दिन से ही भंगी सरदार उस के घोर वैरी बन गए। दोनों में युद्ध आरंभ हो गया। अतएव समय-समय पर दोनों मिस्लों में लड़ाइयां होती रहीं। अंत में सन् १७७१ ई० में जब दोनों पक्षों की सेनाएं युद्ध-स्थल में एकत्रित हो रही थीं, तब सहसा सरदार चड़त सिंह की अपनी नई बंदूक छूट गई। इस से वह

बुरी तरह घायल हुआ और थोड़े ही समय में मर गया।[1]

माई देसान का शासन प्रबंध

सरदार चड़त सिंह के दो बेटे महान सिंह और सहज सिंह और एक बेटी थी। बड़े बेटे महान सिंह की आयु उस समय केवल दस वर्ष की थी। अतएव चड़त सिंह की विधवा स्त्री माई देसान ने रियासत का प्रबंध अपने हाथों में लिया। जिस में उस के भाइयों गुरुबख़्श सिंह और दलसिंह ने उस की बहुत मदद की। माई देसान बड़ी दुनिया-देखी अनुभवी और होशियार स्त्री थी। उस ने अपनी शक्ति को सुदृढ़ करने के लिए अपनी बेटी का ब्याह भंगी सरदार के बेटे साहब सिंह से कर दिया, जिस के कारण दोनों मिस्लों में वैर की आग कुछ काल के लिए ठंडी पड़ गई। उस के थोड़े समय बाद अपने बेटे महान सिंह का ब्याह जींद के सरदार गजपत-सिंह की बेटी से रचाया। माई देसान ने अपनी नई मिस्ल को सुदृढ़ करने के लिए ब्याह-संबंधों का आश्रय लिया, और गूजरानवाला के दुर्ग को और भी दृढ़ किया।

सरदार महान सिंह का गद्दी पर बैठना

इतने समय में महान सिंह ने होश सँभाल लिया और मिस्ल की बागडोर अपने हाथों में ले ली। अपने पिता की भाँति विजयों का क्रम फिर

[1] इस घटना को इतिहासकारों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से वर्णित किया है। हमारा वर्णन मुंशी सोहन लाल की पुस्तक पर आश्रित है। कप्तान रीड ने भी मुंशी सोहन लाल को ही प्रमाण माना है। परंतु सैयद मुहम्मद लतीफ़ और राय बहादुर कन्हैया-लाल ने कप्तान मरे की रिपोर्ट के आधार पर यह लिखा है कि चड़त सिंह की मृत्यु जम्मू के आक्रमण के समय सन् १७७४ ई० में, उस की अपनी बंदूक छूटने से हुई थी।

से जारी किया नूरुद्दीन से दूसरी बार रोहतास का क़िला छीन लिया और स्यालकोट के निकट कोटली अहंगरान पर अपना अधिकार कर लिया। इस स्थान के कारीगर बंदूक़ें बनाने में निपुण थे, और महान सिंह ने इस से पूरा लाभ उठाया तथा अपनी फ़ौज को नई बंदूकों से सजाया।

रसूलनगर की विजय—सन् १७७९ ई०

रसूलनगर का हाकिम पीर मुहम्मद ख़ां चठ जाति के पठानों में से था। यह स्वभाव से बड़ा कट्टर धार्मिक था और सिखों से विशेष वैर रखता था। युवक महान सिंह को यह बात पसंद न आई। अतएव सन् १७७६ में उस ने रसूलनगर पर आक्रमण कर दिया। पीर मुहम्मद ख़ां ने ख़ूब डट कर सामना किया परंतु अंत में हार गया। महान सिंह ने नगर पर अधिकार कर लिया। नगर का नाम रसूलनगर से बदल कर रामनगर रक्खा और यह आज तक इसी नाम से प्रसिद्ध है। यद्यपि पीर मुहम्मद ख़ां ने महान सिंह से हार स्वीकार कर ली थी, किंतु बहादुर चठ जाति के हृदय में बदले की आग सुलग रही थी, इस लिए वह बाग़ी हो गए। सरदार महान सिंह ने तीन वर्ष बाद दूसरी बार आक्रमण किया। इस बार उस ने अलीपूर और मंचर वग़ैरह पर भी अधिकार कर लिया। अलीपूर का नाम अकालगढ़ रक्खा।

रंजीतसिंह का जन्म

रसूलनगर पर विजय करके महान सिंह वापस आया। गूजरानवाला में प्रवेश करते ही उसे यह शुभ समाचार मिला कि उस के यहां बेटा पैदा हुआ है। महान सिंह ख़ुशी के मारे फूला न समाया। वह उसी समय युद्ध में विजय प्राप्त कर के आया था, अतएव उस ने इस विजय के उपलक्ष में

अपने बेटे का नाम रंजीतसिंह रक्खा और कहा कि मैं आशा करता हूं कि यह सदा युद्ध में विजयी होगा। आगे जाकर मालूम होगा कि महान सिंह का यह अनुमान बिल्कुल ठीक प्रमाणित हुआ। रंजीतसिंह ने, १३ नवंबर सन् १७८० ई०, सोमवार के दिन, दोपहर के समय गूजरानवाला में जन्म लिया था।[1]

पिंडी भटियां इत्यादि का दौरा

चठ जाति पर विजय प्राप्त करने के कारण महान सिंह की ख्याति बढ़ गई। ख़ालसा जत्थादारों में उस का नाम ऊँचा हो गया। अतएव बड़े-बड़े सरदार उस की मिस्ल में सम्मिलित होने लगे, और इस से सेना की शक्ति में बढ़ती हो गई। अब सरदार महान सिंह ने पिंडी भटियां, साहीवाल और ईसाख़ैल तक का दौरा किया और बहुत धन और माल प्राप्त किया।

जम्मू पर आक्रमण

सन् १७८२ ई० में जम्मू का राजा रंजीत देव मर गया। उस के दोनों बेटों ब्रजराज देव और दिलेर सिंह में गद्दी के लिए झगड़ा हो गया। भंगी सरदारों ने एक-आध बार पहले भी जम्मू पर हाथ मारने का प्रयत्न किया था। अतएव महान सिंह ने इस सुअवसर को हाथ से जाने न दिया। जम्मू पर चढ़ाई की। ब्रजराज देव मुक़ाबले का साहस न कर के तरकोटा की पहाड़ियों में जा छिपा। महान सिंह की फ़ौज ने जम्मू के धनशाली नगर को जी भर कर लूटा, और वहां से बहुत धन और दौलत जमा कर

[1] मुंशी सोहन लाल ने अपनी पुस्तक में रंजीतसिंह का जन्मपत्र दिया है, जिस में वह लिखता है कि रंजीतसिंह का जन्म का नामकरण बुधसिंह था।

के रामनगर से होता हुआ गूजरानवाला वापस लौटा।

जयसिंह कन्हैया से युद्ध

इसी साल सरदार महान सिंह दीवाली के अवसर पर अमृतसर स्नान के लिए आया। वहां यथा-नियम बड़े-बड़े सरदार उपस्थित थे। सरदार जयसिंह कन्हैया भी उपस्थित था। सिख मिस्लदार जयसिंह का बड़ा आदर करते थे। अतएव महान सिंह भी उस के डेरे पर उस से भेंट करने गया। वहां जम्मू की लूट-मार के संबंध में बात-चीत आरंभ हुई। जयसिंह कन्हैया महान सिंह की बढ़ती हुई शक्ति को देख कर ईर्षा की ज्वाला में जल-भुन रहा था। बात-चीत के बीच में कुछ कड़े शब्द उपयोग कर बैठा। महान सिंह ने भी वैसा ही जवाब दिया। मामला बढ़ गया और युद्ध की नौबत पहुँच गई। महान सिंह के लिए एक शक्तिशाली मिस्ल के शक्तिशाली सरदार जयसिंह से अकेला मुक़ाबला करना कठिन था। अतएव उस ने रामगढ़िया मिस्ल के सरदार जसा सिंह से पत्र-व्यवहार आरंभ किया। जसा सिंह का इलाक़ा जयसिंह ने छीन लिया था और यह बेचारा सतलज के पार हाँसी-हिसार के इलाक़े में मारा-मारा फिरता था। महान सिंह की सहायता से आश्वासित होकर वह पंजाब लौटा। जयसिंह ने काँगड़ा के शासक राजा संसार चंद का इलाक़ा भी छीन लिया था। अतएव संसार चंद भी उन के साथ मिल गया। तीनों ने मिल कर जयसिंह पर चढ़ाई कर दी और बटाले पर अधिकार कर लिया। जयसिंह का बहादुर पुत्र गुरुबख़्श सिंह फ़ौज लेकर आगे बढ़ा। घमासान युद्ध हुआ गुरुबख़्श सिंह लड़ता हुआ मारा गया। कन्हैया फ़ौज के पाँव उखड़ गए। जयसिंह को संधि के अतिरिक्त कोई उपाय न रह गया। परिणाम-स्वरूप जसा सिंह

और संसार चंद को उन के इलाक़े मिल गए।

जयसिंह की पोती से रंजीतसिंह की सगाई

इस युद्ध में महान सिंह ने अपनी शक्ति और बहादुरी की छाप जयसिंह के हृदय पर बिठा दी थी, और गुरुबख़्श सिंह की मृत्यु से बूढ़े सरदार की तमाम आकांक्षाओं पर पानी फिर चुका था। अतएव उस ने गुरुबख़्श सिंह की स्त्री सदा कुँवर के कहने पर महान सिंह के साथ विवाह-संबंध स्थापित करना ही नीतियुक्त समझा। अतएव स्वर्गगत गुरुबख़्श सिंह की लड़की की मँगनी महान सिंह के पुत्र रंजीतसिंह से कर दी गई। अब दोनों मिस्लों में मेल का संबंध स्थापित हो गया जिस से रंजीतसिंह ने अपने आरंभिक युद्धों में पूरा लाभ उठाया। इस की चर्चा आगे चल कर की जायगी।

भंगी सरदारों से युद्ध

पहले बताया जा चुका है कि महान सिंह की बहन का ब्याह साहब सिंह भंगी से हुआ था और वह एक-दूसरे से प्रेम और मैत्री का दम भरते थे। परंतु हुकूमत और रिश्तेदारी का साथ निभना कठिन है, क्योंकि हुकूमत रिश्तेदारी पर वश प्राप्त कर लेती है। अतएव सन् १७८० ई० में जब साहबसिंह के पिता गूजर सिंह की मृत्यु हुई तो साहब सिंह गुजरात की सूबेदारी पर नियुक्त हुआ। महान सिंह ने उस से शासकीय कर माँगा। साहब सिंह के वंश का संबंध सदा से भंगी सरदारों के साथ रहा था, इस लिए उस ने नज़राना देने से इन्कार कर दिया। इस कारण उन का आपस में युद्ध छिड़ गया। साहब सिंह सामना करने का साहस न कर सका। गुजरात छोड़ कर सोहदरा के क़िले में जा बैठा।

सोहद्रा के क़िले का घेरा

महान सिंह ने क़िले का अवरोध आरंभ कर दिया। इसी घेरे के अवसर पर एक दिन यकायक महान सिंह की तबियत ख़राब हो गई। उस का स्वास्थ्य कार्य की अधिकता के कारण पहले से ही बिगड़ चुका था। अब वह दिन-दिन अधिक बीमार होता गया। अंत में अवरोध का भार अपने बेटे रंजीतसिंह पर छोड़ दिया। उस की अवस्था उस समय केवल दस वर्ष की थी। रंजीतसिंह ने अवरोध को बराबर जारी रक्खा। इसी बीच में भंगी सरदारों ने साहब सिंह की सहायता के लिए सेना के दो दल भेजे। परंतु रंजीतसिंह ने उन्हें रास्ते में ही रोक लिया, और उन्हें अचेत पाकर उन पर आक्रमण किया। भागने के अतिरिक्त कोई उपाय उन के लिए न रहा। बहुत से हथियार और कई तोपें रंजीतसिंह के हाथ आईं।

सरदार महान सिंह की मृत्यु : ५ वैशाख संवत् १८४७ ई०

अभी यह अवरोध समाप्त भी न हुआ था कि महान सिंह कुछ देर बीमार रह कर तीस साल की भरी जवानी में परलोक सिधारा। सरदार महान सिंह बड़ा हिम्मत वाला, प्रतिष्ठित और बुद्धिमान मनुष्य था। उस ने अपनी थोड़ी अवस्था में ही सकरचकिया मिस्ल को बड़ी उन्नति प्रदान की, प्रदेशों और दौलत से उसे मालामाल कर दिया, और उस की सैनिक शक्ति में पर्याप्त वृद्धि की।

पाँचवां अध्याय

महाराजा रंजीतसिंह का समृद्धि-काल

(सन् १७९० से १८०३ ई० तक)

रंजीतसिंह का सकरचकिया मिस्ल का शासन सँभालना

सरदार महान सिंह अपने जीवन-काल में ही रंजीतसिंह के अभिषेक का उत्सव कर चुका था। अतएव उस की मृत्यु पर रंजीतसिंह बिना किसी प्रकार की आपत्ति उठे, सकरचकिया मिस्ल का सरदार स्वीकार कर लिया गया। रंजीतसिंह अभी दस वर्ष का बच्चा था।[1] यद्यपि यह बाल्यावस्था में अपने पिता के साथ कई लड़ाइयों में सम्मिलित हुआ था लेकिन फिर भी इस अवस्था में शासन का भार सँभालना उस के लिए बहुत कठिन था। आगे इस बात का वर्णन किया जा चुका है कि रंजीतसिंह की सगाई स्वर्गीय गुरुबख़्श सिंह कन्हैया की लड़की से हो चुकी थी। गुरुबख़्श सिंह की विधवा रानी सदा कुँवर बड़ी बुद्धिमती स्त्री थी। ऐसे आड़े वक्त में वह अपने अल्पवयस्क दामाद के काम आई। रंजीतसिंह की माता ने भी सहायता की, जिस से रंजीतसिंह का बोझ हल्का हो गया।

---

[1] महाराजा रंजीतसिंह की जन्म-तिथि मुंशी सोहन लाल और दीवान अमरनाथ ३ मगहर संवत् १८३७ विक्रमी, सोमवार तदनुसार १३ नवंबर सन् १७३८ ई० लिखते हैं; और सरदार महान सिंह की मृत्यु-तिथि ५ वैशाख सं० १८४७ वि० तदनुसार १४ अप्रैल सन् १७९० ई० है। सैयद मुहम्मद लतीफ़ और प्रिंसेप का यह कहना कि रंजीतसिंह की अवस्था उस समय १२ वर्ष की थी ठीक नहीं है।

रंजीतसिंह का बाल-बाल बचना—सन् १७९३ ई०

रंजीतसिंह को लड़कपन से ही शिकार खेलने का बड़ा शौक़ था। एक बार वह शिकार की खोज में मौज़ा लवेवाली के निकट जा पहुँचा, जो चठों के इलाक़े में था। रंजीतसिंह अपने साथियों से बिछुड़ कर अकेला रह गया था। संयोग से चठ जाति का नवाब हशमत ख़ां भी अपने नौकरों समेत वहां शिकार खेलने में व्यस्त था। अचानक उस की दृष्टि रंजीतसिंह पर पड़ी। सरदार महान सिंह ने इसे कई बार परास्त किया था। वह बदला लेने का अवसर ढूँढ रहा था। उसे अपना बदला लेने का यह स्वर्ण अवसर प्रतीत हुआ। निकट से तलवार का पूरा वार किया। परंतु 'जा को राखे साँइयां मार न सक्के कोय' के अनुसार रंजीतसिंह डर कर ज़ीन से सरक गया। तलवार बाग पर लगी जिस के दो टुकड़े हो गए। रंजीतसिंह ने पीछे मुड़ कर देखा तो मामला दूसरा ही पाया। शेर की तरह गरजा और गुर्रा कर हशमत ख़ां पर जा डटा, और आन की आन में उस का सर तन से जुदा कर दिया। ख़ां के नौकरों ने जो यह देखा तो हवा हो गए। रंजीतसिंह ख़ां का सिर अपने भाले पर चढ़ा कर अपने साथियों से आ मिला और सारा माजरा कह सुनाया, जिसे सुन कर वह दंग रह गए, रंजीतसिंह की बहादुरी की प्रशंसा की और ईश्वर का धन्यवाद दिया।

रंजीतसिंह का विवाह—सन् १७९६ ई०

सोलह वर्ष की अवस्था में रंजीतसिंह ने अपनी शादी रचाई। एक बहुत बड़ी बारात धूम के साथ बटाला क़स्बे में गई, जहां नाच-रंग तमाशों से लोगों का आमोद किया गया। रंजीतसिंह की उदारता ने लोगों को

मोह लिया। कुछ दिन बाद रंजीतसिंह दूल्हन लेकर गूजरानवाला वापस आया।

रामगढ़ियों के विरुद्ध सदा कुँवर की सहायता

इसी वर्ष जसा सिंह रामगढ़िया ने सरदार जयसिंह की मृत्यु से लाभ उठा कर कन्हैया मिस्ल के अधिकार के प्रदेशों पर हाथ साफ़ करना आरंभ किया, अतएव रानी सदा कुँवर ने रंजीतसिंह से सहायता माँगी। रंजीतसिंह ने दीवान लखपत राय को इलाक़ा धनी की तरफ़ रवाना किया और स्वयं सरदार फ़तह सिंह धारी, सरदार जोध सिंह और सरदार दल सिंह वज़ीराबादिया के साथ बटाला की तरफ़ रवाना हुआ, और रामगढ़िया के क़िला मियानी का अवरोध आरंभ किया। वर्षा ऋतु के कारण शहर के चारों ओर बहुत-सा पानी जमा हो गया था, इस वजह से रंजीतसिंह को अवरोध उठा लेना पड़ा।

लाहौर के सरदारों से भेंट और क़िले का निरीक्षण

बटाला जाते हुए रंजीतसिंह ने अपनी सेना को आगे भेज दिया और आप दो-तीन दिन के लिए लाहौर में रह गया। लाहौर के सरदारों—सरदार चेत सिंह और सरदार मोहर सिंह—से बात-चीत की, जिन्हों ने रंजीतसिंह की ख़ूब आवभगत की। इस अवसर पर उसे लाहौर का क़िला देखने का भी मौक़ा मिला, और संभवतः जैसा कि रंजीतसिंह के इतिहासकार सोहन लाल संकेत करते हैं, इसी समय रंजीतसिंह के हृदय में क़िला प्राप्त करने की आकांक्षा जागृत हुई।

रंजीतसिंह का दूसरा विवाह—सन् १७९८ ई०

रंजीतसिंह के पहले विवाह के कारण सकरचकिया और कन्हैया

मिस्लों में आपस में मेल हो गया था। अब दूरदर्शी रंजीतसिंह ने अपनी शक्ति को और भी सुदृढ़ करने लिए नकई मिस्ल के सरदारों से मेल-जोल आरंभ किया, जिस का परिणाम यह हुआ कि सन् १७९८ई० में सरदार ज्ञान सिंह नकई की बहन के साथ रंजीत सिंह का विवाह निश्चित हो गया। बारात गूजरानवाला से प्रस्थान कर के मरालीवाला और शेखूपूरा होती हुई क़स्बा सतघरा पहुँची, जहां सरदार ज्ञान सिंह ने बारात का बड़े उत्साह से स्वागत किया, और बहुत कुछ दहेज़ देकर बारात को बिदा किया। रंजीतसिंह का बड़ा बेटा खड़क सिंह इसी रानी की कोख से उत्पन्न हुआ था।

मिस्ल की शासन-डोर अपने हाथ में लेना—सन् १७९८ ई०

दीवान लखपत राय सरदार महान सिंह का विश्वस्त वज़ीर था। सकरचकिया के कुल प्रदेशों की आय और व्यय का सारा हिसाब इसी दीवान के पास रहता था। सरदार महान सिंह को दीवान की योग्यता पर पूरा भरोसा था और वह उस की सचाई पर पक्का विश्वास रखता था। अतएव मरते समय अपने बेटे रंजीतसिंह का हाथ दीवान लखपत राय और अपने मामा वज़ीराबाद के शासक सरदार दल सिंह के हाथों में देकर उन्हें इस का निरीक्षक नियुक्त किया। कुछ समय तक तो इसी प्रकार काम चलता रहा। परंतु दीवान लखपत राय और सरदार दल सिंह एक दूसरे से ईर्ष्या करते थे, इस लिए यह सरदार दीवान के विरुद्ध रंजीतसिंह के कान भरा करता था। इस के अतिरिक्त रंजीतसिंह की सास सदा कुँवर भी उसे मिस्ल का प्रबंध अपने हाथों में ले लेने के लिए उकसाया करती थी। रंजीतसिंह की अवस्था अब अठारह साल की थी। वह स्वयं

इस बात की आवश्यकता का अनुभव करता था। संयोगवश दीवान लख-पत राय धनी के इलाक़े में मालगुज़ारी वसूल करता हुआ सन् १७६८ ई० में मारा गया, और रंजीतसिंह ने अपने माता के परामर्श से मिस्ल की शासन-डोर अपने हाथ में ले ली।

रंजीतसिंह पर अपनी माता के वध का झूठा अभियोग

दीवान लखपत राय के क़त्ल के संबंध में प्रिंसप और मुहम्मद लतीफ़ लिखते हैं कि इस मामले में सरदार दल सिंह का हाथ था। कप्तान मरे और कप्तान रीड अपनी रिपोर्टों में संकेत-रूप में यह भी प्रकट करते हैं कि दीवान लखपत राय का रंजीतसिंह की माता से प्रेम-संबंध था, और रंजीतसिंह ने अपनी माता को या तो स्वयं क़त्ल कर दिया या मरवा डाला। परंतु मुहम्मद लतीफ़ ने इस संकेत को बहुत विस्तार दिया है और एक काल्पनिक कथा गढ़ कर रंजीतसिंह की माता की मृत्यु को बहुत विस्तृत-रूप से बयान किया है। अपनी उक्तियों की पुष्टि में उस ने कोई प्रमाण नहीं दिए। केवल यह लिख दिया है कि सभी इतिहासकार यह स्वीकार करते हैं कि रंजीतसिंह ने अपनी माता के बुरे चाल-चलन के कारण उस का वध कर दिया। परंतु हमें अपनी खोज में किसी प्रमाणिक इतिहास-कार की साक्षी नहीं मिली, जिस के आधार पर हम यह कह सकें कि यह कथन सत्य है। मरे और रीड की रिपोर्टों का अधिकांश सुनी-सुनाई बातों पर अवलंबित था। मुंशी सोहन लाल, दीवान अमर नाथ और बूटी शाह इस बात का बिल्कुल वर्णन नहीं करते। यह मान भी लिया जावे कि सोहन लाल और अमर नाथ महाराजा के दरबार में नौकर थे, इस लिए इस विषय पर उन का मौन अधिक महत्त्व नहीं रखता, फिर भी

बूटी शाह सतलज के पास अंग्रेज़ी इलाक़े का रहने वाला था। वह इस बात की ओर संकेत तक भी नहीं करता, वरन् इस के विरुद्ध अपनी पुस्तक में एक स्थल पर इस प्रकार लिखता है कि रंजीतसिंह ने अपनी माता के परामर्श से मिस्ल के शासन की बागडोर अपने हाथ में ली थी।[1]

शाह ज़मां का पंजाब पर आक्रमण—सन् १७९८ ई०

अहमद शाह अब्दाली के बेटे तैमूर की मृत्यु पर उस का लड़का शाह ज़मां सन् १७९३ ई० में काबुल की गद्दी पर बैठा। शाह ज़मां ने अपने दादा का अनुकरण करना उचित जान कर पंजाब पर अधिकार करने की ठान ली। सन् १७९५ ई० से सन् १७९८ ई० तक उस ने एक के बाद एक कर के तीन आक्रमण किए। परंतु उसे प्रत्येक बार असफल लौट जाना पड़ा, क्योंकि उस की अपनी अफ़ग़ानी सल्तनत में झगड़े उठ रहे थे और उस का सगा भाई महमूद गद्दी प्राप्त करने के प्रयत्न में था। दूसरी ओर सिखों ने भी अपना बल सुदृढ़ कर लिया था और उन्हें पराजित करना शाह ज़मां के लिए सहज न था। अतएव जब दुर्रानी सेना पंजाब में आती, सिख अपने-अपने इलाक़े छोड़ जंगलों में छिप रहते और दुर्रानी लश्कर के पीछे से इस तेज़ी से वार करते कि दुश्मन के बहुत से सैनिक मैदान में काम आते। इस से पूर्व कि बादशाह को उन के आक्रमण का ज्ञान होता, आन की आन में यह लोग ग़ायब हो जाते। फिर जहां अवसर मिलता आक्रमण करते। सैकड़ों अफ़ग़ानों को मौत के घाट उतारने के बाद उन के घोड़े, हथियार और लूट का माल लेकर

---

[1] "ब सलाह दीद वाल्दह ख़ुद ब इंतिज़ाम महाम माली व मुलकी मुतवज्जः शुद"—बूटी शाह, 'तारीख़े-पंजाब', पृ० ६३५

रफ़ूचक्कर हो जाते। सिखों की यह चालें दुश्मनों के लिए बड़ी भयानक सिद्ध होतीं, और उन्हें बिना किसी परिणाम वापस जाने के अतिरिक्त कुछ उपाय न दिखाई देता।

शाह ज़मां का लाहौर क़िले पर अधिकार

दिसंबर सन् १७९८ ई० में शाह ज़मां लाहौर की तरफ़ बढ़ा। कोई सरदार सामना करने के लिए उपस्थित न पाकर उस ने क़िले पर अधिकार कर लिया। परंतु ख़ालसा कहां चुप बैठने वाले थे? वह लाहौर के आस-पास ही डेरा डाले पड़े थे। सूर्य अस्त होते ही वह शहर में प्रवेश करते। भिन्न-भिन्न टोलियां दुर्रानी सेना पर छापे मारतीं, और उन का माल-असबाब लूट कर नौ-दो-ग्यारह हो जातीं, और अपने डेरों में वापस आ जातीं। यह काम इतनी फुर्ती और चालाकी से होता था कि दुर्रानी फ़ौज के पहरेदारों और घूमते रहने वाले दलों तक समाचार पहुँचने-पहुँचाने में ही यह इस प्रकार लोप हो जाते थे जिस तरह मक्खन में बाल पार हो जाता है। इस तरह की लूट-मार से शाह ज़मां बहुत दिक़ हुआ। यहां अधिक ठहरना उस ने भयावह समझा और शीघ्र ही वापस चला गया।

रंजीतसिंह का साहस

इस विषय में मुंशी सोहन लाल एक मनोरंजक वर्णन करते हैं कि जब शाह ज़मां लाहौर के क़िले पर अधिकार कर रहा था तो रंजीतसिंह अपने साथियों समेत तीन बार इस क़िले के निकट आया और मुसल्मानी बुर्ज के नीचे खड़ा हो कर जहां शाह ज़मां बहुधा बैठा करता था, उस ने गोलियां चलाई जिस से कई दुर्रानी घायल हुए और ऊँचे स्वर से कई बार यों

पुकारा—'ऐ अहमद शाह अब्दाली के पोते। देख सरदार चड़त सिंह का पोता आया है। बाहर आ और उस के दो हाथ देख ले।' परंतु जब शाह ज़मां की ओर से कोई उत्तर न मिला तो वापस लौट गया।[1]

नवाब क़सूर का प्रस्ताव

शाह ज़मां के प्रस्थान करते ही तीनों भंगी सरदार लाहौर आ पहुँचे और उन्हों ने नगर पर पहले की भाँति अधिकार कर लिया। लाहौर के तीनों हाकिमों में आपस में फूट रहती थी, इस कारण आए दिन उन में युद्ध और अनबन रहती थी। इस से प्रजा बहुत कष्ट में और त्रस्त थी। आपस के झगड़ों की वजह से इन सरदारों का बल बहुत घट गया। अतएव यह ख़बरें जल्द ही चारों तरफ़ फैल गईं। यह हाल सुन कर क़सूर के नवाब की इच्छा लाहौर पर अधिकार जमाने की हो गई, और उस ने तैयारी आरंभ कर दी।

रंजीतसिंह से प्रार्थना

रंजीतसिंह की बहादुरी और साहस की ख्याति दिनों-दिन चारों तरफ़ फैल रही थी। दूरदर्शी लोगों ने इस का अनुमान कर लिया था कि एक दिन यह योद्धा सारे पंजाब का सिरताज बनने वाला है। जब लाहौर के लोगों को क़सूर के नवाब के उद्देश्य का ज्ञान हुआ तो उन्हों ने रंजीतसिंह की अधीनता को स्वीकार करना श्रेष्ठतर समझा। अतएव लाहौर के प्रमुख व्यक्ति, जैसे भाई गुरुबख़्श सिंह, हकीम हाकिम राय, मेहर मुहकमुद्दीन और मियां आशिक़ मुहम्मद ने अपने दस्तख़तों के साथ एक प्रार्थना-पत्र रंजीतसिंह की सेना में भेजा, जिस में सब हाल लिख

---

[1] बूटी शाह ने भी इस घटना का उल्लेख किया है। 'तारीख़े-पंजाब', पृष्ठ ६३८

कर उस से लाहौर पर अधिकार करने की विनय की गई थी।

रंजीतसिंह की तैयारी

रंजीतसिंह उस समय रामनगर में ठहरा हुआ था। प्रार्थना-पत्र के मिलते ही अवसर अच्छा जान कर अपने विश्वस्त क़ाजी अब्दुर्रहमान को लाहौर भेजा, जिस में वह इस बात का निश्चय करे और स्वयं वह रामनगर से प्रस्थान करके अपनी सास से परामर्श करने के लिए बटाला पहुँचा। सदा कुँवर इस बात पर राज़ी हो गई। दोनों ने मिल कर लगभग २५००० सेना, सवार और पैदल इकट्ठा कर लिए, और अमृतसर की तरफ़ कूच किया और एक रात मौज़ा मजीठ में ठहर कर सीधे लाहौर आ पहुँचे। शहर के बाहर वज़ीर ख़ां के बाग़ में डेरे डाल दिए गए[1] और मेहर मुहकमुद्दीन इत्यादि से साज़-बाज़ आरंभ कर दिया।

लाहौर पर अधिकार—६ जुलाई सन् १७९९ ई०

रंजीतसिंह ने अपनी सेना को दो भागों में विभक्त किया—एक भाग ने रानी सदा कुँवर के नेतृत्व में दिल्ली दरवाज़े की तरफ़ से शहर पर आक्रमण किया और दूसरे भाग ने रंजीतसिंह के अधीन लोहारी दरवाज़े पर धावा बोला।

रंजीतसिंह के आक्रमण का कोई सामना न कर सका। उस की आज्ञा से दरवाज़े की नींव के नीचे बारूद भर कर आग लगा दी गई, जिस से दरवाज़े के निकट की दीवार उड़ कर दूर जा पड़ी। इसी बीच में मेहर मुहकमुद्दीन की आज्ञा से द्वार भी खोल दिए गए। रंजीतसिंह दो हज़ार

[1] वह बाग़ उस स्थान पर स्थित था, जहां आज कल अजायबघर और पब्लिक लाइब्रेरी के भवन हैं।

सवारों का दल और चार बड़ी तोपें ले कर बिजली की तरह कड़कता हुआ शहर में जा घुसा। पंजाब के शेर की बहादुरी से शहर के हाकिमों पर इतना प्रभाव पड़ा कि कोई सामना करने के लिए न आया। सरदार मोहर सिंह और साहब सिंह अपनी फ़ौजों सहित नगर ख़ाली कर गए और सरदार चेत सिंह ने अपने आप को क़िले में बंद कर लिया। रंजीत-सिंह ने शहर पर अधिकार कर लिया और अपनी सेना को कठोर आज्ञा इस बात की दी कि कोई नगर-निवासियों पर बलात्कार न करे। फिर क़िले की ओर ध्यान दिया और सामने मैदान में डेरे डाल दिए। क़िले पर गोलाबारी आरंभ होने वाली ही थी कि रानी सदा कुँवर भी आ पहुँची, जिस ने बताया दी कि क़िले में सामान रसद पर्याप्त नहीं है, इस लिए चेत सिंह स्वयं क़िला ख़ाली कर देगा। और ऐसा ही हुआ भी। दूसरे दिन ही सरदार चेतसिंह ने अपने को सामना करने के अयोग्य पा कर क़िले को छोड़ दिया और रंजीतसिंह से उचित-रूप से जागीर प्राप्त कर के उस की अधीनता स्वीकार कर ली।[1]

इस के तत्काल बाद ही रंजीतसिंह ने शहर की बाहरी दीवार और क़िले की दीवार की मरम्मत आरंभ कर दी और शहर के लोहार कारी-गरों को क़िले की तोपें मरम्मत करने की आज्ञा दी।[2]

---

[1] दीवान अमर नाथ इस घटना की तिथि १३ सफ़र सन् १२१४ हिज्री तदनुसार १७ जूलाई सन् १७९९ ई० लिखते हैं। लेकिन मुंशी सोहन लाल के इतिहास के अनुसार यह घटना ३ सफ़र सन् १२१४ हिज्री तदनुसार ६-७ जूलाई १७९९ ई० की है।

[2] रंजीतसिंह के लाहौर अधिकार करने के संबंध में कई अंग्रेज़ लेखक और उन से नक़ल कर के हिंदुस्तानी इतिहास-लेखक यह लिखते हैं कि पंजाब से जाते समय

भसीन का युद्ध-- मार्च सन् १८०० ई०

रंजीतसिंह के बढ़ते हुए बल को देख कर दूसरे मिस्लदारों के दिलों में ईर्ष्या की आग जल रही थी। इस के लाहौर के ऊपर अधिकार कर लेने पर यह आग और भी भड़क उठी। और इस कारण कि लाहौर सदा से पंजाब प्रांत की राजनीतिक शक्ति का केंद्र रहा है, अन्य मिस्लदारों ने रंजीतसिंह की शक्ति को अपने लिए भयावह समझा। सब ने मिल कर लाहौर छीनने का प्रयत्न कर अपने भाग्य का निर्णय करना आवश्यक जाना। अभी रंजीतसिंह को लाहौर पर अधिकार किए बहुत दिन न हुए थे कि गुलाब सिंह भंगी, साहब सिंह गुजराती, जसा सिंह रामगढ़िया और क़सूर के शासक निज़ामुद्दीन ख़ां ने मिल कर रंजीतसिंह पर आक्रमण किया और लाहौर के निकट भसीन नामी गाँव के मैदान में डेरे डाल दिए। रंजीतसिंह ने भी सेना लेकर उन का सामना करने के लिए प्रस्थान किया। दो मास तक दोनों फ़ौजें एक दूसरे के सामने डेरा

शाह ज़मां की कुछ तोपें झेलम नदी में गिर पड़ी थीं, जो रंजीतसिंह ने निकलवा कर काबुल भेज दीं। इस कारण शाह ज़मां ने प्रसन्न हो कर रंजीतसिंह को लाहौर का गवर्नर बना दिया। हमें अपनी खोज में कोई प्रामाणिक हवाला इस घटना के संबंध में नहीं मिला, बल्कि इस मन-गढंत कहानी की कहीं चर्चा भी नहीं आती। मालूम नहीं कप्तान रीड ने इस प्रकार की सुनी-सुनाई बातें अपनी रिपोर्ट में किस प्रकार लिख दीं और वहां से अन्य लेखकों ने अंधाधुंध नक़ल कर लिया। सोहन लाल, अमर नाथ, बूटी शाह और सैयद अहमद शाह ने इस बात की ओर संकेत भी नहीं किया, यद्यपि इस की चर्चा करना महाराजा के सम्मान के विरुद्ध न होता। कप्तान मरे ने भी अपनी रिपोर्ट में, जो उस ने सन् १८३३ ई० में तैयार की थी, इस घटना की कोई चर्चा नहीं की। भाई प्रेमसिंह ने इस अतथ्य वर्णन को खंडित करने में बहुत से तर्क उपस्थित किए हैं।

डाले पड़ी रहीं। कुछ छोटे-मोटे मोर्चे भी हुए परंतु कोई परिणाम न निकला। गुलाब सिंह भंगी शराब का मतवाला था। एक दिन वह बहुत शराब पी गया और अचानक मर गया। अब भंगी सेना ने भसीन से कूच किया। इस कारण अन्य सम्मिलित सेनाएं भी मैदान छोड़ भागीं, और सफलता रंजीतसिंह के हाथ रही।

इस विजय के अनंतर बहुत से नामी सरदार रंजीतसिंह के आश्रय में आ गए, जिन्हें उन की योग्यता के अनुसार, जागीरें, पद और ख़िलअतें दी गईं। पंजाब का शेर धूम-धाम के साथ लाहौर में प्रविष्ट हुआ। रंजीतसिंह ने विजय के उपलक्ष में हज़ारों रुपए ग़रीबों और दुखियों में वितरण किए और नगर में दीपमाला जलाई गई।

गड़ा हुआ ख़ज़ाना

भसीन के दो मास के युद्ध में रंजीतसिंह का बहुत रुपया ख़र्च हो चुका था। फ़ौज की तनख़्वाह देने के लिए भी ख़ज़ाने में रुपया न था। रंजीतसिंह ने अपने सरदारों से सलाह की। सरदार दल सिंह के वज़ीर दीवान मुहकम चंद ने सलाह दी कि दस हज़ार रुपया लाहौर के और पाँच-पाँच हज़ार रुपया गुजरानवाला और रामनगर के सर्राफ़ों से उधार लिया जाय जो बाद में सूद सहित अदा किया जाय। परंतु रंजीतसिंह को यह प्रस्ताव पसंद न आया। संयोग-वश नगर से बाहर पजावा बुद्धू में से सोने की अशर्फ़ियां गड़ी हुई मिलीं, जिस से फ़ौज में तनख़्वाह बाँटी गई।[1]

---

[1] देखिए मुंशी सोहन लाल लिखित 'उम्दतुत्तवारीख़'। राय बहादुर कन्हैयालाल इस घटना का दूसरी तरह वर्णन करते हैं। वह यह कि यह ख़ज़ाना और कुछ तोपें

जम्मू पर चढ़ाई

इधर से छुट्टी पा कर रंजीतसिंह ने जम्मू पर चढ़ाई की। रास्ते में मीरूवाल और नारूवाल पर विजय प्राप्त की और आठ हज़ार रुपया नज़-राने के रूप में वसूल किया। इस के बाद जसरवाल के क़िले को एक ही आक्रमण में अधिगत किया। यहां से कूच कर के जम्मू से चार मील की दूरी पर डेरा लगाया। जम्मू का राजा सामना करने के लिए तैयार न था। अतएव सब अधिकारियों को साथ ले कर रंजीतसिंह से भेंट करने आया और बीस हज़ार रुपया और एक हाथी पंजाब के शेर को भेंट किए। रंजीतसिंह ने राजा को एक मूल्यवान ख़िलअत प्रदान की और वापस चला आया। अब रंजीतसिंह स्यालकोट की ओर रवाना हुआ। यहां से नज़राना प्राप्त किया। बाद में दिलावरगढ़ पर विजय प्राप्त किया। इस प्रकार सारे इलाक़े का दौरा करता, और नज़राने वसूल करता हुआ लाहौर आ पहुँचा।

गुजरात पर धावा

भंगी सरदारों को लाहौर हाथ से जाते रहने का बहुत शोक था। और वह हर समय रंजीतसिंह के विरुद्ध षड्यंत्र में लगे रहते थे। रंजीतसिंह ने अपनी सेना और तोपख़ाना गूजरानवाला से मँगवा कर लाहौर ही में जमा किया था। भंगी सरदारों ने इस अवसर को उचित जाना और सरदार दल सिंह अकालगढ़ वाले से मिल कर गूजरानवाला पर आक्रमण की तैयारी करने लगे। सरदार महान सिंह ने दल सिंह को

नवाब मीर मनू ने क़िले के भीतर ज़मीन में गाड़ी थीं और इस का समाचार इसी वर्ष एक बूढ़े ने रंजीतसिंह को दिया था।

अकालगढ़ की जागीर प्रदान की थी। अतएव जब रंजीतसिंह को इन तैयारियों का पता लगा तो उसे बहुत गुस्सा आया। फ़ौरन दस हज़ार सिपाहियों और बीस तोपों को साथ कर के गुजरात पर धावा बोल दिया। भंगी सरदारों ने शहर और क़िले के दरवाज़े बंद कर लिए और बाहरी दीवार के ऊपर से रंजीतसिंह की सेना पर गोलाबारी आरंभ कर दी। रंजीतसिंह का तोपख़ाना भी सामना करने के लिए डट गया और उस ने ईंट का जवाब पत्थर से दिया। भंगी सरदारों ने अपने आप को मुक़ाबले के अयोग्य पाया और रातोंरात आदमी भेज कर बाबा साहब सिंह को बुलवाया जिस ने रंजीतसिंह से शांति की शर्तें तै कर के शहर की रक्षा की।

अकालगढ़ पर अधिकार

इस के बाद रंजीतसिंह अकालगढ़ की तरफ़ बढ़ा। सरदार दल सिंह को अपने साथ लाहौर ला कर नज़रबंद कर दिया। बाद में बाबा केसरा सिंह सोढी की सिफ़ारिश पर उसे छोड़ दिया, और अपने सामने बुला कर ख़ूब लज्जित किया। दल सिंह ने अपनी निर्दोषता का बड़े विनम्र भाव से विश्वास दिलाया। रंजीतसिंह ने उस की संपत्ति उसे वापस कर दी। परंतु उसे अपनी अनुपयुक्त कृति पर इतना शोक हुआ कि अकालगढ़ पहुँच कर थोड़े समय बाद ही वह परलोक सिधारा। रंजीतसिंह शोक प्रकट करने के लिए अकालगढ़ गया और दल सिंह की स्त्री के गुज़ारे के लिए उचित जागीर प्रदान करके अकालगढ़ के इलाक़े को उस ने अपने इलाक़े में सम्मिलित कर दिया।

अंग्रेज़ी सरकार की भेंट

इन्हीं दिनों अंग्रेज़ी सरकार का एजेंट यूसुफ़ अली ख़ां रंजीतसिंह

के दरबार में उपस्थित हुआ और हिंद की सरकार की ओर से मूल्यवान भेंट और मैत्री का संदेश लाया। रंजीतसिंह ने अंग्रेज़ी एजेंट का बड़ा सम्मान किया। उसे पाँच वस्त्र ख़िलअत रूप में प्रदान किए और मैत्री के संदेश के साथ अमूल्य भेंट दे कर बिदा किया।

युवराज खड्‌क सिंह का जन्म—१२ फागुन सं० १८५७ वि०

मार्च मास सन् १८०१ ई० में रानी दातार कुँवर नकई के पेट से रंजीतसिंह के यहां पुत्र उत्पन्न हुआ, जिस का नाम खड़क सिंह रक्खा गया। देश में बड़ी ख़ुशी मनाई गई। ग़रीबों और अनाथों में रुपया बाँटा गया। सेना में भी इनाम बाँटे गए। रंजीतसिंह ने तोशाख़ाने के अधिकारी करम सिंह को आज्ञा दे दी कि जो कोई याचक आए उसे संतुष्ट कर दे। चालीस दिन लगातार ख़ुशियां मनाई गईं और जलसे होते रहे और सिख धर्म के संस्कार किए गए।

महाराजा की उपाधि ग्रहण करना—अप्रैल सन् १८०१ ई०

संवत् १८५८ विक्रमी के आरंभ में रंजीतसिंह ने लाहौर में एक विशाल जलसा रचाया जिस में सब बड़े-बड़े सरदार एकत्र हुए। इस में यह निश्चय हुआ कि रंजीतसिंह महाराजा की उपाधि ग्रहण करे। इस उत्सव के मनाने के लिए वैसाखी का शुभ दिन नियत हुआ। उस दिन क़िले के भीतर दीवान-आम में बड़ी शान का दरबार लगाया गया, जिस में दूर-दूर के इलाक़ों के सिख सरदार सम्मिलित हुए। धार्मिक कर्मकांडों के अनंतर बाबा साहब सिंह बेदी ने पंजाब के शेर को महाराजा की उपाधि दी और तिलक लगाया। उपस्थित लोगों ने महाराजा पर पुष्प-वर्षा कर के अपनी प्रसन्नता प्रकट की। महाराजा की ओर से बहुत-सा

धन दान किया गया। सरदारों को उन के पद के अनुसार ख़िलअतें प्रदान हुईं।[1]

महाराजा का नया सिक्का चलाना

उसी दिन इस उत्सव के उपलक्ष में नया सिक्का जारी करने का प्रस्ताव उपस्थित हुआ। कवियों ने महाराजा के नाम पर कविताएं लिख कर पेश कीं, परंतु महाराजा ने अपने नाम पर कोई पद्य पसंद न किया वरन् श्री गुरु नानक जी के नाम पर सिक्का चलाना उचित समझा। अतएव रुपए का नाम नानकशाही रुपया और पैसे का नानकशाही पैसा रक्खा गया। नए सिक्के पर यह पंक्तियां अंकित की गईं—

देग़ो तेग़ो फ़तह नसरत बेदरंग।
याफ़्त अज़ नानक गुरू गोबिंद सिंघ॥

पहले दिन जितने सिक्के टकसाल से निकले दान कर दिए गए। रुपए का तौल ११ माशा दो रत्ती नियत हुआ। बाद में भी यही तौल रुपए की असली मात्रा समझी गई।

प्रबंध-संबंधी परामर्श

रिवाज के अनुसार आपस के झगड़ों के फ़ैसले के लिए पंचायतें नियत हुईं। मुसल्मानों के फ़ैसले शरीयत के अनुसार किए जाने लगे। क़ाज़ियों, मुफ़्तियों और आलिमों के नियमपूर्वक वेतन निर्धारित किए गए। अतएव लाहौर का प्रथम क़ाज़ी निज़ामुद्दीन और मुफ़्ती मुहम्मद

---

[1] विस्तृत हाल जानने के लिए 'ज़फ़रनामा रंजीतसिंह' व भाई प्रेमसिंह कृत 'महाराजा रंजीतसिंह' देखिए।

शाहपूर और सैयदुल्ला चिश्ती नियुक्त किए गए। उन्हें मूल्यवान खिलअतें प्रदान हुईं। शहर मुहल्लों में विभक्त किया गया और प्रत्येक मुहल्ले का एक-एक चौधरी नियुक्त किया गया। शहर की रक्षा के लिए कोतवाल और पुलीस नियुक्त हुई। अतएव पहला कोतवाल इमाम बख़्श ख़रसवार था। स्वास्थ्य-रक्षा के सिद्धांत व्यवहार में लाए गए। रोगियों के लिए ख़ैराती औषधालय खोले गए, जिन में यूनानी रीति से इलाज किया जाता था। हकीम नूरुद्दीन फ़क़ीर अज़ीज़ुद्दीन का छोटा भाई औषधालयों का प्रधान अधिकारी बनाया गया। शहर के चारों ओर रक्षा के लिए नई दीवार बनवाई गई, जिस पर एक लाख रुपया ख़र्च हुआ। शहर के फाटकों पर नए रक्षक नियुक्त किए गए। सारांश यह कि इस सुप्रबंध से महाराजा की प्रजा आराम से जीवन-व्यतीत करने लगी।[1]

क़सूर का घेरा

पहले इस की चर्चा हो चुकी है कि क़सूर का पठान हाकिम नवाब निज़ामुद्दीन लाहौर पर अधिकार करना चाहता था परंतु रंजीतसिंह उस से बाज़ी ले गया और उस के आने से पहले ही लाहौर पर अधिकारी बन गया। अतएव निज़ामुद्दीन उस से ईर्ष्या करने लगा। वह सिख मिस्लदारों के साथ भसीन के युद्ध में भी सम्मिलित हुआ था। इस के बाद गुजरात के शासक साहब सिंह को उत्तेजित करता रहा। इस लिए महाराजा को जब कुछ अवसर मिला तो निज़ामुद्दीन को उस के किए की

---

[1] विस्तृत वर्णन के लिए 'ज़फ़रनामा रंजीतसिंह' और मुंशी कन्हैयालाल कृत 'तारीख़े-पंजाब' देखिए।

सज़ा देना मुनासिब समझा। सरदार फ़तेह सिंह कालियानवाले की अधीनता में सन् १८०१ ई० के अंत में एक बलशाली सेना क़सूर की तरफ़ भेजी। नगर से बाहर पठानों ने घोर विरोध किया परंतु जम कर न लड़ सके। क़रीब तीन घंटे तक घमासान युद्ध हुआ, जिस के बाद पठानों के पाँव उखड़ गए, और वह मैदान से भाग कर क़िले में जा छिपे। सिखों ने पीछा किया। शहर के द्वार तोड़ कर अंदर घुस आए। निज़ामुद्दीन ख़ां ने संधि कर लेना नीति के अनुकूल समझा। सफ़ेद झंडा लहराया गया। लड़ाई बंद हो गई। निज़ामुद्दीन ने सब शर्तें स्वीकार कर लीं, और वह महाराजा का कर देने वाला सूबेदार बन गया। युद्ध के व्यय के बदले में भारी रक़म दी। आगे भी ठीक आचरण करने की प्रतिज्ञा की और उस की ज़मानत में अपने भाई क़ुतबदीन राजा ख़ां और वासिल ख़ां को लाहौर भेजा।

काँगड़ा का आक्रमण

इन्हीं दिनों रानी सदा कुँवर ने रंजीतसिंह के पास संदेशा भेजा कि उस के इलाक़े पर संसार चंद आक्रमण करना चाहता है। महाराजा छः हज़ार सवार ले कर बटाला पहुँचा। जब राजा संसार चंद को पता चला कि रंजीतसिंह रानी सदा कुँवर की सहायता के लिए आ पहुँचा है तो वह इतना डरा कि बिना लड़ाई के ही रातोंरात मैदान छोड़ कर भाग गया और पहाड़ों में जा घुसा। महाराजा ने सदा कुँवर का सब इलाक़ा, जो राजा ने दबा लिया था वापस दिला दिया। इस के अतिरिक्त नूरपूर और नौशेरा इत्यादि के इलाक़े भी संसार चंद के अधिकार से ले कर सदा कुँवर की अमलदारी में सम्मिलित कर दिए।

सुजानपुर का घेरा

इस के बाद रानी सदा कुँवर ने सरदार बुध सिंह और संगत सिंह की ज़्यादतियां भी महाराजा को सुनाईं। क्योंकि वह उस के इलाक़े की प्रजा को सताते थे और देश को उलट-पलट करते थे। महाराजा ने फ़ौरन सुजानपुर के क़िले को घेर लिया, और घमासान युद्ध के अनंतर क़िले की दीवारें धरती में मिला दीं। क़िले पर अधिकार कर लिया गया। इस युद्ध में चार बड़ी तोपें महाराजा के हाथ लगीं। रंजीतसिंह ने सुजानपुर में अपना थाना स्थापित कर दिया। धरमकोट और बहरामपूर सदा कुँवर को दिलवा दिए। बुध सिंह और संगत सिंह के गुज़ारे के लिए जागीरें नियत कर दीं।

फ़तेह सिंह से भ्रातृत्व

महाराजा रंजीतसिंह अत्यंत दूरदर्शी पुरुष था। ब्याह-संबंध द्वारा उस की कन्हैया और नकई मिस्लों के साथ बड़ी घनिष्टता हो गई थी। कन्हैया मिस्ल के सैनिक बल से लाभ उठा कर वह लाहौर पर अधिकार प्राप्त कर चुका था। भंगी सरदारों के बल को दमन कर चुका था। महा-राजा की पदवी ग्रहण कर के अपना सिक्का भी प्रचलित कर चुका था। इस समय पंजाब में अहलूवालिया मिस्ल बहुत बलशाली हो रही थी, जिस के नेता सरदार जसा सिंह कलाल ने ख़ालसा दल की नींव डाली थी। उस समय इस मिस्ल का नेतृत्व सरदार फ़तेह सिंह अहलूवालिया के हाथ में था। अपनी ताक़त को बनाए रखने के लिए रंजीतसिंह ने इस मिस्ल के साथ संबंध क़ायम करना आवश्यक समझा। अतएव जब रंजीत-सिंह सन् १८०२ ई० में तरन-तारन स्नान करने गया तो सरदार फ़तेह

सिंह के पास मैत्री का संदेश भेजा, और उस से भेंट की इच्छा प्रकट की जिस पर उपर्युक्त सरदार ने भी प्रसन्नता प्रकट की। दोनों के बीच में ग्रंथ साहब रक्खा गया और निम्नलिखित प्रतिज्ञाएं और शर्तें निश्चय पाईं—

(१) एक के मित्र और शत्रु दूसरे के भी मित्र और शत्रु समझे जायँगे।

(२) दोनों के अधिकृत देश अपने ही समझे जायँगे और एक-दूसरे के इलाक़े में यात्रा करते समय कोई भेंट न माँगेगा।

(३) सरदार फ़तेह सिंह पंजाब-विजय में महाराजा रंजीतसिंह की सहायता करेगा और महाराजा विजित प्रदेशों में सरदार फ़तेह सिंह को उचित जागीरें प्रदान करेगा।

(४) तलवार बदलने की रस्म के अनंतर दोनों एक दूसरे को भाई समझेंगे।

इस प्रकार रंजीतसिंह ने न केवल अपने रास्ते की एक रुकावट को दूर कर दिया, बल्कि अहलूवालिया मिस्ल की सैनिक शक्ति को पूर्ण-रूप से उपयोग में लाने का ढंग पैदा कर लिया, जैसा कि हम आगे चल कर देखेंगे।

धनी फ़ूट्हार का दौरा

अब सरदार फ़तेह सिंह को ले कर महाराजा ने पिंडी भटियां की ओर कूच किया। यहां से चार सौ अच्छे घोड़े भेंट में वसूल किए। वह इलाक़ा सरदार फ़तेह सिंह के सुपुर्द कर दिया। उस के बाद झेलम नदी पार कर के धनी का इलाक़ा भी विजय किया। यह भी उपर्युक्त सरदार को सौंप दिया। फिर महाराजा लाहौर लौटा।

चंधीवट पर शासन

चंधीवट का इलाक़ा सरदार करम सिंह दल्लू के बेटे जसा सिंह के अधिकार में था जो परिणामदर्शी युवक न था। उस की प्रजा भी उस से तंग थी। महाराजा ने सेना का दल ले कर उधर प्रस्थान किया। जसा सिंह ने क़िले के दरवाज़े बंद कर लिए। महाराजा की सेना ने क़िले का घेरा डाल दिया। लगभग दो मास तक क़िले का घेरा बना रहा। अंत में जसा सिंह क़िला ख़ाली करने पर विवश हुआ। रंजीतसिंह ने उसे यथा-योग्य जागीर प्रदान कर के शहर और क़िले पर अधिकार कर लिया।

क़सूर के नवाब का विद्रोह

निज़ामुद्दीन ने समय देख कर पिछले साल रंजीतसिंह के शरणागत होना स्वीकार कर लिया था। लेकिन दिल से उसे यह बात कब पसंद हो सकती थी ? अतएव जब उस ने देखा कि महाराजा चंधीवट के घेरे में संलग्न है तो लाहौर के आस-पास लूट-मार आरंभ कर दी, और अपनी रक्षा के लिए बहुत से जिहादी पठान जमा कर लिए। महाराजा को पता चला कि उस की रियासत के दो गाँव पठानों ने लूट लिए हैं, और निज़ामुद्दीन विद्रोही हो गया है। महाराजा ने शीघ्र ही सरदार फ़तेह सिंह अहलूवालिया को साथ ले कर क़सूर पर आक्रमण किया। पठान पहले से खाइयां और मोर्चे तैयार कर चुके थे। बड़ा घमासान युद्ध हुआ। शेर पंजाब स्वयं तलवार हाथ में लिए हुए वैरियों पर टूट रहा था, और पठानों की गरदनों को गाजर और मूली की तरह तन से जुदा कर रहा था। अतएव बहुत से लड़ाके पठान तलवार की घाट उतरे। पठान बड़े जोश और उत्साह से लड़े परंतु, सामना करने की असमर्थता के कारण क़िले में जा

घुसे। महाराजा की सेना ने क़िले पर गोलाबारी शुरू की जिस से पठान घबरा गए। निज़ामुद्दीन के लिए संधि करने के सिवा कोई उपाय न रहा। सफ़ेद झंडा ले कर महाराजा के शरण में उपस्थित हुआ। बड़ी अनुनय-विनय की, और आगे के लिए सब प्रकार से सिख शासन का ख़ैरख़्वाह रहने की स्वीकृति लिख दी, और युद्ध के व्यय के अतिरिक्त एक भारी रक़म दंड-रूप में दी। इस अवसर पर सरदार फ़तेह सिंह ने अपने साहस और बहादुरी का अच्छा प्रदर्शन किया।

मुल्तान का घेरा—सन् १८०३ ई०

सन् १८०३ के आरंभ में महाराजा ने मुल्तान की ओर ध्यान दिया। परंतु महाराजा के कतिपय फ़ौजी सरदारों ने मुल्तान के घेरे के लिए अपनी अनिच्छा प्रकट की। महाराजा यह कब मानता था? फ़ौज को एकत्रित कर के एक प्रभावशाली वक्तृता दी, जिस से सिपाहियों को जोश आ गया। जय-घोष करते हुए वह युद्ध के लिए तत्पर हो गए, और थोड़े ही दिनों की कूच के अनंतर मुल्तान के नवाब की सीमा में जा प्रविष्ट हुए। नवाब मुज़फ़्फ़र ख़ां युद्ध के लिए तैयार न था, अतएव उस ने इस आपत्ति को शांति-पूर्वक दूर करना ही उचित समझा। अपने दीवान तथा अन्य राज्य-कर्मचारियों को महाराजा की सेवा में भेजा, जिन्हों ने मुल्तान से पचीस मील आगे ही महाराजा का बड़े समारोह से स्वागत किया। महाराजा उन के साथ बड़ी नर्मी से मिला। नवाब से वफ़ादारी का पत्र लिखा कर और नज़राना ले कर लौट आया।[1]

[1] मुंशी सोहन लाल लिखते हैं कि महाराजा रंजीतसिंह और नवाब मुज़फ़्फ़र ख़ां के बीच भारी युद्ध हुआ, और सिखों की सेना ने शहर में घुस कर लोगों को

युवराज खड़क सिंह की मँगनी

इसी साल युवराज खड़क सिंह की मँगनी सरदार जमील सिंह कन्हैया की छोटी लड़की से निश्चय हुई। इस उत्सव पर महाराजा ने बड़ी खुशियां मनाईं। धूम-धाम के जलसे हुए और नाच-रंग की महफ़िलें गर्म हुईं।

मोरान वेश्या का हाल

दीवान अमर नाथ 'ज़फ़रनामा रंजीतसिंह' में लिखते हैं कि एक दिन महाराजा आमोद-प्रमोद और नाच और रंग की मजलिस में मग्न था कि उस की दृष्टि अचानक मोरान नामी वेश्या पर पड़ी जो अपने सुंदर करतब दिखा कर हर एक का दिल लुभा रही थी। महाराजा उस पर जी-जान से आसक्त हो गया। आसक्ति बढ़ते-बढ़ते पागलपन के दर्जे तक पहुँच गई, और कुछ काल तक महाराजा ने राज्य के कार्यों से ध्यान हटा लिया। सारा समय उसी की संगत में व्यतीत करना आरंभ किया, बल्कि इसी पागलपन की अवस्था में उस के नाम का सोने का एक सिक्का भी ढलाया। इसी को कदाचित् पंजाबी भाषा में आरसी वाली मोहर कहते हैं।[1]

लूटा, परंतु दीवान अमर नाथ सिख सेना का मुल्तान शहर में प्रवेश करने तक की चर्चा नहीं करते।

[1] दीवान अमर नाथ ने इस क़िस्से को बहुत विस्तार के साथ लिखा है और मोरान के सौंदर्य की बड़ी प्रशंसा की है। इस क़िस्से के लिखने के लिए भाई प्रेमसिंह ने अपनी किताब में सैयद मुहम्मद लतीफ़ को तीव्र आलोचना का शिकार बनाया है। परंतु कदाचित् भाई जी को यह मालूम न था कि सैयद साहब ने अपनी पुस्तक का अधिकांश दीवान अमर नाथ की रंजीतसिंह संबंधी पुस्तक से ही उद्धृत किया है।

श्री गंगा जी का स्नान

यद्यपि नौजवानी की उम्र में ही रंजीतसिंह मोरान के प्रेम में लिप्त हो गया था, परंतु महाराजा होने के कारण उस की बड़ी ज़िम्मेदारी थी, और अभी उस को सिखों का प्रबल साम्राज्य स्थापित कर के ख़ालसा नाम को प्रशस्त करना शेष था। अतएव सौभाग्यवश शीघ्र ही यह तूफ़ान उस के सिर से उठ गया और उस ने अपना ध्यान राज्य के कार्यों की ओर फेरा। रंजीतसिंह ने श्री गंगा जी के स्नान के लिए प्रस्थान किया। वहां दो सप्ताह तक ठहरा। लगभग १ लाख रुपया ग़रीबों और दुखियों में वितरण किया और लाहौर वापस आया।[1]

जालंधर के दोआबे का दौरा

हरद्वार से वापस आते हुए महाराजा ने सरदार फ़तेह सिंह अहलूवालिया से भेंट की और कुछ दिन जालंधर में ठहर गया। इसी बीच में क़स्बा फगवाड़ा और उस के आस-पास के क़िले विजय कर के सरदार फ़तेह सिंह को जागीर-रूप में भेंट किए। इस के बाद काँगड़ा के शासक राजा संसार चंद से मुठ-भेड़ हुई। उस समय संसार चंद अपने राज्य का विस्तार करने की दृष्टि से होशियारपूर के मैदानी इलाक़े में लूट-मार कर रहा था। महाराजा ने संसार चंद को क़स्बा बिजवाड़ा से निकाल दिया और वहां अपना थाना स्थापित कर लिया।

अमृतसर की विजय

अमृतसर सिखों का अत्यंत पवित्र स्थल है, और उन का धार्मिक

---

[1]दीवान अमर नाथ लिखते हैं कि मोरान ने महाराजा का साथ न छोड़ा और साथ ही गंगा जी के स्नान को हरद्वार गई।

केंद्र कहलाता है। महाराजा के मन में अमृतसर के विजय की अभिलाषा चुटकियां ले रही थी, क्योंकि इस से महाराजा की प्रतिष्ठा दो-गुना बढ़ जाती। पहले चर्चा हो चुकी है कि सरदार गुलाब सिंह भंगी मौज़ा भसीन में अधिक शराब पी जाने के कारण अचानक मर गया था। उस की स्त्री माई सोखां और एक छोटा बेटा गुरुदत्त सिंह रामगढ़िया सरदारों की सहायता से अमृतसर पर अधिकार किए हुए थे। महाराजा ने अरोड़ा-मल साहूकार द्वारा माई सोखां के कर्मचारियों से मुठ-भेड़ आरंभ की और स्वयं एक प्रबल सेना ले कर सरदार फ़तेह सिंह अहलूवालिया और रानी सदा कुँवर के साथ अमृतसर की ओर बढ़ा। रामगढ़िए सरदार भंगियों की सहायता के लिए ठीक समय पर न पहुँच सके, जिस की वजह से खुले मैदान में कोई महाराजा का सामना न कर सका। शहर के द्वार अवश्य बंद कर लिए गए, और भंगी सरदारों ने बाहरी दीवाल पर से महाराजा की सेना पर गोलाबारी आरंभ की। महाराजा ने भी तोपख़ाना सजाया। परंतु यह आडंबर केवल एक ही दिन रहा। अगले दिन १४ फागुन, सं० १८६१ वि० को सरदार जोध सिंह रामगढ़िया और फूला सिंह अकाली के समझाने से क़िला ख़ाली कर दिया गया। महाराजा का नगर पर अधिकार हो गया। गुरुदत्त सिंह और उस की माता की जागीरें नियत हो गईं।[1]

भंगियों की तोप

अब महाराजा ने अपने कर्मचारियों सहित श्री दरबार साहब के दर्शन किए और स्नान किया। श्री हर मंदिर साहब और अकाल बंगा की सेवा

[1] इतिहास के लिए देखिए मुंशी सोहन लाल कृत 'उम्दतुत्तवारीख़'।

के लिए भारी रक़म भेंट की। भंगियों के क़िले पर अधिकार हो जाने के कारण बहुत से युद्ध के हथियार और पाँच बड़ी तोपें महाराजा के हाथ आईं। इन में से एक प्रसिद्ध तोप आज तक भंगियों की तोप कहलाती है। यह सन् ११७४ हिज्री में शाह नज़ीर कारीगर ने अहमद शाह अब्दाली के लिए तैयार की थी। यह ताँबे और पीतल की मिलावट की धातु की बनी हुई है। पानीपत के तीसरे युद्ध के बाद अहमद शाह उसे लाहौर में अपने गवर्नर ख़्वाजा उबैद ख़ां की निगरानी में छोड़ गया था। सन् १७६३ ई० में सरदार हरी सिंह भंगी ने दो हज़ार सरदारों के साथ गवर्नर लाहौर का अस्त्रागार लूटा और यह तोप भी उसके हाथ आई। अब से इसे भंगियों की तोप कहने लगे। यह भंगियों के क़िले में अमृतसर में रक्खी गई। महाराजा ने उस का, क़सूर, सुजानपुर, वज़ीराबाद, और मुल्तान की पाँच बड़ी लड़ाइयों में उपयोग किया। अंतिम युद्ध में इस की नाल कुछ ख़राब हो गई। इस लिए दिल्ली दरवाज़े के बाहर एक चबूतरे पर यह गाड़ दी गई। सन् १८६० ई० में अंग्रेज़ी सरकार ने इसे अजायबघर के निकट ला कर रक्खा और अब भी यह वहीं पर रक्खी हुई है।



छठा अध्याय

पंजाब की राजनीतिक अवस्था और रंजीतसिंह की नीति

रंजीतसिंह के जीवन में नया युग—सन् १८०३ से १८०६ ई० तक

अमृतसर की विजय के उपरांत रंजीतसिंह के जीवन में एक नया युग आरंभ होता है। लाहौर और अमृतसर शहर पंजाब की नाक समझे जाते थे, और यह दोनों महाराजा के अधिकार में आ चुके थे। सिख मिस्लदारों में भंगी मिस्ल सब से अधिक प्रबल समझी जाती थी, क्योंकि लाहौर और अमृतसर इन्हीं के अधिकार में थे। रंजीतसिंह ने इन्हें हरा कर उन के अधीन देशों पर अपना अधिकार जमा लिया। कन्हैया मिस्ल भी किसी समय श्रेष्ठ समझी जाती थो। परंतु जयसिंह की मृत्यु के अनंतर यह कमज़ोर हो चुकी थी। इस की सरदारी रंजीतसिंह की सास रानी सदा कुँवर के हाथ में थी। रामगढ़िया मिस्ल भी बलशाली गिनी जाती थी। परंतु इस का सरदार जसा सिंह अब वृद्ध हो चुका था। अतएव अन्य सिख सरदारों के लिए अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए रंजीतसिंह की शरण में जाने के अतिरिक्त कोई उपाय न रहा। रंजीतसिंह पक्का सिख था। महाराजा की पदवी ग्रहण कर के गुरु नानक के नाम पर सिक्का चला चुका था। इस कारण सिखों में ऊँचा दर्जा रखता था।

पंजाब की राजनीतिक अवस्था

इस समय के पंजाब के राजनीतिक मानचित्र पर ध्यान से देखने से मालूम होगा कि पंजाब प्रांत का अधिकांश सिख मिस्लदारों के अधिकार में आ चुका था। देश के शेष भाग में स्वतंत्र या अर्ध-स्वतंत्र राज्य स्थापित हो चुके थे। मुल्तान में नवाब मुज़फ़्फ़र ख़ां सरोज़ई शासन कर रहा था। डेरा इस्माइल ख़ां नवाब अब्दुलसमद ख़ां के अधिकार में था। मनकीरा, हूत और बन्नू-कोहाट का प्रदेश मुहम्मद शाह नेवाज़ ख़ां के शासन में था। टोंक नवाब सरूर ख़ां की अमलदारी में था। यह सभी नवाब आरंभ में काबुल के अमीर की तरफ़ से गवर्नर नियुक्त हुए थे, परंतु दुर्रानी शासन के अस्त-व्यस्त होने पर स्वतंत्र हो गए थे। रियासत भावलपूर ख़ां दाऊद पोतरा के अधीन थी। पेशावर तथा उस के आस-पास फ़तह ख़ां बारकज़ई का ज़ोर था। अटक का क़िला और उस के आस-पास का इलाक़ा जहाँदाद ख़ां के नेतृत्व में वज़ीरख़ैल क़ौम के पठान दबाए बैठे थे। कश्मीर और हज़ारा फ़तेह ख़ां के भाई सरदार अज़ीम ख़ां बारकज़ई के अधिकार में था। काँगड़ा और जम्मू के पहाड़ी प्रदेशों में राजपूत प्रबल थे, जिन की राजधानियां काँगड़ा, कुलू, चंबा बसोहली, मंडी, सकेत, जम्मू इत्यादि थीं। यह पहाड़ी राजे पहले मुग़लों के कर देने वाले थे परंतु इस समय स्वतंत्र हो चुके थे। पूर्व में अंग्रेज़ों का शासन था। सन् १८०३ ई० में मरहठों की दूसरी लड़ाई के बाद मरहठों का बल नष्ट हो चुका था, और अंग्रेज़ों ने दिल्ली और सहारनपूर तक के प्रदेश विजय कर लिए थे। इस लिए जमुना तक का इलाक़ा अंग्रेज़ों के अधिकार में आ चुका था।

रंजीतसिंह की शासन-प्रथा

उपर्युक्त घटनाओं से यह स्पष्ट प्रकट होता है कि सिख सरदारों का इलाक़ा चारों तरफ़ से घिरा हुआ था। पश्चिम और पश्चिमोत्तर में मुसल्मानों के बलशाली राज्य स्थापित थे। पूर्वोत्तर में राजपूत अपने बल को सुदृढ़ करने के प्रयत्न में लगे हुए थे। पूर्व में जमुना नदी तक अंग्रेज़ों की अमलदारी स्थापित हो चुकी थी। सिखों में आपस में फूट थी। रंजीत-सिंह स्वाभाविक-रूप से बुद्धि और सूझ का पुतला था। उसे ख़ालसा सरदारों की अकथनीय दशा स्पष्ट-रूप से प्रकट हो चुकी थी। अतएव उस ने सिखों के सैनिक बल को एकत्र करने की आवश्यकता का अनुभव किया जिस से कि वैरी का सामना करने में भी सुगमता हो और पंजाब पर ख़ालसा का प्रभुत्व जमाना भी सुलभ हो। महाराजा ने इस विचार से ऐसा ही किया और धीरे-धीरे छोटे-बड़े सभी ख़ालसा मिस्लदारों और सर-दारों को अधीन कर के पंजाब में एक शानदार राज्य स्थापित कर लिया।

रंजीतसिंह की विशेषता

इसी संबंध में यह बात भी वर्णनीय है कि ज्यों ही महाराजा किसी सरदार या मिस्लदार को अधीन बनाता था, उस के अधिकार के देशों को अपने राज्य में मिला कर सरदार को उचित जागीर दे देता था, और अपने दरबार में किसी ऊँचे पद पर उसे नियुक्त कर देता था। उस की सेना को तितर-बितर न कर के अपनी सेना में मिला लेता था। इस प्रकार न तो वह सरदार ही अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा का बहुत अनुभव करता था, और न महाराजा ही अनुभवी सरदार और उस की सेना के बल से लाभ उठाने का अवसर हाथ से जाने देता था। यह सरदार महाराजा के

शासन के प्रारंभ में बड़े-बड़े पदों पर नियुक्त हुए, और यह तथा इन के वंशज महाराजा के ऐसे राजभक्त प्रमाणित हुए कि हमें उन में से एक भी ऐसा उदाहरण नहीं मिलता जिस ने महाराजा के बाद उस के वंश के साथ विश्वासघात किया हो। विशेष कर सिखों और अंग्रेज़ों के युद्ध के समय जब कि लाहौर के दरबार में विश्वासघात का बाज़ार गर्म था तब भी यह ख़ालसा अपनी राजभक्ति से नहीं टले।

झंग और ऊच पर अधिकार—अक्तूबर सन् १८०३ ई०

झंग का स्वतंत्र इलाक़ा अहमद ख़ां सियाल के अधिकार में था। अहमद ख़ां बड़ा मालदार था। इस के अस्तबल में अत्यंत सुंदर और तेज़ घोड़े थे, जिन की ख्याति चारों तरफ़ फैली हुई थी। पंजाब के शेर ने अपना दूत झंग भेजा और अहमद शाह से कहलाया कि अधीनता स्वीकार कर ले और कुछ घोड़े भेंट-स्वरूप दरबार में भेजे। अहमद ख़ां ने इस संदेश को अपने लिए अपमान-जनक समझा और दूत से बड़े अभिमान से मिला। महाराजा ने जब यह सुना, शीघ्र ही लड़ाई की तैयारी कर दी। अहमद ख़ां ने भी अपने बल की परीक्षा करने के इस अवसर को खोना उचित न समझा और अपने इलाक़े की लड़ाकी जातियों जैसे सियाल और खरल को हज़ारों की संख्या में भरती कर लिया।

दोनों फ़ौजों के आमने-सामने होते ही प्रत्येक ने तोपों के गोलों द्वारा अपने जी का ग़ुबार निकाला। फिर तलवार के हाथ चलने लगे। सिख तलवार के धनी थे। इस जोश से लड़े कि कुछ घंटों में मृतकों के ढेर लग गए। सियालों ने भी अपनी बहादुरी ख़ूब दर्शित की। महाराजा घोड़े पर सवार ख़ालसा फ़ौज का उत्साह बढ़ाता और उन्हें उत्तेजित करता

एक जगह से दूसरी जगह फिर रहा था। इतने में अहमद ख़ां के फ़ौजियों के पाँव उखड़ गए और वह युद्ध के मैदान से निकल भागे। उन्हों ने नगर में प्रवेश कर के द्वार बंद कर लिए और बाहरी दीवार पर से गोलाबारी आरंभ की। सिखों ने भी रात को ही शहर घेर लिया और तोपें चलानी आरंभ कीं। इसी बीच एक गोला महाराजा के निकट आकर गिरा और पृथ्वी में धँस गया। सिख फ़ौज में जोश फैल गया। आन की आन में द्वार तोड़ कर सैनिक शहर में घुस गए। अहमद ख़ां सुल्तान भाग गया। बाद में अहमद ख़ां ने प्रतिष्ठित आदमियों का एक दल महाराजा की सेवा में भेजा। अपने किए हुए पर क्षमा माँगी, और भारी कर देना स्वीकार किया। महाराजा बड़ा उदार हृदय व्यक्ति था। शीघ्र ही क्षमा प्रदान की। इस युद्ध में बहुत बड़ा ख़ज़ाना, अगणित मूल्यवान घोड़े और हथियार महाराजा के हाथ आए। लौटते समय छोटी-सी लड़ाई के बाद ऊच इलाक़ा भी विजय किया और महाराजा नाग सुल्तान बुख़ारी से भेंट-नज़र लेकर धूम से लाहौर लौटा।

श्री अमृतसर का दरबार—सन् १८०३ ई०

सन् १८०३ ई० की घटनाओं का वर्णन करते हुए दीवान अमर नाथ अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि इस साल कुछ हिंदुस्तानी सिपाही महाराजा की सेवा में उपस्थित हुए और महाराजा को अंग्रेज़ी फ़ौजी क़वायद के कुछ करतब दिखाए। यह लोग कदाचित् ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना से बाहर किए हुए सिपाही थे। महाराजा ने उन्हें अपने यहां नौकर रख लिया। आगे चल कर यही लेखक अमृतसर के बड़े सैनिक दरबार की चर्चा करता है। इस पवित्र स्थल पर तमाम सेना उपस्थित हुई। पंक्तियों

में प्रदर्शन करने के बाद सिपाहियों ने अपनी क़वायद दिखाई।

फ़ौजी संगठन

इसी अवसर पर बड़े-बड़े सरदारों को उपाधियां दी गईं और उन्हें निम्नलिखित प्रकार से सेना का नेतृत्व प्रदान किया गया :—

१—सरदार दिलीसा सिंह मजीठिया—चार सौ घोड़े की सरदारी।

२—सरदार हरी सिंह नलवा—आठ सौ सवार व पैदल।

३—सरदार हुकुम सिंह चिमनी—दारोग़ा छोटा तोपख़ाना और दो सौ सवार और पैदल।

४—चौधरी ग़ौस ख़ां—दारोग़ा तोपख़ाना बड़ा और दो हज़ार सवार।

५-६—शेख इबादुल्ला और रोशन ख़ां हिंदुस्तानी को कमीदानी की उपाधि दी गई और दो हज़ार सिपाहियों की पलटन के वह अफ़सर नियुक्त हुए।

७—लगभग इतने ही सिपाही बाबू बाज सिंह के नेतृत्व में रक्खे गए।

८—सरदार भाग सिंह मरालीवाला—पाँच सौ सवार।

९—मलखा सिंह शासक रावल पिंडी—सात सौ सवार व पैदल।

१०—सरदार नोध सिंह—चार सौ सवार व पैदल व परगना वैबी की जागीर प्रदान की गई।

११—सरदार अतर सिंह, बेटा सरदार सिंह धारी—पाँच सौ सवार का रिसालदार नियुक्त हुआ।

१२—सरदार मत सिंह भरानिया—पाँच सौ सवार व पैदल।

१३—मान के सरदारगण—चार सौ सवार व पैदल।

१४—सरदार करम सिंह रंगड़नंगलिया—एक सौ सवार।

१५—सरदार जोध सिंह सोड़ियांवाला—तीन सौ सवार व पैदल।

१६—सरदार निहाल सिंह अटारीवाला—पाँच सौ सवार व पैदल।

१७—सरदार गरभा सिंह—एक हज़ार सवार व पैदल।

१८—अन्य सरदारगण को दो हज़ार की सम्मिलित कमान प्रदान हुई।

इन में से प्रत्येक को जागीर प्रदान हुई।[1] और सरदारी की प्रतिष्ठा मिली।

कुल तेरह हज़ार तीन सौ सिपाही।

ताज़ीमी सरदारगण

इन के अतिरिक्त निम्न जागीरदार ताज़ीमी सरदार नियुक्त हुए, जो युद्ध के समय आवश्यकता पड़ने पर महाराजा को फ़ौज पहुँचाते थे।

१—सरदार जसा सिंह वल्द करम सिंह दोलू।

२—सरदार साहब सिंह वल्द गूजर सिंह भंगी।

३—सरदार चैत सिंह वल्द लहना सिंह भंगी।

४—सरदार भाग सिंह अहलूवालिया।

५—सरदार नार सिंह चमियारीवाला।

यह सब लगभग दस हज़ार सिपाही प्राप्त करेंगे।

६—कन्हैया मिस्ल—पाँच हज़ार सवार और पैदल।

७—नकई सरदारगण—चार हज़ार सवार व पैदल।

८—पहाड़ी राजे—पाँच हज़ार सवार व पैदल।

---

[1] सरदार फ़तेह सिंह कालियानवाला उस समय सब से बड़ा सरदार था। अतएव उस की प्रसन्नता के लिए उस के गोद लिए दल सिंह नहीरना को भी सरदारी की प्रतिष्ठा प्रदान की गई।

६—सरदारगण दोआबा—सात हज़ार सवार व प्यादा।

कुल जोड़ ३१ हज़ार सिपाही

शालामार बाग़ का नाम बदलना

इसी वर्ष की घटनाओं के संबंध में दीवान अमर नाथ लिखते हैं कि कि एक दिन महाराजा साहब अपने दरबारियों सहित लाहौर के शालामार बाग़ में सैर कर रहे थे कि शालामार के नाम-करण के विषय पर विवाद छिड़ गया। महाराजा ने कहा कि पंजाबी भाषा में शालामार का अर्थ 'ईश्वर की मार' होता है। इस लिए यह नाम अच्छा नहीं। दरबारियों ने समझाने का प्रयत्न किया कि शालामार तुर्की भाषा का शब्द है जिस का अर्थ आमोद-स्थल होता है। महाराजा ने कहा कि पंजाब में तुर्क लोगों का निवास नहीं है, जो यह अर्थ समझ सकें। यहां के लिए पंजाबी शब्द होना चाहिए। अतएव इस बाग़ के लिए 'शोहला बाग़' नाम प्रस्तावित हुआ और यह इसी नाम से विदित होने लगा। साधारण बोल-चाल में आज तक यह शोहला बाग़ ही कहलाता है।

जसवंत राय होलकर का पंजाब में आना

सन् १८०५ ई० में एक बार महाराजा मुल्तान के दौरे में संलग्न था, और मुल्तान शहर से बीस कोस की दूरी पर डेरा डाले पड़ा था। यहां से कुछ तेज़ चाल के शहसवार महाराजा की सेवा में उपस्थित हुए और यह निवेदन किया कि मरहठा सरदार जसवंत राय होलकर, इंदौर का शासक और अमीर ख़ां रुहेला ने बड़ी भारी सेना ले कर अंग्रेज़ सेना-पति लार्ड लेक से परास्त हो कर पंजाब में शरण ली है। अंग्रेज़ी सेना भी उन का पीछा करती हुई आ रही है।

मुल्तान से वापसी

महाराजा ने अपना दौरा काट के शीघ्र ही लाहौर की राह ली। यहां पहुँचते ही जसवंत राय के वकील मूल्यवान् भेटों के साथ महाराजा से मिले और अंग्रेज़ों के विरुद्ध सहायता माँगी। महाराजा ने जसवंत राय के रहने का अमृतसर में प्रबंध कर दिया और आतिथ्य के सब सामान प्रस्तुत किए। स्वयं विश्वस्त सरदारों सहित इजलास किया। सब ने कहा कि यदि इस समय होलकर और अंग्रेज़ों के बीच में युद्ध हुआ तो निश्चय ही पंजाब में होगा जिस से हमें ही हानि पहुँचेगी, और आज तक हमारे संबंध ब्रिटिश सरकार के साथ मित्रता के रहे हैं। इस लिए उन्हें क्यों छोड़ा जाय ? परंतु शरणागत आदमी को भी हताश करना धर्म नहीं। अतएव यह तै हुआ कि जिस तरह हो सके महाराजा बीच-बचाव कर के दोनों पक्षों में संधि करा दे।

सफलता और संधि

दूसरे दिन महाराजा अमृतसर पहुँचा और होलकर को समझाया। वह राज़ी हो गया। इसी आशय का एक पत्र लार्ड लेक को लिखा गया। इसी बीच में लार्ड वेलेस्ली गवर्नर-जनरल जिस के शासन-काल में मरहठों के साथ युद्ध आरंभ हुआ था बुला लिया गया था, और अंग्रेज़ी शासन की युद्ध-नीति बदल चुकी थी। नया गवर्नर-जनरल लार्ड कार्नवालिस संधि के लिए प्रस्तुत था। होलकर का इलाक़ा जो लार्ड लेक ने छीन लिया था उसे वापस मिल गया। इसी संबंध में में राजा भाग सिंह और सरदार फ़तेह सिंह अहलूवालिया ने बहुत प्रयत्न किया था। अतएव अंग्रेज़ी सरकार ने महाराजा साहब और अहलूवालिया सरदारों

के साथ मैत्री के संबंध अधिक दृढ़ करने आरंभ कर दिए।[1]

श्री कटास जी का स्नान

जसवंत राय होलकर के पंजाब से वापस जाने के बाद महाराजा रंजीत-सिंह ने श्री कटास जी के स्नान का इरादा किया। कटास खेवड़ा की नमक की कान के निकट एक पवित्र स्थल है, जहां वैसाखी के दिन बड़ा भारी मेला होता है। कटास से वापस आते समय महाराजा बीमार हो गया था, परंतु शीघ्र ही उस ने स्वास्थ्य-लाभ किया, फिर लाहौर वापस आया।

शालामार बाग़ की मरम्मत

लाहौर पहुँच कर महाराजा ने शालामार में डेरे लगाए। उस की मरम्मत पर बहुत-सा रुपया व्यय किया। नहर हंसली या नहर अली मर्दान ख़ां जो इसे सिंचित और प्रफुल्लित करती थी फिर से खुदवाई गई। फल-फूल इत्यादि से इसे वह सौंदर्य प्रदान किया जो शाहजहां के बाद इसे कभी प्राप्त न हुआ था।



[1]इसी संबंध में मुंशी सोहन लाल एक मनोरंजक घटना का वर्णन करते हैं कि एक बार बात-चीत के बीच महाराजा ने कप्तान रीड को बतलाया कि जब जसवंत राय होलकर उस के पास सहायता के लिए आया तो महाराजा ने ख़ालसा की पवित्र पुस्तक अर्थात् ग्रंथ साहब की सहायता माँगी। दो कागज़ के टुकड़ों पर अंग्रेज़ों और होलकर का नाम लिख कर डाला। ग्रंथ साहब ने अंग्रेज़ों के पक्ष में निर्णय दिया।

सातवां अध्याय

सतलज पार की सिख रियासतों से संबंध और अन्य विजय (सन् १८०६–१८०८ ई०)

प्रारंभिक कथन

लगातार सन् १८०६ ई० से १८०८ ई० तक महाराजा रंजीतसिंह युद्धों में नितांत व्यस्त था, मानो उस का पाँव हर दम घोड़े की रिकाब में रहता था। जवानी का ज़माना था, ताक़त पूरे ज़ोरों पर थी। अतएव महाराजा ने सतलज पार किया। सिख मिस्लों के युद्ध से पूरा लाभ उठाने का प्रयत्न किया। क़सूर के बलशाली पठानों के बल को नष्ट कर दिया। पहाड़ी प्रदेश पर अपना अधिकार जमा लिया। विजयों के जोश में अंग्रेज़ों तक के साथ मुठ-भेड़ की नौबत पहुँचा दी, परंतु अंत में उन के साथ मित्रता की संधि निश्चित पाई, जिस से महाराजा के जीवन में एक नया युग आरंभ होता है।

सतलज पार की सिख रियासतों की आपस की लड़ाइयां

दलादी नाम का गाँव पटियाला के राजा साहब सिंह और नाभा के राजा जसवंत सिंह की सीमा पर स्थित था, जिसे इन में से प्रत्येक राजा अपनी संपत्ति ख़याल करता था। भाई तारा सिंह राजा पटियाला का प्रतिनिधि उस गाँव में ठहरा हुआ था। किसी ने उस की हत्या कर दी। राजा पटियाला ने जसवंत सिंह नाभा नरेश पर संदेह किया। झगड़ा बढ़ गया

लड़ाई की नौबत पहुँच गई। जींद-नरेश राजा भाग सिंह नाभा नरेश का साथी बन गया। सरदार महताब सिंह थानेसरवाला और भाई लाल सिंह कथैलवाला पटियाला के साथ मिल गए। युद्ध आरंभ हो गया और उस युद्ध में सरदार महताब सिंह काम आया। राजा पटियाला गुस्से के मारे लाल पीला हो गया।

रंजीतसिंह से सहायता की प्रार्थना

अतएव महाराजा रंजीतसिंह से वह सहायता का प्रार्थी हुआ। अपने वकील सरदार ध्यान सिंह को महाराजा की सेवा में भेजा, जिस ने एक अत्यंत सुंदर और मूल्यवान् मोतियों का हार महाराजा की भेंट कर के अपने स्वामी का संदेश कह सुनाया। रंजीतसिंह ऐसे स्वर्ण अवसर को कहां खोने वाला था? अब सतलज पार की रियासतों में हस्तक्षेप का अवसर आया था। अतएव उधर जाने की फ़ौरन तैयारी कर ली।

रंजीतसिंह का प्रस्थान

रंजीतसिंह ने अपने तोपख़ाने को कूच की आज्ञा दी। अन्य सरदारों के नाम भी आज्ञापत्र भेजे गए कि अपनी-अपनी सेनाएं ले कर व्यास नदी के किनारे वीरूवाल में इकट्ठा हो जाँय। दशहरा समाप्त होने पर महाराजा स्वयं भी रवाना हो गया। रास्ते में फ़ज़ीलपुरिया मिस्ल के सरदार से एक हाथी और बहुत-सा नक़द रुपया भेंट-स्वरूप लिया, फिर कपूरथला के सरदार फ़तेह सिंह अहलूवालिया के साथ करतारपूर पहुँचा। यहां सोढी बाबा गुलाब सिंह ने दो अच्छी तोपें महाराजा को भेंट कीं। इस के बाद जालंधर की ओर अग्रसर हुआ, जहां के हाकिम बुध सिंह ने कई घोड़े और नक़द रुपया भेंट किया। अब पूरी सेना एकत्र हुई।

डलीवाली मिस्ल का सरदार तारा सिंह घेबा इतनी बड़ी सेना देख कर घबरा गया और पचीस हज़ार रुपया नक़द भेंट कर महाराजा की अधीनता स्वीकार कर ली। महाराजा वहां से पहलूर पहुँचा और सरदार धर्म सिंह हाकिम पहलूर से भेंट प्राप्त किया। इस के बाद लुधियाना और जगरांव के क़िलों पर अधिकार जमाया। इस प्रकार दौरा करता हुआ रंजीतसिंह पटियाला के इलाक़े में जा पहुँचा।

रंजीतसिंह का निर्णय

यहां पटियाला, नाभा और जींद के राजाओं ने बड़े उत्साह के साथ महाराजा का स्वागत किया। और आतिथ्य-सत्कार में कोई कसर उठा न रक्खी। कुछ दिनों के विश्राम के अनंतर महाराजा ने दोनों पक्षों की माँगें सुनीं और कुछ प्रयत्न के अनंतर राजा पटियाला को दलाली गाँव का हक़दार निर्णय किया। राजा नाभा को प्रसन्न करने की इच्छा से कूट-वासिया, तालवंडी, और जगरांव तथा इन के साथ इकतीस देहात जिन की आय चौबीस हज़ार रुपया वार्षिक थी प्रदान किए। इसी प्रकार राजा जींद को लुधियाना और उस के आस-पास का इलाक़ा प्रदान किया। सरदार फ़तेह सिंह अहलूवालिया को भी बहुत-सा इलाक़ा प्रदान किया गया। इस के अनंतर महाराजा जालंधर की तरफ़ लौटा, जहां कुछ दिन शिकार खेलने में व्यतीत किए।

काँगड़ा के राजा की सहायता के लिए प्रार्थना

महाराजा अभी जालंधर में ही ठहरा था कि राजा संसार चंद काँगड़ा-नरेश का भाई मियां फ़तह चंद महाराजा के पास आया और बताया कि नेपाल का सेनापति अमर सिंह थापा तेज़ गोरखा फ़ौज के साथ पहाड़ी प्रदेश

को विजय कर रहा है। कई पहाड़ी रियासतें, उदाहरणार्थ सिरमौर गढ़-वाल और नालागढ़ इत्यादि विजय कर चुका है और अब काँगड़ा पर चढ़ आया है। राजा संसार चंद क़िले में बंद है, और आप से सहायता का प्रार्थी है।

गोरखा फ़ौज का भागना

रंजीतसिंह ने फ़ौरन इसे स्वीकार कर लिया और काँगड़ा की तरफ़ प्रस्थान किया। यह सुन कर सेनापति अमर सिंह घबराया और अपने विश्वस्त प्रतिनिधि ज़ोरावर सिंह को महाराजा के पास भेजा, जिस ने रंजीत-सिंह से संसार चंद की सहायता न करने की प्रार्थना की और इस के बदले में भारी रक़म भेंट-स्वरूप प्रस्तुत करने का वचन भेजा। परंतु रंजीत-सिंह ने एक न सुनी। सिख फ़ौज आगे बढ़ी और ज्वालामुखी के पवित्र स्थान पर जा पहुँची। गर्मी की अधिकता से गोरखा सेना में बीमारी फैल गई थी। अतएव अमर सिंह ने रातोंरात काँगड़ा क़िले का घेरा छोड़ दिया और मंडी-सकेत जा कर दम लिया। राजा संसार चंद ने दो घोड़े और तीन हज़ार रुपया भेंट स्वरूप प्रस्तुत किया। महाराजा ने एक हज़ार फ़ौज का दल नादून के क़िले में छोड़ा और साथ ही सरदार फ़तेह सिंह कालियान-वाला को अमर सिंह थापा की गति और कृतियों के निरीक्षण के लिए कुछ समय तक बिजवाड़ा में ठहरने की आज्ञा दी और स्वयं लाहौर के लिए प्रस्थान किया।

कुँवर शेर सिंह और तारा सिंह का जन्म

ज्वालामुखी के निकट रानी सदा कुँवर का एक तेज़ सवार ख़ुशी का संवाद लाया कि उस की बेटी महारानी महताब कुँवर की कोख से महा-

राजा के दो पुत्र उत्पन्न हुए। अतएव बहुत खुशियां मनाई गईं और धूम-धाम के जलसे हुए। शुभ लग्न के अनुसार एक का नाम कुँवर शेर सिंह और दूसरे का कुँवर तारा सिंह रक्खा गया। यही कुँवर शेर सिंह बाद में महाराज शेर सिंह हुआ।

युवराज के जन्म के संबंध में विभिन्न मत

अंग्रेज़ी इतिहास-लेखक जैसे मरे, वेड और डाक्टर हांगबर्गर लिखते कि यह दोनों शहज़ादे महाराजा रंजीतसिंह के बेटे नहीं थे और न महताब कुँवर के कुल से उत्पन्न हुए थे। वरन् रानी सदा कुँवर ने बड़ी चालाकी के साथ यह दोनों बच्चे किसी पड़ोसी से प्राप्त कर के अपनी बेटी की कोख से पैदा हुए कह के प्रसिद्ध कर दिए। हिंदुस्तानी इतिहास लेखकों ने भी यह कहानी यहां से प्राप्त कर के अपनी पुस्तकों में लिख दी। सैयद मुहम्मद लतीफ़ ने तो इस के संबंध में एक बड़ा विस्तृत क़िस्सा गढ़ दिया है। भाई प्रेम सिंह ने अपनी पुस्तक में इस क़िस्से के प्रतिवाद का प्रयत्न किया है। यद्यपि हम निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकते लेकिन यह अवश्य मालूम पड़ता है कि सन् १८३३ ई० के लगभग यह कहानी सच हो या झूठ लोगों में प्रसिद्ध हो चुकी थी, और वह विश्वास भी करने लगे थे। हांगबर्गर भी इस काल में दरबार में लाहौर में रहता था। कप्तान वेड महाराजा के यहां बहुत आता-जाता था। दीवान अमर नाथ जो उस समय कम अवस्था का युवक था महाराजा का चरित्र लिखने में लगा था। वह भी इस घटना की ओर छिपे ढंग से संकेत करता जान पड़ता है।[१]

[१] 'ज़फ़रनामा रंजीतसिंह', पृष्ठ ४०

क़सूर पर फ़ौज ले जाना—सन् १८०७ ई०

नवाब निज़ामुद्दीन मर चुका था, और उस का भाई क़ुतुबुद्दीन ख़ां क़सूर का नवाब था। यह महाराजा की अधीनता स्वीकार करने के लिए तैयार न था। वास्तव में पहले भी क़सूर का नवाब हृदय से महाराजा के वश में आने को राज़ी न था। इधर महाराजा को भी यह बात ठीक न मालूम पड़ती थी कि उस से इतने निकट पठानों की छोटी-सी स्वतंत्र रियासत बनी रहे, और उसे हर समय यह भय रहे कि उस के शासक वैरियों से मिल कर षड्यंत्र कर रहे हैं। अतएव कांगड़ा से वापस आते समय महाराजा ने क़सूर के दमन का पक्का निश्चय कर लिया, और तोपख़ाने सहित सेना को आज्ञा दी कि वह सीधे क़सूर पहुँच जाय। अन्य सरदारों के नाम भी आज्ञाएं निकालीं, कि वह अपने सिपाहियों को ले कर क़सूर पहुँचें।

क़सूर का दमन

अतएव फ़रवरी १८०७ ई० में क़सूर पर चढ़ाई हुई। उधर क़ुतुबुद्दीन ने भी महाराजा की इच्छा भाँपते हुए जिहादी पठानों के दल के दल इकट्ठा कर लिए और पूरी तरह युद्ध की तैयारियां कर लीं। महाराजा को जब इन तैयारियों का पता लगा तो उस ने स्वयं भी सेना की संख्या में वृद्धि कर ली। विशेष कर बहादुर अकालियों के जत्थों को अमृतसर से बुला लिया। १० फ़रवरी के सवेरे क़सूर पर धावा बोल दिया गया। नवाब के ग़ाज़ी भी ख़ालसा सेना पर टूट पड़े। दो घोर लड़ाइयों के बाद पठानों के पाँव उखड़ गए। उन में कोलाहल फैल गया और अव्यवस्था उपस्थित हो गई। नवाब ने भाग कर क़िले में शरण ली। सिखों ने

क़िले का घेरा कर लिया। एक मास तक दोनों पक्षों में गोलाबारी जारी रही परंतु क़िले के विजय करने का कोई उपाय न दृष्टि में आता था। क्योंकि क़िला बहुत दृढ़ था और उस में रसद का सामान भी पर्याप्त मात्रा में था। अतएव महाराजा ने प्रस्ताव किया कि क़िले की एक ओर की दीवार को सुरंग लगा कर उड़ा दिया जाय। एक चुने हुए दल ने रातोंरात क़िले की दीवार के नीचे सुरंग खोद डाली। सवेरा होने तक बारूद भर कर आग लगा दी। क़िले का पश्चिमी भाग उड़ कर अलग जा पड़ा। सिखों की सेना ने क़िले में प्रवेश किया। अब तो ग़ाज़ियों ने तलवार का जवाब तलवार से देने में कोई कसर न उठा रक्खी। ख़ून की नदियां बह निकलीं मगर बहादुर ख़ालसा क़िले पर अधिकार करने में सफल हुए।

नवाब से उदारता का व्यवहार

नवाब भागता हुआ पकड़ा गया और महाराजा के सामने लाया गया। उस ने प्राणरक्षा की प्रार्थना की। सरदार फ़तेह सिंह कालियानवाला ने बड़े ज़ोर से नवाब की सिफ़ारिश की। रंजीतसिंह ने क्षमाप्रदान की और सतलज पार 'ममदोत' का इलाक़ा, जिस की वार्षिक आय लगभग १ लाख रुपया थी नवाब को जागीर के रूप में प्रदान किया। इस युद्ध में अकाली फूला सिंह, सरदार धना सिंह मुलवई और सरदार निहाल सिंह अटारीवाला ने विशेष कारनामे दिखाए। अतएव क़सूर का इलाक़ा सरदार निहाल सिंह अटारीवाले को जागीर-रूप में प्रदान किया गया। क़सूर के क़िले से असंख्य धन, नक़द और वस्तुओं के रूप में, महाराजा के हाथों लगा। यहां से विजय और प्रसन्नता के बाजे बजाते हुए महाराजा साहब लाहौर में प्रविष्ट हुए।

मुल्तान पर आक्रमण

मुल्तान का नवाब छिपी हुई रीति से क़सूर के नवाब को सहायता पहुँचा रहा था, इस लिए रंजीतसिंह ने उसे भी उस के किए पर दंड देने का विचार किया। पंजाब का शेर स्वयं न थकने वाला और साहसी वीर था और उस ने ऐसा ही अपनी ख़ालसा सेना को भी बना रक्खा था। अतएव लाहौर में केवल दो सप्ताह ठहर कर मुल्तान के लिए कूच किया। ख़ालसा सेना ने नगर की चारदीवारी से बाहर के मकानों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। नवाब मुज़फ़्फ़र ख़ां ने अपने आप को सामना करने के अनुपयुक्त पाया, और बहावलपूर के नवाब बहावल ख़ां से सहायता की प्रार्थना की। नवाब बहावलपूर ने अपना वकील मुंशी धनपत राय महाराजा की सेवा में भेजा। उधर मुज़फ़्फ़र ख़ां को समझाया। अतएव दोनों पक्षवालों में समझौता हो गया। मुज़फ़्फ़र ख़ां ने सत्तर हज़ार रुपया नज़राने के रूप में प्रस्तुत किया और महाराजा लाहौर वापस आया।

पटियाला का गृह-कलह

इन्हीं दिनों राजा पटियाला और उस की रानी आस कुँवर के बीच घरेलू कारणों से झगड़ा हो गया। रानी अपने बेटे कुँवर करम सिंह को युवराज नियुक्त कराना चाहती थी। लेकिन राजा अपने जीवन-काल में ऐसा करने के लिए तैयार न था। झगड़ा बढ़ गया और रियासत में दो दल बन गए। कुछ सरदार और सेना राजा की ओर हो गई; शेष ने रानी की सहायता की। युद्ध की तैयारी हो गई। परंतु कुछ राज-मंत्रियों के समझाने पर यह नीति-युक्त समझा गया कि राजा रंजीतसिंह को पंच बनाने के लिए उस से प्रार्थना की जाय।

महाराजा का निर्णय

महाराजा तुरंत एक बड़ी सेना ले कर पटियाला पहुँचा। राजा पटियाला ने राज-मंत्रियों सहित महाराजा का शानदार स्वागत किया और असाधारण आतिथ्य प्रदर्शित किया। कुछ दिनों के बाद रंजीतसिंह ने ख़ास विषय पर ध्यान दिया। दोनों पक्षों की माँगें बड़े ध्यान-पूर्वक सुनीं और यह निर्णय किया कि साहब सिंह के जीते जी युवराज के नियुक्त करने की कोई आवश्यकता नहीं। रानी और उस के बेटे करम सिंह को पचास हज़ार रुपया वार्षिक आय की जागीर दिलवा दी। रानी आस कुँवर भी इस पर राज़ी हो गई।

भेंटों के ढेर

महाराजा के प्रस्थान के समय राजा पटियाला ने प्रथा के अनुसार रंजीतसिंह को भेंट प्रस्तुत किया जिस में सत्तर हज़ार रुपए के मूल्य के जवाहिरात थे। इस के अतिरिक्त एक सुंदर पीतल की तोप भी भेंट की। सतलज पार के छोटे-बड़े सरदार महाराजा की बड़ी सेना देख कर भयभीत हो रहे थे। अतएव हर एक ने मूल्यवान् भेंट प्रस्तुत कर के आई हुआ बला को टालना उचित समझा। अतएव भाई लाल सिंह कैथल-वाले ने बारह हज़ार रुपए और मालेरकोटला के पठान हाकिम ने चालीस हज़ार रुपए भेंट किए। इसी प्रकार सरदार करम सिंह शाहाबादिया, सरदार भगवान सिंह शाहपूरिया और सरदार स्वर्गीय गुरु बख़्श सिंह अंबालवी की विधवा ने भी भेंटें प्रस्तुत कीं।

क़िला नारायनगढ़ का घेरा

अंबाला पहुँच कर महाराजा को समाचार मिला कि रियासत सिरमौर

का राजा किशन सिंह महाराजा की अधीनता स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। अतएव महाराजा ने तुरंत नारायनगढ़ को कूच किया। यह क़िला एक सुंदर स्थल पर अत्यंत सुदृढ़ बना हुआ था। जिस के ऊँचे दमदमों में बहुत-सी भारी तोपें सजी हुई थीं। किशन सिंह ने सामना करने की तैयारी कर ली। महाराजा ने क़िले का घेरा डाल दिया। सरदार फ़तेह सिंह कालियानवाला एक दल सेना का ले कर आगे बढ़ा, जिस में वह वैरी की तोपों पर अधिकार कर ले। यह बहादुर बहुत निडरपन से वैरी पर टूट पड़ा और दो तोपें छीनने में सफल हुआ। अभी यह तोपें वह अपनी तरफ़ खिंचवा ही रहा था कि सामने से एक गोली आई और सरदार फ़तेह सिंह की छाती में बैठ गई और आन की आन में यह वीर दूसरे लोक को सिधारा। रंजीतसिंह एक ऊँचे स्थल से यह सब रंग देख रहा था। अपने बहादुर सरदार की मृत्यु से उसे अत्यंत शोक हुआ।[1] उसी समय सरदार मोहन सिंह कमीदान और दीवान सिंह भंडारी के दो दल आगे बढ़े। अभाग्यवश यह दोनों सरदार भी वहीं काम आए। यह देख कर ख़ालसा फ़ौज को बड़ा क्रोध आया।

---

[1] सरदार फ़तेह सिंह कालियानवाला महाराजा का बड़ा विश्वस्त सरदार था। फ़तेह सिंह के वंश और महाराजा के वंश में तीन पीढ़ियों से मैत्री का संबंध चला आता था। उक्त सरदार सन् १७९८ ई० में महाराजा की सेना में प्रविष्ट हुआ। और लाहौर अमृतसर के दमन में उस ने अपनी अच्छी कारगुज़ारी दिखाई। क़सूर और चिनवट की विजय उसी के कारण संभव हुई। अतएव महाराजा सरदार फ़तेह सिंह को बहुत प्रिय कर के मान था, और उसे लगभग साढ़े तीन लाख वार्षिक की जागीर प्रदान कर रक्खी थी। छोटे-बड़े सिख सरदार भी उस के झंडे के नीचे लड़ना अपने लिए बड़े गौरव की बात समझते थे।

सिख बहादुर पागलपन के जोश में आगे बढ़े। गोलियों की मूसलाधार वर्षा कर दी। कुछ ही क्षण में क़िले पर अधिकार कर लिया। राजा किशन सिंह जान बचा कर भागा। महाराजा ने नारायनगढ़ का इलाक़ा फ़तेह सिंह अहलूवालया को जागीर में प्रदान कर दिया। यहां से नौशेरा मोरंडा बहलोलपूर इत्यादि विजय कर के महाराजा ने लाहौर की ओर प्रस्थान किया।

डलीवाली मिस्ल का महाराजा के अधिकार में आना

लाहौर आते समय महाराजा जालंधर में ठहरा ही था कि उसे समाचार मिला की सरदार तारा सिंह घेबा, जो कुछ दिन पहले पटियाला के दौरे में महाराजा का साथी था मर गया है। महाराजा तुरंत उस के यहां समवेदना प्रकाशनार्थ पहुँचा। सरदार के आश्रितों के लिए उचित जागीर प्रदान कर के डलीवाली मिस्ल की सेना और अधिकृत स्थलों को वह अपने अधिकार में ले आया। इस प्रकार राहों, नकोदर, नौशेरा इत्यादि का सारा इलाक़ा जो सात लाख सालाना से भी अधिक आय का था महाराजा के पास आ गया।

दीवान मुहकम चंद का महाराजा की सेना में भरती होना

इसी वर्ष महाराजा का प्रसिद्ध सेनापति दीवान मुहकम चंद महाराजा की सेना में भरती हुआ।[1] मुहकम चंद सब से पहले सरदार दल सिंह अकालगढ़ वाले की नौकरी में दीवान के पद पर नियुक्त था। सन् १८०४ ई० में महाराजा ने दल सिंह का इलाक़ा विजय कर लिया और मुहकम चंद सरदार साहब सिंह गुजरात वाले की सेना में उच्च पद पर

[1] ग्रिफ़न साहब यह तिथि कुछ मास पूर्व देते हैं।

आसीन हुआ। दीवान उच्च कोटि की सैनिक योग्यता रखता था और इसे महाराजा ने साहब सिंह के साथ युद्ध करते समय ताड़ लिया था। सन् १८०७ ई० में साहब सिंह और दीवान में अनबन हो गई और मुहकम चंद अपनी नौकरी छोड़ कर महाराजा की सेवा में उपस्थित हुआ। रंजीत-सिंह बहुत प्रसन्न हुआ और उसे उच्च सैनिक पद प्रदान किया। एक हाथी, ताज़ी घोड़ा और अलम व क़लम प्रदान किया। सरकारी फ़ौज के एक हज़ार सवार और दोआबा के जागीरदारों की डेढ़ हज़ार फ़ौज का नेतृत्व दिया और डलीवाली मिस्ल का प्रायः सारा इलाक़ा जागीर रूप में प्रदान किया। दीवान मुहकम चंद ने अपने इलाक़े का प्रबंध इस योग्यता से किया कि डलीवाली मिस्ल का हर एक सरदार अपनी सेना सहित महाराजा की फ़ौज में भरती हो गया। सर लेपल ग्रिफ़न लिखते हैं कि 'दीवान मुहकम चंद रंजीतसिंह के सेनापतियों में सब से अधिक योग्य था। उसी की होशियारी और वीरता के कारण रंजीतसिंह छोटी सी रिया-सत से लेकर पंजाब का साम्राज्य स्थापित करने में समर्थ हुआ।'

पहाड़ी इलाक़े का दमन

जनवरी सन् १८०८ ई० में रंजीतसिंह ने पहाड़ी इलाक़े के दमन की इच्छा की। दीवान मुहकम चंद सिख सेना का सेनापति नियुक्त हुआ। सब से पहले पठानकोट का क़िला विजय किया गया, और सरदार जय-मल सिंह से चालीस हज़ार रुपए युद्ध के दंड-रूप में वसूल किए गए। इस के बाद जसरोठ क़िले की तरफ़ कूच किया। यहां का सरदार महा-राजा के आगमन का समाचार सुन कर घबरा गया। अपनी सरहद पर पहुँच कर महाराजा का स्वागत किया और प्रचुर धन भेंट कर के अधीनता

स्वीकार की। कुछ दिन विश्राम करने के अनंतर रंजीतसिंह ने चंबा पर चढ़ाई की। चंबा का राजा भयभीत हुआ। अपने मंत्रियों को उस ने महाराजा के पास भेजा और आठ हज़ार वार्षिक कर देने की स्वीकृति दी और अधीनता स्वीकार की। फिर रियासत बसोहली की बारी आई। यहां के राजा ने भी आठ हज़ार रुपए वार्षिक कर-रूप में देना स्वीकार किया और इस प्रकार अपनी जान छुटाई।

दरबार करना

पहाड़ी प्रदेश से लौट कर महाराजा ने एक विशाल दरबार किया जिस में पंजाब के मैदानी और पहाड़ी प्रदेशों के सरदार, राजे और नवाब सम्मिलित हुए। प्रत्येक को उस के पद के अनुसार ख़िलअतें प्रदान हुईं। इसी अवसर पर सरदार जीवन सिंह हाकिम स्यालकोट और साहब सिंह गुजरात वाले के नाम भी दरबार में हाज़िर होने के लिए आज्ञापत्र निकले। परंतु इन दोनों ने अपने आप को महाराजा का अधीन न विचार कर दरबार में आना पंसद न किया।

स्यालकोट का दमन

इन सरदारों की अनुपस्थिति महाराजा को बहुत बुरी जान पड़ी और दरबार से छुट्टी पाते ही सरदार फ़तेह सिंह अहलूवालिया के साथ स्यालकोट पर चढ़ाई कर दी। शहर के निकट पहुँच कर महाराजा ने अपना वकील जीवन सिंह के पास भेजा और दरबार में न उपस्थित होने कारण पुछवाया। जीवन सिंह अपने दुर्ग को अजेय समझता था अतएव उस ने कोई ठीक उत्तर न दिया। वरन् लड़ाई की तैयारियां करने लगा और रक्षा के लिए बाहर की दीवारों पर तोपें चढ़वा दीं। महाराजा ने भी युद्ध की आज्ञा दे

दी। सरदार जीवन सिंह बड़ी बहादुरी से लड़ा। और कई रोज़ तक अपने क़िले को बचाए रहा। इसी बीच में रंजीतसिंह ने आस-पास के दो-तीन दुर्ग विजय कर लिए। इन में से एक बुर्ज अटारी नाम का था, जो कि स्यालकोट के क़िले से डेढ़ मील की दूरी पर था। महाराजा ने ज़ंबूरचे अर्थात् हल्की शुतरी तोपें इस बुर्ज पर स्थापित कर दीं और यहां से स्यालकोट के क़िले पर गोलाबारी आरंभ हुई। इस के अतिरिक्त रंजीतसिंह की सेना ने क़िले से कुछ दूरी पर सुरंग लगानी शुरू कर दी और चुने हुए बहादुर ज़मीन के भीतर की राह से होकर कमन्द लगा कर क़िले की दीवार पर चढ़ गए। दूसरी ओर बहुत सी तोपें लगा कर क़िले के द्वार पर गोलाबारी आरंभ हुई। थोड़े ही समय में दरवाज़ों को खंड-खंड कर के फ़ौज क़िले में प्रविष्ट हो गई। महाराजा की आज्ञा से विजयी सिपाहियों ने दुर्ग को ख़ूब लूटा। सरदार जीवन सिंह के गुज़ारे के लिए जागीर नियत कर दी गई और स्यालकोट महाराजा के अधिकार में आ गया।

महाराजा का दौरा

स्यालकोट से महाराजा ने जम्मू पहाड़ की तरफ़ प्रस्थान किया और बारह मील की दूरी पर कलवाल के पास ख़ेमा डाला। अखनोर का हाकिम आलम सिंह[1] महाराजा की सेना देख कर घबराया। तेरह हज़ार रुपए सालाना कर देना स्वीकार कर के अधीनता स्वीकार की।

इस के बाद रंजीतसिंह गुजरात की तरफ़ आया। गुजरात का हाकिम स्यालकोट की लड़ाई का हाल सुन कर पहले ही भयभीत हो रहा था। इस ने उसी दम महाराजा के पास अपने कर्मचारियों को भेजा और बड़ी

[1] सैयद मुहम्मद लतीफ़ इस का नाम आलम ख़ां लिखते हैं।

दीनता से अपनी ग़लती के लिए क्षमा माँगी। महाराजा ने भी बाबा साहब सिंह बेदी की सिफ़ारिश पर उसे क्षमा प्रदान की। उसे गुजरात के इलाक़े में रहने दिया और आगे के लिए कर पाने के लिए प्रतिज्ञापत्र लिखवा कर वापस लौट आया।

इसी साल महाराजा ने सरदार जमील सिंह कन्हैया के इलाक़े का दौरा किया। इसी सरदार की बेटी के साथ कुँवर खड़क सिंह की मँगनी हो चुकी थी। उपरोक्त सरदार ने पचीस हज़ार रुपए भेंट में प्रस्तुत किए, और इस के इलाक़े का अधिकांश महाराजा ने अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया।

शेख़ूपूरा क़िले का दमन—सन् १८०८ ई०

मुंशी सोहन लाल लिखते हैं कि पंजाब में तीन क़िले—पठानकोट, स्यालकोट और शेख़ूपूरा अपनी दृढ़ता के लिए प्रसिद्ध थे। और साधारण जनता द्वारा अजेय समझे जाते थे। इन में से पहले दो तो महाराजा विजय कर के अपने राज्य में मिला चुका था। तीसरा शेष था और इस की ओर उस ने अब ध्यान दिया। क़िला शेख़ूपूरा लाहौर से बीस-पचीस मील की दूरी पर स्थित था। यहां का हाकिम सरदार अमीर सिंह इस बात पर राज़ी था कि यदि क़िले में उसी की थानेदारी बनी रहे तो वह महाराजा की आज्ञा पालन करने के लिए तैयार है। परंतु रंजीतसिंह को यह शर्त स्वीकार न थी। अतएव युवराज खड़क सिंह के नेतृत्व में एक बड़ी फ़ौज उस ने शेख़ूपूरा की तरफ़ भेजी। शाही तोपख़ाने ने क़िले की दीवारों पर गोलाबारी आरंभ की जिस का कुछ परिणाम न हुआ। महाराजा के कई योद्धा सैनिक काम आए। अंत में बाहुबल के स्थान पर छल काम आया। मुंशी

सोहन लाल लिखते हैं कि महाराजा इसी चिंता में था और निराश होने वाला था कि एक रात क़िले के भीतर से एक अपरिचित मनुष्य ने महाराजा के पास आकर बताया कि दरवाज़े के बुर्ज के अत्यंत निकट ही एक बड़ा तहख़ाना है और यह क़िले में सब से कमज़ोर जगह है। जहां तोप का गोला असर कर सकता है। अतएव तोपें लगा कर उस स्थल पर एक भारी विच्छेद किया गया; फिर महाराजा की सेना भीतर घुस गई और क़िले पर अधिकार पा गई। सरदार अमीर सिंह क़ैद किया गया। महाराजा ने क़िले में अपना थानेदार नियुक्त कर लिया और शेख़ूपूरा का इलाक़ा कुँवर खड़क सिंह को जागीर-स्वरूप प्रदान किया।

दीवान भवानी दास—सन् १८०८ ई०

इसी वर्ष भवानी दास पेशावरी ने महाराजा के दरबार में उपस्थित हो कर नौकरी की इच्छा प्रकट की। दीवान भवानी दास एक योग्य कुल का आदमी था। उस के बाप और दादा काबुल सरकार में दीवानी के पद पर रह चुके थे। दीवान भवानी दास भी काबुल-नरेश शाह शुजा के यहां माल-विभाग में एक उच्च पद पर नियुक्त रह चुका था। अमीर काबुल की तरफ़ से सूबा मुल्तान और डेराजात की मालगुज़ारी वसूल करने के लिए उसी वर्ष हिंदुस्तान आया था, और किसी कारण शाह शुजा से अप्रसन्न था। अतएव इस अवसर को उचित जान कर महाराजा की सेवा में उपस्थित हुआ। रंजीतसिंह ऐसे योग्य व्यक्ति की सेवा का हृदय से इच्छुक था। उसे अपना माल-विभाग सुधारने की बड़ी आवश्यकता थी। इस समय तक महाराजा के पास कोई नियत ख़ज़ाना न था और न आय-व्यय का ठीक हिसाब रक्खा जाता था। रंजीतसिंह का कुल रुपया अमृतसर के

साहूकार रामानंद के यहां जमा रहता था। अतएव महाराजा ने दीवान भवानी दास को तुरंत दीवानी के पद पर नियुक्त कर दिया। भवानी दास ने इस पद पर नियुक्त हो कर माल के दफ़्तरों का समुचित क्रम चलाया। यत्र-तत्र सरकारी ख़ज़ाने खोले गए। रजिस्टर जारी किए जिन में कौड़ी-कौड़ी का हिसाब लिखा जाता था। योग्य मुंशी नियुक्त किए गए जो हिसाब किताब की जाँच-पड़ताल करते थे।[1]

ख़ुशहाल सिंह और नए अमीर

इन्हीं दिनों ख़ुशहाल नामक एक व्यक्ति महाराजा की सेवा में आया। यह ज़ात का गौड़ ब्राह्मण और ज़िला मेरठ के परगना सरधना का रहने वाला था। यह सुंदर आकृति का, शिष्ट और ऊँचे क़द का नौजवान था और आर्थिक संकट में था। महाराजा ने उसे धौंकल सिंह कमीदान की पलटन में सिपाही के पद पर भरती कर लिया। इस का हृष्ट-पुष्ट होना और अच्छे ढंग से रहना इस के काम आया और, महाराजा ने इसे ख़ासा बरदार नियुक्त कर दिया। संभवतः महाराजा को प्रसन्न करने के उद्देश्य से उस ने सिख धर्म स्वीकार कर लिया। और अपना नाम ख़ुशहाल सिंह रक्खा। अब महाराजा उसे विशेष कृपा-दृष्टि से देखने लगा। कुछ समय के अनंतर उसे जमादार बना दिया। उस के थोड़े दिनों बाद ही ड्योढ़ी बरदार नियुक्त हुआ। सिख दरबार में यह पद प्रतिष्ठित समझा जाता था क्योंकि जो व्यक्ति महाराजा से मिलने आता अवश्य ड्योढ़ी बरदार की सहायता प्राप्त करता। इस प्रकार तमाम बड़े-बड़े सरदारों और रईसों के साथ मैत्री-संबंध

[1] महाराजा के बड़े-बड़े नामी सरदारों और पदाधिकारियों के विस्तृत समाचार के लिए देखिए 'पंजाब चीफ़्स', भाग १ और २, लेखक सर लेपल ग्रिफ़िन।

होने के अतिरिक्त उसे हज़ारों रुपए इनाम और भेंट रूप में मिलते थे।

कुछ समय के बाद उस ने अपने भतीजे तेज राम को भी अपनी सहायता के लिए बुला भेजा और उस को भी सिख बना कर महाराजा को अधिक प्रसन्न कर लिया। उस का नाम तेजा सिंह[1] रक्खा गया। तेजा सिंह को फ़ौज में पद दिया गया। ख़ुशहाल सिंह ड्योढ़ी बरदारी के अतिरिक्त कभी-कभी युद्ध-क्षेत्र में भेजा जाता था। परंतु यह एक योग्य सैनिक के कर्तव्य पालन न कर सकता था। अवश्य दूसरों की देखा-देखी युद्ध के कार्यों में शौक़ से भाग लेता था। सन् १८१७ ई० में उस का छोटा भाई राम लाल भी लाहौर आ पहुँचा। परंतु उस ने सिख बनने से इन्कार कर दिया। इस कारण ख़ुशहाल सिंह भी महाराजा की दृष्टि से गिर गया। ज्यों ही उसे यह मालूम हुआ कि उस ने अपने भाई को समझा-बुझा कर सिख धर्म की दीक्षा दिला दी। राम सिंह नाम रक्खा और महाराजा को फिर से प्रसन्न कर लिया। ख़ुशहाल सिंह उन लोगों में पहला व्यक्ति था जिन्हों ने केवल महाराजा को प्रसन्न करने की इच्छा से सिख धर्म स्वीकार किया। यह उन नए अमीरों का एक उदाहरण है जो रंजीतसिंह ख़ान्दानी सरदारों और मिस्लदारों अतिरिक्त उत्पन्न कर रहा था।



[1] यह वही तेजा सिंह है जो सन् १८४५-४६ ई० में सिख सेनाओं का कमांडर-इन-चीफ़ बन कर सतलज पार अंग्रेज़ों से लड़ने आया था, और जिस पर यह दोष लगाया जाता है कि उस ने धोका देकर ख़ालसा फ़ौज को तबाह करा दिया।

आठवां अध्याय

महाराजा और अंग्रेज़ी सरकार के बीच सरहद

सन् १८०८-९ ई० पर पुनर्विचार

पिछले कुछ वर्षों की घटनाओं को अध्ययन करने से यह स्पष्ट हुआ होगा कि लाहौर पर अधिकार करने के दस वर्ष के भीतर-भीतर रंजीतसिंह अपने विजयों को कितना विस्तार दे चुका था। कई प्रसिद्ध स्थलों का अधिकार एक ही साथ महाराजा के हाथों में आ गया था। उदाहरण के लिए लाहौर, अमृतसर और क़सूर, होशियारपूर, पठानकोट, मंडो, सकेत, बसोहली और जसरोठ, गूजरानवाला, रामनगर और वज़ीराबाद, स्याल-कोट, जेहलम, रोहतास, पिंड दादनख़ां और नमकख़ार खेवड़ा, भेड़ा और मियानी, धनी, पिट्ठहार और रावलपिंडी, पंजाब के छोटे या बड़े सब सिख सरदार वश में आ चुके थे। क़सूर की बलशाली पठानी रियासत नष्ट हो चुकी थी। मुलतान और काँगड़ा के हाकिम महाराजा का बाहुबल अनुभव कर चुके थे। सारांश यह कि पंजाब का प्रत्येक व्यक्ति अपनी रक्षा और उन्नति के लिए रंजीतसिंह की तरफ़ देखता था, और उस की कृपादृष्टि का इच्छुक था।

रंजीतसिंह की बुद्धिमानी

यद्यपि महाराजा वास्तव में स्वयं गवर्नमेंट अर्थात् सरकार था, प्रत्येक कार्य उसी की आज्ञा से चलता था, लिखने और बोलने में भी सरकार

के नाम से निर्दिष्ट किया जाता था, परंतु रंजीतसिंह ने अन्य बादशाहों की तरह अपने लिए कभी बादशाही उपाधियां ग्रहण न कीं। और न दूसरी रियासतों के साथ पत्र-व्यवहार में अपने आप को बादशाह की उपाधि से निर्दिष्ट किया। वह पद की दृष्टि से 'सरकार ख़ालसा जी' पुकारा जाता था और शाही मुहर में 'अकाल सहाय रंजीतसिंह' यह शब्द अंकित थे। यही शब्द बड़े से बड़े सरदार और साधारण से साधारण सिख सिपाही की मुहर में भी अकसर अंकित रहते थे। इस विनीत भाव से रंजीतसिंह का यह उद्देश्य था कि उस का व्यक्तित्व ख़ालसा पंथ से बाहर की वस्तु मालूम न हो। बल्कि वह ख़ालसा मशीन का मुख्य अंग मात्र समझा जाय। यह बुद्धिमत्ता थी जो रंजीतसिंह की उद्देश्य-पूर्ति को सिख धर्म की सफलता के साथ संयुक्त करती थी।

समाना का उत्सव

इस से पूर्व वर्णन हो चुका है कि गत दो वर्षों में महाराजा ने दो बार सतलज पार की सिख रियासतों की दौरा किया था और सरदारों से भेंटें ग्रहण की थीं। उन पर महाराजा का आतंक ख़ूब जम गया था अतएव जब सन् १८०८ ई० में तारा सिंह घेबा की मृत्यु पर डलीवाली मिस्ल के इलाक़े महाराजा के अधिकार में आए तो सतलज पार के सब रईस भयभीत हो गए। सब ने मिल कर रियासत पटियाला के समाना नामक गाँव में जलसा किया जिस में निर्णय करना था कि अपनी रियासतें स्थायी रखने के लिए क्या कार्य किया जाय। अंग्रेज़ी अमलदारी जमुना नदी तक पहुँच चुकी थी, और उस के आगे बढ़ने की पूरी संभावना थी। दूसरी ओर से महाराजा अपने राज्य को बढ़ाता चला आ रहा था। अतएव सतलज पार के सिख

सरदारों ने ख़याल किया कि हम दो बलशाली हकूमतों के बीच घिर गए हैं और हमारे लिए अपना अस्तित्व रखने के लिए एक या दूसरी शक्ति की शरण में जाना आवश्यक होगा। यद्यपि कुछ सरदार ब्रिटिश सरकार के संपर्क में आ कर उस की नेकनीयती देख चुके थे लेकिन उन में से कुछ को संदेह भी था। मगर वह सब के सब महाराजा के बलात्कार का अनुभव कर चुके थे, अतएव कुछ तर्क-वितर्क के बाद यह निर्णय किया गया कि उन्हें अंग्रेज़ी राज्य की शरण लेनी चाहिए। और इस विचार पर सब एक-मत हुए।[1]

सतलज पार रियासतों के अंग्रेज़ों से संबंध

यहां यह वर्णन कर देना आवश्यक होगा कि सतलज पार के कुछ सरदारों के अंग्रेज़ों के साथ व्यवहार कई साल पहले आरंभ हो चुके थे।[2] सन् १८०३ ई० में जब अंग्रेज़ों ने दिल्ली पर अधिकार किया तो भाई लाल सिंह कैथलवाला, राजा भाग सिंह जींद-नरेश, और सरदार भिनगासिंह थानेश्वरी ने उन की सहायता की थी। बाद में भी समय-समय पर ऐसा होता रहा था।[3] इस कारण उन के आपस के संबंध और भी दृढ़ हो गए थे। सन् १८०५ ई० में जब जसवंत राय होलकर महाराजा के पास आया तब भी राजा भाग सिंह ने महाराजा को मरहठों की सहायता करने से रोका था। लार्ड लेक भी इन सरदारों की प्रतिष्ठा करता था। इस कारण

[1] मुंशी सोहन लाल, 'उम्दतुत्तवारीख़', पृष्ट ७९, भाग २। अतएव उसी दिन से आज तक सतलज पार की सिख रियासतों के अंग्रेज़ी सरकार के साथ मैत्री के व्यवहार चले आ रहे है।

[2] देखिए फ़ौरेस्टर साहब का 'यात्रा-वृत्तांत,' भाग १ व मालकम साहब का 'सिखों का इतिहास।'

[3] देखिए कनिंघम का 'सिखों का इतिहास।'

से कि लार्ड वेलसली के बाद गवर्नमेंट की नीति बदल चुकी थी और वह देशी रियासतों के आपस के संबंध में हस्तक्षेप करना उचित नहीं समझता था, महाराजा के सतलज पार के दौरे के समय अंग्रेज़ों ने इन सरदारों की कोई मदद नहीं की बल्कि अपने क़िले करनाल को और दृढ़ कर लिया।

सिख सरदारों का भय

ठीक उसी समय सतलज पार के सिख सरदारों का दूत ब्रिटिश रेज़िडेंट के पास पहुँचा और उस से प्रार्थना की कि हमें अंग्रेज़ी रक्षा में ले लिया जाय। लेकिन रेज़िडेंट ने उन्हें कोई उत्साह-वर्धक उत्तर न दिया। केवल यह वचन दिया कि उन की प्रार्थना गवर्नर जनरल के पास भेज दी जायगी और जैसा निर्णय होगा उन को सूचित कर दिया जायगा। यह सरदार दिल्ली से उदास होकर वापस आ रहे थे कि इस मामले का समाचार रंजीत-सिंह को मिल गया। महाराजा ने तुरंत अपना एजेंट उन लोगों के पास भेजा, और उन्हें अमृतसर दरबार में उपस्थित होने का निमंत्रण दिया। अतएव जब यह सब एकत्र हो गए तो महाराजा बड़ी आवभगत से उन से मिला और उन के दिल से भय दूर करने में कोई कसर उठा न रक्खी। २४ नवंबर सन् १८०८ ई० को अखनौर में महाराजा ने राजा पटियाला से फिर भेंट की, और इसी विषय पर बात-चीत हुई। दोनों में मित्रता की प्रतिज्ञाएं हुईं और बाबा साहब सिंह बेदी ने आपस का प्रेम बढ़ाने के लिए उन की पगड़ियां भी बदला दीं।

ब्रिटिश सरकार की नीति में परिवर्तन

इन्हीं दिनों ब्रिटिश सरकार के पास यूरोप से समाचार आया कि नेपोलियन बोनापार्ट, टर्की और ईरान के बादशाहों की सहायता से हिंद पर

आक्रमण करना चाहता है। उस समय फ्रांस के सम्राट् नैपोलियन बोनापार्ट की सैनिक शक्ति चरम सीमा को पहुँची हुई थी। वह यूरोप का बहुत-सा भाग विजय कर चुका था और रूस के साथ नया संधिपत्र लिख कर लड़ाई झगड़ों से निवृत्त हो चुका था। उस के आक्रमण की भयावह ख़बर ने गवर्नर-जनरल लार्ड मिंटो को पेशबंदियां करने के लिए विवश किया, और उसे अपनी तटस्थता की नीति बदलने की आवश्यकता जान पड़ी। अतएव सतलज और जमुना नदी के बीच के इलाक़ों की रियासतों को विश्वास दिलाया गया कि अगर वह अंग्रेज़ों के अनुकूल रहेंगे तो अंग्रेज़ी सरकार स्वाभाविकतया उन की सहायता करेगी। साथ ही एक दूत-दल मिस्टर मेटकाफ़ के साथ महाराजा के दरबार में लाहौर भी भेजा गया। इसी प्रकार दूत सिंध के अमीरों, काबुल के अमीर शाह शुजा और ईरान के बादशाह के यहां भेजे गए। इन दूतों का उद्देश्य इन प्रांतों के शासकों में अंग्रेज़ों के प्रति मैत्रीभाव उत्पन्न करना था, जिस में नैपोलियन के आक्रमण के समय यह उन की सहायता करें।

मिस्टर मेटकाफ़ का दूतत्व

महाराजा उस समय अपनी सेना एकत्र किए हुए क़सूर के निकट डेरा डाले पड़ा था। संभवतः सतलज पार के इलाक़े का दौरा करने का निश्चय कर रहा था कि मेटकाफ़ ११ सितंबर सन् १८०८ ई० को क़सूर के निकट मौज़ा खेमकरन में महाराजा की सेवा में उपस्थित हुआ। महाराजा ने सरदार फ़तेह सिंह अहलूवालिया और दीवान मुहकम चंद को दो हज़ार के क़रीब सुंदर जवानों के साथ मेटकाफ़ के स्वागत के लिए भेजा। जब वह महाराजा के ख़ेमे के निकट पहुँचा तो महाराजा स्वयं अपने ख़ेमे के बाहर

स्वागत के लिए आया। एक हाथी, कुछ घोड़े, सोने की ज़ीन और मूल्यवान् वस्त्र उस को भेंट किए। महाराजा का बुद्धिमान मंत्री, फ़क़ीर अज़ीज़ुद्दीन मेटकाफ़ के आतिथ्य के लिए नियुक्त हुआ। दूसरे रोज़ महाराजा अंग्रेज़ी सफ़ीर के कैंप में गया और मेटकाफ़ ने मूल्यवान् भेंट गवर्नर-जनरल की तरफ़ से महाराजा की सेवा में प्रस्तुत की। इस के बाद मेटकाफ़ ने गवर्नर-जनरल के विचार प्रकट किए, और संधि का मसविदा महाराजा के सामने रक्खा।

संधि की शर्तें

संधि की शर्तें लगभग इस आशय की थीं—(१) अगर फ्रांस का बादशाह कभी इस देश पर आक्रमण करे तो अंग्रेज़ी सरकार और रंजीतसिंह सम्मिलित शक्ति से उस का सामना करें। (२) अगर कभी वैरी का सामना करने के लिए अंग्रेज़ी फ़ौजें अटक से पार या अफ़ग़ानिस्तान के इलाक़े में ले जाने की आवश्यकता उपस्थित हो तो महाराजा अपने राज्य में से उन्हें रास्ता दे। (३) अगर काबुल के साथ अंग्रेज़ी सरकार को पत्र-व्यवहार करने की आवश्यकता का अनुभव हो महाराजा पत्रवाहकों की रक्षा करे।

महाराजा ने तत्क्षण इन शर्तों को स्वीकार न किया, और इन के मुक़ाबले में अपनी निम्न-लिखित शर्तें प्रस्तुत कीं—(१) लाहौर दरबार और काबुल के शासक के बीच लड़ाई या झगड़ा होने की अवस्था में ब्रिटिश सरकार हस्तक्षेप न करे। (२) अंग्रेज़ी सरकार और लाहौर दरबार में सदा मैत्री रहे। (३) महाराजा रंजीतसिंह के शाही अधिकार सब सिख रियासतों पर समझे जावें, जिस से महाराजा का आशय सतलज पार की

सिख रियासतों से था। अंग्रेज़ी दूत ने उत्तर दिया कि मुझे इन शर्तों को स्वीकार करने का अधिकार नहीं। हां, मैं दोनों मसविदे गवर्नर-जनरल के पास भेज देता हूं।

महाराजा का सतलज पार के इलाक़े का दौरा

महाराजा के लिए यह विश्वास करना कठिन था कि अंग्रेज़ यह संधि केवल फ्रांस के आक्रमण को रोकने के लिए कर रहे हैं। वरन् उसे यह विश्वास था कि यह सब कार्यवाही सतलज पार की रियासतों के संबंध में है। खालसा की सम्मिलित शक्ति स्थापित करने के लिए महाराजा के हृदय में प्रबल इच्छा उत्पन्न हो चुकी थी, और यह ख़याल कि सिख रियासतें अंग्रेज़ों की शरण में चली जावें उसे बहुत कष्ट देता था। अतएव गवर्नर-जनरल और उस के दूत के पत्र-व्यवहार के अवकाश से उस ने लाभ उठाना चाहा और तुरंत एक बृहत् सेना को सतलज पार जाने की आज्ञा दी, और खाई नामक स्थल पर डेरा डाला। उस समय राजा भाग सिंह, राजा जसवंत सिंह, नाभा-नरेश, भाई लाल सिंह कथियलवाला और सरदार गुरु दत्त सिंह लाडवावाला और अन्य बहुत से सरदार महाराजा के साथ थे। यहां पर महाराजा ने फ़ीरोज़पुर के हाकिम से भेंट वसूल किया और सरदार करम सिंह नाहल को फ़रीदकोट के विजय के लिए भेजा। करम सिंह की सफलता का समाचार आने पर स्वयं आधी रात बीतने पर खाई से प्रस्थान किया, और अक्तूबर सन् १८०८ ई० में फ़रीदकोट में अपना थाना स्थापित किया। फिर नवाब मालेरकोटला से भेंट वसूल किया। इस के बाद महाराजा अंबाला पहुँचा। क़िले को विजय करके वहां भी अपना थाना स्थापित किया। अपने एक अफ़सर सरदार गंडा सिंह साफ़ी को दो हज़ार सवार के

साथ इस क़िले का थानेदार नियुक्त किया। यहां से दौरा करता हुआ महाराजा शाहाबाद पहुँचा। यह स्थल मारकंडे नदी के किनारे एक केंद्रीय स्थिति रखता है। इस के एक ओर सहारनपूर, दूसरी ओर जगाधरी, तीसरी तरफ़ थानेसर और चौथी तरफ़ जमुना नदी है। यहां से भेंट वसूल कर के महाराजा दिसंबर सन् १८०८ ई० में अमृतसर वापस आया।

अंग्रेज़ी सरकार के ढंग

अंग्रेज़ी सरकार ने महाराजा के इस कार्य को अत्यंत अनुचित समझा। मेटकाफ़ इस के विरुद्ध समय-समय पर आवाज़ भी उठाता रहा। परंतु अभी तक गवर्नर-जनरल ने इस बात का निश्चित निर्णय नहीं किया था कि उसे क्या व्यवहार ग्रहण करना चाहिए। क्योंकि यूरोप की दशा अभी तक संदिग्ध थी। परंतु जब महाराजा शाहाबाद तक पहुँचा तो गवर्नर-जनरल घबराया और उस ने निर्णय किया कि महाराजा को रोकने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं। क्योंकि ऐसी स्थिति में सतलज पार के सरदारों साथ मैत्री के संबंध स्थापित करना कठिन हो जायगा। अतएव जनवरी सन् १८०९ में कर्नल अक्तरलोनी के नेतृत्व में अंग्रेज़ी सेना जमुना के पार उतरी और बोड़िया, पटियाला होती हुई लुधियाने के निकट आ पहुँची। अंग्रेज़ी सेना के आगमन पर सतलज पार के सरदारों की आशाएं उमँड आईं। उन्हों ने अपने कर्तव्य पर पुनर्विचार किया, और यही निश्चय किया कि अंग्रेज़ों के साथ मिलना ही उन के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए आवश्यक है। अतएव अक्तरलोनी ने इस निश्चय की सूचना गवर्नर-जनरल को दी, और उस की मंज़ूरी से एक विज्ञप्ति ९ फ़रवरी सन् १८०९ ई० की तिथि में प्रचलित की और उस की एक प्रतिलिपि महाराजा रंजीत-

सिंह को भेज दी। इस विज्ञप्ति का सारांश यह था कि सतलज पार के रईसों को अंग्रेज़ी सरकार ने अपनी शरण में ले लिया है। इस लिए जो फ़ौज महाराजा ने सतलज के इस पार स्थापित की है वह तुरंत वापस बुला ली जावे। यदि ऐसा न किया जायगा तो अंग्रेज़ी सरकार युद्ध के लिए विवश हो जायगी।

अक्तरलोनी की विज्ञप्ति

चूँकि अंग्रेज़ी फ़ौज़ महाराजा रंजीतसिंह की सरहद के निकट डेरा डाले पड़ी है इस लिए यह उचित समझा गया है कि इस विज्ञप्ति द्वारा महाराजा की सेवा में ब्रिटिश सरकार के सदाशय का निदर्शन किया जाय, जिस से महाराजा के सरदारों को अंग्रेज़ी सरकार के भावों की जानकारी हो जाय, जिस का उद्देश्य महाराजा के साथ मैत्री-भाव बनाए रखना और उस के देश को हानि से बचाना है। दोनों राज्यों के बीच आपस का प्रेम विशेष शर्तों के कारण ही बना रह सकता है। इस लिए वह नीचे अंकित की जाती हैं:

१. खरड़ ख़ांनपूर और सतलज नदी के इस ओर के अन्य क़िले जो महाराजा के अधिकारियों के अधिकार में हैं गिरा दिए जावें और यह सब स्थान अपने पुराने मालिकों को लौटा दिए जावें।

२. महाराजा की जितनी पैदल और सवार सेना सतलज नदी के उस तरफ़ हो महाराजा के देश में वापस बुला ली जाय।

३. महाराजा की जो सेना फुलौर के घाट पर स्थित है कूच कर के नदी पार चली जाय और आगे महाराजा की सेना नदी के इस तरफ़ उन सरदारों के इलाक़े में न आए जो अंग्रेज़ी सरकार के थानों की शरण में आ चुके हैं। सरकार ने नदी के उस तरफ़ सिपाहियों की एक थोड़ी संख्या

थानों में नियुक्त की है। अगर उतनी ही सेना फुल्लौर के घाट पर थाने पर रक्खी जाय तो हमें कोई आपत्ति न होगी।

४. यदि महाराजा उपरोक्त शर्तों की पूर्ति करे जैसा कि वह कई बार मिस्टर मेटकाफ़ की उपस्थिति में स्वीकार कर चुका है, तो यह पूर्ति आपस की मैत्री को सुदृढ़ करेगी। यदि इन शर्तों की पूर्ति न हुई तो यह स्पष्ट प्रकट होगा कि महाराजा न केवल अंग्रेज़ों की मैत्री की कुछ परवा नहीं करता वरन् शत्रुता पर कटिबद्ध है। इस दशा में विजयी अंग्रेज़ी सेना अपनी रक्षा के लिए प्रत्येक ढंग जो वह उपयुक्त समझेगी काम में लावेगी।

५. इस विज्ञप्ति का आशय केवल इतना है कि गवर्नमेंट के भाव महाराजा पर प्रकट हो जावें और महाराजा के विचार हमें मालूम हो जावें। सरकार को पूरी आशा है की महाराजा इस विज्ञप्ति की शर्तों पर विचार करेगा और उन्हें अपने पक्ष में बहुत उपयोगी पावेगा। इस से अंग्रेज़ों की मैत्री का पूर्ण परिचय मिलेगा कि वह युद्ध का पूर्ण बल रखते हुए भी शांति के इच्छुक हैं।

रंजीतसिंह का युद्ध की तैयारी करना

जब महाराजा को यह विज्ञप्ति प्राप्त हुई तो उसे बड़ा जोश आया और उस ने उसे स्वीकार करने में आपत्ति की। रंजीतसिंह के लिए अब दो रास्ते खुले थे। या तो अंग्रेज़ी सरकार से सदा के लिए संबंध विच्छेद कर ले या उन के साथ संधि कर के सतलज को अपनी सरहद निश्चित करे, और अपने राज्य को विस्तार देने के लिए कश्मीर, पेशावर, अफ़ग़ानिस्तान, मुल्तान इत्यादि के इलाक़े विजय करे। महाराजा को पहला प्रस्ताव पसंद आया। तुरंत उस ने अपने सरदारों के नाम आज्ञापत्र प्रचारित किए कि संपूर्ण

ख़ालसा फ़ौज सहित लाहौर पहुँच जाओ और अन्न के ढेर, गोला-बारूद व अन्य युद्ध के सामान बाहुल्य से एकत्रित करना आरंभ किया। क़िलों पर तोपें स्थापित कर दी गईं। दीवान मुहकम चंद को आज्ञा हुई कि कांगड़ा से संपूर्ण सेना और तोपख़ाना लेकर तुरंत पहलौर पहुँचो और दूसरी आज्ञा मिलते ही अंग्रेज़ों से युद्ध आरंभ कर दो। इसी प्रकार समस्त जागीरदारों और मालगुज़ारों को हुक्मनामे भेजे गए, और कठिन आज्ञा दी गई कि बहुत जल्द अपनी-अपनी सेना और तोपों के साथ लाहौर पहुँच जाओ। लाहौर का दुर्ग अधिक सुदृढ़ किया गया। क़िले की दीवारों पर तोपें चढ़ा दी गईं। मुंशी सोहन लाल लिखता है कि कुछ दिनों में लगभग एक लाख योद्धा सैनिक लाहौर में एकत्र हो गए और उन्हें सतलज और व्यास के पास भिन्न-भिन्न स्थलों पर नियुक्त होने की आज्ञा दे दी गई।

अंग्रेज़ी सरकार की काररवाई

अंग्रेज़ी सरकार को जब इन तैयारियों को समाचार मिला तो उस ने सर डेविड अक्तरलोनी की सेना में बहुत वृद्धि कर दी। राजा नाभा से लुधियाने का क़िला ले कर अपनी छावनी स्थापित कर दी। अंग्रेज़ी सरकार अपनी तैयारियों में लगी हुई थी कि यूरोप से नैपोलियन बोना-पार्ट की कई कठिनाइयों का समाचार मिला जिस से यह स्पष्ट जान पड़ता था कि अब नैपोलियन कई वर्ष तक हिंदुस्तान पर आक्रमण नहीं कर सकता। अब अंग्रेज़ी सरकार ने बेधड़क पहले की अपेक्षा अधिक ज़ोरदार नीति ग्रहण कर लिया और यह स्पष्टतया प्रकट कर दिया कि जो कुछ भी हो अंग्रेज़ी सरकार महाराजा के राज्य की पूर्वीय सीमा सतलज नदी से आगे न बढ़ने देगी। और सतलज के इस पार की सिख रियासतों में

महाराजा का हस्तक्षेप कभी पसंद न करेंगी।

रंजीतसिंह की बुद्धिमत्ता

अंग्रेज़ी सरकार की यह चाल महाराजा को कदापि पसंद न थी, क्योंकि वह स्पष्ट रूप से देखता था कि इन शर्तों के स्वीकार करने से उस के जीवन का उद्देश्य ही असफल हो जायगा और वह ख़ालसा की संयुक्त शक्ति न स्थापित कर सकेगा। अपने बल की वास्तविकता भी उस पर स्पष्ट थी। उस की सल्तनत अभी प्रारंभिक मार्ग भी तै न कर पाई थी, और सरकार अंग्रेज़ी जैसी बलशाली हुकूमत का सामना करने की ताब न रखती थी। उसे यह ध्यान भी अवश्य आया होगा कि यदि वह इस अवसर पर अंग्रेज़ों के साथ युद्ध में लग गया तो संभव है कि पंजाब के वह सरदार और अमीर जिन को दमन किए हुए अभी थोड़ा ही समय हुआ है उस का साथ न दें, और अभी पूर्ण रूप से विजित नहीं हुए सतलज पार के सिखों की तरह अंग्रेज़ों की शरण में जाना चाहें। ऐसी स्थिति में सिख साम्राज्य स्थापित करने का रहा-सहा अवसर भी जाता रहेगा।

महाराजा का संधि के लिए सहमत होना

यह बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता महाराजा के ऐसे कठिन समय में काम आई। रंजीतसिंह ने अपने मंत्रियों से फिर सलाह की। संपूर्ण स्थिति पर नए ढंग से विचार करने से महाराजा इस परिणाम पर पहुँचा कि इस समय अंग्रेज़ों के साथ संधि करना ही नीति-संगत होगा—यद्यपि कुछ सरदारों ने इस सम्मति का विरोध भी किया। इसी बीच महाराजा और मेटकाफ़ के मसविदों से काट-छाँट कर के तैयार किया हुआ नया मसविदा कलकत्ते से आया और दोनों शक्तियों की सम्मिलित राय से स्वीकृत हो गया। यह

संधि-पत्र २५ अप्रैल सन् १८०६ ई० को लिखा गया और इतिहास में मेटकाफ़ के समझौता के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

संधिपत्र

यह समझौता इस बात की चर्चा करता है कि अंग्रेज़ी सरकार और लाहौर-नरेश महाराजा रंजीतसिंह के बीच में जो विरोध उत्पन्न हो गया था अब वह दोनों की स्वीकृति और खुशी से दूर हो गया है। दोनों पक्षों की यह इच्छा है कि उन के आपस के मैत्री-संबंध बने रहें। इस लिए यह संधिपत्र लिखा जाता है, जिस का पालन दोनों राज्यों के उत्तराधिकारियों के लिए आवश्यक होगा। यह संधिपत्र महाराजा रंजीतसिंह (पक्ष १) तथा अंग्रेज़ी सरकार (पक्ष २) के एजेंट मिस्टर सी० टी० मेटकाफ़ की उपस्थिति में लिखा गया।

शर्तें

(१) अंग्रेज़ी सरकार और लाहौर रियासत में सदा के लिए मैत्री रहेगी। दूसरा पक्ष (अर्थात् अंग्रेज़ी सरकार) पहले पक्ष (अर्थात् लाहौर दरबार) को बहुत प्रतिष्ठित शक्तियों में गिनेगा और ब्रिटिश सरकार को राजा रंजीतसिंह के इलाक़े और प्रजा के साथ जो सतलज नदी के उत्तर की ओर स्थित है कोई सरोकार न होगा।

(२) राजा अपने अधिकार में आए इलाक़े[1] या उस के निकट के इलाक़ों में जो सतलज नदी के बाएं तरफ़ हैं, उस से अधिक सेना न रक्खेगा जो

[1] इस इलाक़े से तात्पर्य उन क़स्बों और क़िलों से है जो अंग्रेज़ी दूतों के लाहौर पहुँचने से पूर्व महाराजा ने अपने अधिकार में कर लिया था, और जो स्थल अंग्रेज़ी दूत के पहुँचने के बाद विजय हुए थे वह सब असली मालिकों को वापस कर दिए गए थे।

आंतरिक व्यवस्था के लिए आवश्यक है, और न पड़ोस के रईसों और उन के इलाक़ों से कोई सरोकार रक्खेगा।

(३) उपरोक्त शर्तों में से किसी एक को तोड़ने या आपस के मैत्री-भाव के पूरा न उतरने की दशा में यह संधिपत्र रद्द समझा जायगा।

मेटकाफ़ ने इस संधिपत्र पर हस्ताक्षर अंकित कर के इस की नक़ल अंग्रेज़ी और फ़ारसी में रंजीतसिंह को दे दी, और दूसरी नक़ल पर महाराजा ने अपनी सही और मुहर लगा कर मेटकाफ़ को दे दी। मेटकाफ़ ने स्वीकार किया कि वह दो मास के भीतर गवर्नर-जनरल से उस की मंजूरी मँगवा देगा और तब यह संधिपत्र पक्का और पूर्ण समझा जायगा और दोनों पक्षों पर इस की पाबंदी आवश्यक होगी। अतएव यह संधिपत्र ३० मई सन् १८०९ ई० को गवर्नर-जनरल लार्ड मिंटो ने अपनी कौंसिल सहित स्वीकार किया और उस पर अपनी मुहर और हस्ताक्षर अंकित कर के महाराजा के पास भेज दिया।

संधिपत्र के परिणाम

इस खींचातानी के समाप्त होने पर रंजीतसिंह के जीवन का एक महत्वपूर्ण और आवश्यक प्रश्न तै हुआ। इस में संदेह नहीं कि अब महाराजा के लिए ख़ालसा की सम्मिलित शक्ति को एकत्र करने का कोई अवसर न रहा और उसे लगभग आधे सिख प्रदेशों से अलग रहना पड़ा। क्योंकि छः मिस्लें सतलज के पार स्थित थीं, और शेष छः इस तरफ़। परंतु उस के लिए अब सतलज से सिंध नदी तक बल्कि उस से आगे तक मैदान साफ़ हो गया और अंग्रेज़ों की बढ़ती हुई ताक़त का खटका दूर हो गया। दूसरी तरफ़ अंग्रेज़ी सरकार का प्रभाव, जान व माल को

बिना ज़रा भी बलिदान किए हुए लेखनी के द्वारा ही एकदम जमुना नदी से हट कर सतलज नदी के किनारे तक पहुँच गया, परंतु यह सच है कि इस संधि द्वारा दोनों पक्षों ने पूरा लाभ उठाया। क्योंकि इस के बिना जल्दी ही संभवतः दोनों राज्यों में मुठभेड़ की नौबत पहुँच जाती। यह संधिपत्र रंजीतसिंह की समझदारी और योग्यता का उच्च नमूना है।

मेटकाफ़ के शिया सिपाहियों और अकालियों में झगड़ा

अभी इस संधिपत्र पर दोनों पक्ष के हस्ताक्षर नहीं हुए थे कि संयोग से मुहर्रम और होली के त्योहार इकट्ठे आगए। मिस्टर मेटकाफ़ के साथ कुछ शिया सिपाही भी आए थे। उन्हों ने अपने रिवाज के अनुसार ताज़िया निकाला और जिस समय मुहर्रम का जलूस ताज़िया समेत दरबार साहब अमृतसर के पास से निकला उस समय मुसल्मानों और अकालियों में झगड़ा हो गया। प्रसिद्ध अकाली नेता सरदार फूला सिंह ने बड़े जोश से आक्रमण किया। दोनों पक्ष के कुछ आदमी काम आए परंतु मेटकाफ़ के क़वायद सीखे सिपाहियों ने फ़ौरन अंग्रेज़ी ढंग पर पंक्ति बाँध ली जिस कारण अकालियों का आक्रमण सफल न हुआ। इसी बीच में महाराजा को भी समाचार पहुँच गया। वह गोविंदगढ़ क़िले से तुरंत पहुँच गया और झगड़ा दूर कराने में सफल हुआ। अंग्रेज़ी सेना के छोटे से दल की क़वायद की श्रेष्ठता उस के दिल में घर कर गई और इस के प्रभाव ने महाराजा को अंग्रेज़ी सरकार से संधि करने पर बाधित किया। हम यह नहीं कह सकते कि इस घटना ने कहां तक महाराजा को संधिपत्र पर हस्ताक्षर करने पर विवश किया परंतु इस का इतना असर अवश्य हुआ कि महाराजा पश्चिमी ढंग की सैनिक शिक्षा अर्थात् क़वायद पर विश्वास लाने लगा, जिसे उस

ने अपनी सेना में भी पूरे प्रयत्न से बाद में प्रचलित किया।

सतलज पार के रईसों के लिए विज्ञप्ति

सतलज पार की रियासतें फ़रवरी सन् १८०६ ई० में अंग्रेज़ी सरकार की शरण में आ चुकी थीं। परंतु यह आवश्यक था कि उन के संबंध को पूरी तरह प्रकट कर दिया जाय। अतएव ३ मई १६०६ ई० को निम्न-लिखित विज्ञप्ति प्रचारित की गई, और एक दरबार कर के यह पढ़ कर सुनाया गया :—

"यह बात प्रकाश की भाँति स्पष्ट है कि ब्रिटिश सरकार ने अंग्रेज़ी सेना कुछ सरदारों की प्रबल इच्छा के अनुसार सतलज नदी की ओर भेजी थी, जिस का आशय यह था कि उन की मैत्री को ध्यान में रखते हुए उन के इलाक़ों पर उन की स्वतंत्रता बनाई रक्खी जाय। अतएव एक अहदनामा २५ अप्रैल सन् १८०६ ई० को अंग्रेज़ी सरकार और महाराजा रंजीतसिंह के बीच तै हुआ है। अतएव बड़ी प्रसन्नता से अंग्रेज़ी सरकार मालवा और सरहद के इलाक़ों के सरदारों और रईसों के आश्वासन के लिए यह लेख प्रस्तुत करती है जिस की शर्तें निम्नलिखित हैं—

१—मालवा और सीमा पर स्थित इलाक़ों के सरदार अंग्रेज़ी सरकार की रक्षा में आ चुके हैं। अतएव उन के आगे महाराजा रंजीतसिंह की अग्रसर नीति से रक्षा की जायगी।

२—उन रईसों से जो कि अंग्रेज़ी सरकार की रक्षा में आ चुके हैं कोई कर नक़द या अन्य रूप में न लिया जायगा।

३—उन सरदारों के जो अधिकार और हक़ सरकार अंग्रेज़ी की रक्षा में आने से पहले थे वही बने रहेंगे।

४—यदि कभी शांति बनाए रखने के उद्देश्य से अंग्रेज़ी सेना को इन रईसों के इलाक़ों से हो कर जाना पड़े तो प्रत्येक रईस के लिए यह आवश्यक होगा कि जब उस के इलाक़े से फ़ौज जाय तब वह सेना की प्रत्येक उचित प्रकार से सहायता करे—अर्थात् अन्न, रहने का स्थान तथा अन्य आवश्यकताओं को पूरा करे।

५—जब कोई शत्रु इस देश पर आक्रमण करे तो मैत्री के उद्देश्य के अनुसार प्रत्येक सरदार के लिए यह आवश्यक होगा कि वह अपनी-अपनी सेना सहित अंग्रेज़ी सेना से आ मिले और अपने पूरे प्रयत्न के साथ वैरी को परास्त करने में सहायता दे। ऐसे अवसरों पर इन रईसों की फ़ौज अंग्रेज़ी क़वायद सीखी फ़ौज के अधीन रह कर काम करेगी।

६—किसी विलायती सामान पर जो यूरोप देश से अंग्रेज़ी फ़ौजों के व्यवहार के लिए इन के इलाक़ों से हो कर आवे उस पर कोई कर न लिया जाय।

७—चाहे जितने घोड़े अंग्रेज़ी सेना के रिसाले के लिए इस इलाक़े से ख़रीदे जावें या किसी और देश से ख़रीदे हुए यहां से गुजरें, उन पर कोई महसूल इत्यादि न लिया जायगा। घोड़े लाने या ख़रीदने वालों के पास दिल्ली के रेज़िडेंट या सीमा के अफ़सर के दस्तख़ती परवाने होंगे।

विज्ञप्ति का परिणाम

इस विज्ञप्ति का परिणाम यह हुआ कि सतलज पार के इलाक़े के रईसों का सदा के लिए महाराजा रंजीतसिंह से संबंध टूट गया। लुधियाना में अंग्रेज़ी छावनी स्थापित हो गई। सर डेविड अक्तरलोनी जो उन दिनों बड़ा योग्य सिविल तथा सेना अफ़सर माना जाता था ब्रिटिश सेना का

कमांडर नियुक्त हुआ और लुधियाना में रहने लगा। उस के साथ रहने के लिए बख़्शी नंद सिंह भंडारी महाराजा रंजीतसिंह का दूत नियुक्त हुआ और हुआ और अंग्रेज़ी सरकार की तरफ़ से ख़ुशबख़्त राय लाहौर दरबार में अख़बार-नवीस नियुक्त हुआ।



नवां अध्याय

विजयों की भरमार : सन् १८०६–११ ई०

काँगड़ा क़िले की विजय—अगस्त सन् १८०९ ई०

इस से पूर्व यह कहा जा चुका है कि सन् १८०८ ई० में महाराजा ने दीवान मुहकम चंद के नाम यह आवश्यकीय आज्ञा भेजी थी कि काँगड़े के युद्ध का विचार छोड़ कर फुलौर पहुँच जाओ। अंग्रेज़ी सरकार के साथ संधि हो जाने के बाद महाराजा ने फिर अपना ध्यान काँगड़ा की ओर फेरा। गोरखा जनरल अमर सिंह थापा कुछ समय से लड़ाकू फ़ौज[1] के साथ काँगड़ा की घाटी में राजा संसार चंद के साथ युद्ध में संलग्न था और काँगड़ा क़िले का घेरा डाले पड़ा था। संसार चंद को तो जान के लाले पड़े हुए थे। उस ने भाई फ़तेह सिंह को महाराजा के पास मदद के लिए भेजा। महाराजा ने सहायता के बजाय काँगड़े का क़िला माँगा। जिसे संसार चंद ने स्वीकार कर लिया। महाराजा ने पूरी तैयारी के साथ कूच किया और मई मास के अंत में काँगड़ा पहुँचा। महाराजा के साथ इस समय भारी सेना थी। अभी जागीरदार सरदार अपनी-अपनी सिपाहियों की टुकड़ी के साथ उपस्थित थे। मुंशी सोहन लाल के अनुमान के अनुसार लगभग एक हज़ार सवार व पैदल फ़ौज महाराजा के साथ थी। पहाड़ी राजों के नाम जो इस देश के रास्तों से समुचित रूप से परिचित

---

१ दीवान अमर नाथ गोरखा फ़ौज की संख्या पचास हज़ार के लगभग लिखते हैं।

थे आज्ञा निकली कि गोरखा सेना के रसद प्राप्त करने की राह रोक दो।

यह प्रबंध करने के अनंतर महाराजा ने संसार चंद को क़िला ख़ाली करने और उस पर ख़ालसा फ़ौज का अधिकार प्राप्त करने को कहा। परंतु उस ने टाल-मटोल किया और कहा कि इतनी जल्दी क्या पड़ी है? जब गोरख फ़ौज काँगड़ा से चली जायगी वह तुरंत क़िला महाराजा को सौंप देगा। परंतु रंजीतसिंह इस चाल में कब आने वाला था? अतएव संसार चंद के बेटे अनिरुद्ध चंद को, जो महाराजा की पेशी में था, नज़रबंद कर लिया गया। अब संसार चंद क़िला ख़ाली करने पर विवश हो गया, और २४ अगस्त १८०६ ई० को महाराजा ने काँगड़ा क़िले पर अधिकार किया।

गोरखा फ़ौज से युद्ध

गोरखा फ़ौज के रसद के सामान के रास्ते कुछ समय से बंद हो चुके थे। अब महाराजा ने अवसर पा कर उन पर धावा बोल दिया और उन के सामने के मोर्चों पर जो क़िले से मील भर की दूरी पर थे अधिकार कर लिया। घमासान युद्ध आरंभ हो गया। गोरखों ने जान तोड़ कर सामना किया। ख़ालसा सेना के चार-पाँच अफ़सर और कुछ सिपाही काम आए परंतु गोरखों को पीछे हटना पड़ा। फिर उन्हों ने गनेश घाटी के निकट जम कर युद्ध करना आरंभ किया। महाराजा ने ताज़ादम फ़ौज वहां भेजी। गोरखों ने पहली हार के धब्बों को मिटाने और जातीय आन को बनाए रखने के उद्देश्य से उत्साह-पूर्वक तैयारियां कीं। बड़ा भयानक युद्ध हुआ। गोलियों के बाद तलवार की नौबत आई, दोनों पक्ष वाले अपनी बहादुरी में आगे बढ़ते जाते थे, परंतु गोरखा सिपाही लंबे क़द के सिखों की लंबी तलवारों के रक्तपात के सामने ठहर न सके। उन की

खुखड़ियां ख़ालसों की चमकीली तलवारों के सामने रात के अँधेरे की तरह मंद पड़ गईं। गोरखे यकायक पीछे हटे और निकल भागे। मैदान सिखों के हाथ रहा।

युद्ध का अंत

यद्यपि इस युद्ध में सिखों की भयानक हानि हुई लेकिन समस्त पहाड़ी प्रदेश महाराजा के अधीन हो गया।[1] २४ सितंबर सन् १८०९ ई० को महाराजा काँगड़ा के क़िले में प्रविष्ट हुआ, और उस ने एक विशाल दरबार किया, जिस में काँगड़ा, चंबा, नूरपूर, कोटला, शाहपूर, जसरोठ, बसोहली, मानकोट, जसवां, सबगोलेर, मंडी, सकेत, कुलू और दातारपूर इत्यादि के राजे सम्मिलित थे। समस्त पहाड़ी राजों ने महाराजा को भेंटें प्रस्तुत कीं और महाराजा की ओर से सब को मूल्यवान् ख़िलअतें मिलीं। काँगड़े की क़िलेदारी और समस्त पहाड़ी रियासतों के प्रबंध के लिए महाराजा ने सरदार दिलीसा सिंह मजीठिया को नियुक्त किया और उस के मातहत पहाड़ सिंह नायब नाज़िम नियुक्त हुआ। आवश्यकतानुसार कुछ सेना काँगड़ा में रक्खी गई। दीवान मुहकमचंद को आज्ञा हुई कि सतलज के किनारे फुलौर क़िले को सुदृढ़ करे और कुछ काल तक वहीं रहे। यह प्रबंध कर के महाराजा वापस आया। काँगड़ा-विजय की प्रसन्नता में लाहौर और अमृतसर में दीपावली की गई। ग़रीबों और दुखियों को दान दिया गया। रात्रि के समय महा-

[1] गोरखा सेना यद्यपि परास्त हो चुकी थी परंतु अभी तक काँगड़ा की घाटी में उपस्थित थी। महाराजा भी युद्ध का अंत होना ही उचित समझता था अतएव पत्र-व्यवहार के अनंतर महाराजा और अमर सिंह में यह निश्चय हुआ कि यदि महाराजा उसे बोझ लाद कर ले जाने का सामान इकट्ठा करने में सहायता दे तो वह घाटी से चुपचाप चला जायगा।

राजा स्वयं हाथी पर सवार होकर बाज़ार की रौनक़ देखने गया।

हरियाना और गुजरात पर अधिकार

सितंबर मास के अंत में महाराजा काँगड़ा से लौटता हुआ जालंधर दोआबे से होकर आया। उन्हीं दिनों सरदार बघेल सिंह अहलूवालिया, हरियाना-नरेश मर चुका था। अतएव महाराजा ने उस के इलाक़े पर अधिकार कर लिया, और उस की विधवा के लिए उचित जागीर का प्रबंध कर दिया।

काँगड़ा-विजय के बाद रंजीतसिंह ने पंजाब के भिन्न-भिन्न स्थानों पर पर अपना संपूर्ण अधिकार जमाने की ओर ध्यान दिया। सब से पहले उस ने गुजरात की तरफ़ ध्यान दिया। गुजरात का हाकिम सरदार साहब सिंह भंगी यद्यपि महाराजा की अधीनता स्वीकार कर चुका था, परंतु अभी तक अपने इलाक़े में पूरा अधिकार रखता था। उस का देश विस्तृत था, जिस में जलालपूर, मुनावर और इस्लामगढ़ इत्यादि बहुत से सुदृढ़ क़िले थे। इस के अतिरिक्त उस के पास युद्ध का सामान भी पर्याप्त मात्रा में उपस्थित था और रुपए की भी कमी न थी। भाग्यवश उन्हीं दिनों साहब सिंह और उस के बेटे गुलाब सिंह में अनबन हो गई और बेटा बाप की इच्छा के बिना जलालपूर इत्यादि एक-दो क़िलों पर अधिकार कर बैठा। रंजीतसिंह ने इस घटना से पूरा लाभ उठाया। और दो-तीन मास के समय में ही गुजरात के समस्त इलाक़े पर अधिकार जमा लिया। साहब सिंह देवा बटाला के पहाड़ी इलाक़े की तरफ़ भाग गया।[1] फ़क़ीर अज़ीज़ुद्दीन

---

[1] एक वर्ष के बाद रंजीतसिंह ने साहब सिंह को वापस बुला लिया और गुज़ारे के लिए उचित जागीर प्रदान की।

का भाई फ़क़ीर नूरुद्दीन इस ज़िले का पहला नाज़िम हुआ।

छोटे-छोटे क़िलों की अधिकता

यहां यह बता देना आवश्यक जान पड़ता है कि उस समय पंजाब में थोड़ी-थोड़ी दूर पर छोटे-छोटे क़िले बने हुए थे। अठारहवीं सदी के आरंभ में मुग़ल शासन कमज़ोर पड़ चुका था, और नादिर शाह और अहमद शाह अब्दाली इत्यादि के आए दिन के आक्रमणों से देश में अव्यवस्था फैली हुई थी। अतएव लोगों ने अपनी जान व माल बचाने के लिए यह सब प्रबंध कर रक्खा था। कुछ वीर लोग अवसर पाते ही एकाध क़िला बना लेते थे और आस-पास के इलाक़े में अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेते थे। परंतु ऐसी दशा में देश में शांति बनाए रखना कठिन था। अतएव ऐसे छोटी-छोटी शक्तियों को दूर कर देने में ही महाराजा ने देश का लाभ समझा। गुजरात के बाद उस ने वर्तमान ज़िला शाहपूर का दौरा किया और मियानी और भीरा क़स्बों में ठहरने के अनंतर वह ख़ुशाब गया।

ख़ुशाब, शाहीवाल आदि की विजय—फ़रवरी १८१० ई०

ख़ुशाब और शाहीवाल के इलाक़े में योद्धा बलूच क़बीले आबाद थे और उन्हों ने कई जगह सुदृढ़ क़िले बना रक्खे थे। जब महाराजा की सेना ख़ुशाब के निकट पहुँची तब वहां का हाकिम जाफ़र ख़ां बलूच सामने का सामर्थ न रख कर शहर छोड़ कर भाग गया और अपने सुदृढ़ दुर्ग कछ में जाकर रक्षा प्राप्त की। महाराजा ने ख़ुशाब पर अधिकार कर के वहां अपना थाना स्थापित कर लिया, फिर क़िले का घेरा आरंभ किया। सिख सिपाही बड़े उत्साह से आगे बढ़ते परंतु थोड़ी से देर में पस्त हो जाते। इस प्रकार कितने सिख काम आए।

अंत में महाराजा ने जाफ़र ख़ां को संदेश भेजा कि वह क़िला ख़ाली कर दे, तो उसे उचित जागीर प्रदान की जायगी। परंतु बहादुर बलूच सरदार ने उत्तर में कहला भेजा कि यदि आप ख़ुशाब हमें वापस कर दें तो अच्छा है, नहीं तो हम अपने माल और देश के लिए जान देने के लिए तैयार हैं। अतएव रंजीतसिंह ने अपना घेरा जारी रक्खा, और दो-तीन तरफ़ क़िले के नीचे सुरंग खुदवा कर उसे बारूद से भरवाया जिस में क़िला उड़ा दिया जाय। परंतु महाराजा व्यर्थ के रक्तपात का इच्छुक न था, और जहां तक उस का वश चलता था दोनों पक्षों के जान व माल की हानि के बिना ही अपना उद्देश्य सफल करने का प्रयत्न करता। अतएव एक बार फिर जाफ़र ख़ां को संदेश भेजा कि "क़िला ख़ाली कर दो। तुम्हें मूल्यवान् जागीर दी जायगी नहीं तो कुछ ही मिनटों में क़िला ज़मीन में मिलने वाला है। विश्वास न हो तो विश्वस्त आदमी भेज कर सुरंगें दिखवा लो।"

अब जाफ़र ख़ां भी विवश हो चुका था, उस के लिए रसद का सामान एकत्र करना असंभव हो रहा था। अतएव क़िला ख़ाली ही करना उस ने उचित समझा। महाराजा उस के साथ बड़ी इज़्ज़त से मिला। उसे बाल-बच्चों सहित ख़ुशाब में रहने की आज्ञा दे दी और गुज़ारे के लिए समुचित जागीर प्रदान की।

फ़तेह ख़ां की हार

इस के बाद महाराजा ने साहीवाल की ओर ध्यान दिया। यहां का हाकिम फ़तेह ख़ां बड़ा अमीर था। उस के इलाक़े में लगभग २५० गाँव आबाद थे और दस बारह क़िले थे। उस के मुख्य स्थान साहीवाल का क़िला बहुत सुदृढ़ था। जिस की दीवारों पर तोपें और रहकले स्थापित थे।

यद्यपि एक भयानक युद्ध के बाद १० फ़रवरी सन् १८१० ई० को महाराजा ने क़िले पर विजय प्राप्त कर लिया, परंतु फ़तेह ख़ां ने नगर में प्रवेश कर के कुछ देर तक फिर सामना किया, जिस का परिणाम यह हुआ कि नगर को भारी हानि हुई। कई मकान तोपों की गोलाबारी से ज़मीन में मिल गए। अंत में फ़तेह ख़ां और उस का बेटा मुक़ाबला करते हुए पकड़ लिए गए। उन्हें काँगड़ा के क़िले में बंदी कर दिया गया, और फ़तेह ख़ां[1] का सारा इलाक़ा महाराजा के अधिकार में आ गया।

जम्मू और वज़ीराबाद का दमन—सन् १८१० ई०

ख़ुशाब के लिए प्रस्थान करने से पूर्व महाराजा ने फ़ौज का एक दल सरदार हुकमा सिंह चिमनी के नेतृत्व में जम्मू की तरफ़ भेजा था। जम्मू के शासन की व्यवस्था इस समय बिगड़ रही थी। राजा और रानी में अनबन थी। रियासत का प्रधान सचिव मियां मोटा बहुत बल पकड़ चुका था। महाराजा की सेना के आक्रमण करते ही थोड़े से युद्ध के अनंतर मोटा ने रियासत महाराजा के सुपुर्द कर दी।

सरदार जोध सिंह वज़ीराबादिया नवंबर सन् १८०९ ई० में मर गया था। महाराजा ने उस के बेटे गंडा सिंह को इलाक़े की सरदारी पर नियुक्त कर दिया और मृत्यु के तेरह दिन के बाद क्रिया के दिन अपने हाथ से सरदारी की पगड़ी और दोशाला गंडा सिंह को प्रदान किया और उस से विरासत के हक़ में उचित धन माँगा।[2] जून सन् १८१० ई० में गंडा सिंह

[1] जनवरी सन् १८११ ई० में महाराजा ने इसे मुक्त करके उचित जागीर दी।

[2] मुंशी सोहन लाल के लेख से मालूम होता है कि दो लाख रुपए मांगे गए। अंत में चालीस हज़ार पर निर्णय हुआ। दीवान अमर नाथ एक लाख लिखते हैं।

और उस के संबंधियों में आपस में झगड़ा आरंभ हुआ। महाराजा ने ख़लीफ़ा नूरुद्दीन हाकिम गुजरात को आज्ञा भेजी कि जाकर वज़ीराबाद पर अधिकार कर लो। अतएव साधारण विरोध के अनंतर वज़ीराबाद महाराजा के अधिकार में आ गया और गंडा सिंह को उचित जागीर दी गई।

काबुल के राज्य की दशा

सन् १७६६ ई० में लाहौर से वापस जाने पर अमीर शाह ज़मां का पतनकाल आरंभ हुआ। पंजाब हाथ से जाता रहा और थोड़े ही समय में काबुल के तख़्त से भी वह अलग किया गया। उस के भाई शाह महमूद ने स्वयं तख़्त पर अधिकार कर लिया। और शाह ज़मां को क़ैद कर के उस की आखें निकलवा दीं। परंतु अधिक काल के लिए तख़्त पर बैठना शाह महमूद के भी भाग्य में न था। उस के दूसरे भाई शाह शुजाउलमुल्क ने सेना जमा कर के शाह महमूद को तख़्त पर से उतार दिया और स्वयं बादशाह बन बैठा। सितंबर सन् १८०८ ई० में लार्ड मिंटो ने मिस्टर एलफ़िन्स्टन के नेतृत्व में अंग्रेज़ी दूत को काबुल भेजा, जिस ने शाह शुजा-उलमुल्क के साथ मैत्री का अहदनामा किया मगर अभी यह दूत कलकत्ता वापस नहीं पहुँचा था कि उसे समाचार मिला, कि शाहशुजा को तख़्त से उतार दिया गया है। उस क्रांति के युग में फ़तेह ख़ां यूसुफ़ज़ई काबुल का वज़ीर था। बारकज़ई क़बीला बड़ा प्रभावशाली था, जिस के बहुत से व्यक्ति अफ़ग़ानिस्तान के राज्य के प्रतिष्ठित पदों पर थे। उन में बड़ा मेल और संगठन था। अतएव वज़ीर फ़तेह ख़ां ने शाह महमूद को क़ैदख़ाने से निकलवाया और शाह शुजा को तख़्त से उतार कर शाह महमूद को काबुल का बादशाह बनाया।

शाह शुजा की महाराजा से भेंट

शाह शुजाउल्मुल्क इस हालत में अपने प्राणों की रक्षा के लिए पंजाब की तरफ़ भागा। सन् १८१० ई० की फ़रवरी के आरंभ में महाराजा ख़ुशाब मे ठहरा हुआ था। उसे समाचार मिला कि शाह शुजा अटक नदी पार कर चुका है और महाराजा से मिलने को उत्सुक है। महाराजा उस के साथ बड़ी प्रतिष्ठा से साथ मिला। उस का बड़ा आवभगत किया। वार्तालाप में महाराजा ने मुल्तान और कश्मीर पर विजय प्राप्त करने के विचार की ओर संकेत किया। यह बात याद रखने योग्य है, कि दोनों सूबे अभी तक काबुल के अधीन समझे जाते थे, यद्यपि यह संबंध इस समय नाम-मात्र का था, क्योंकि यहां के गवर्नर काबुल की कमज़ोरी से लाभ उठा कर अपने आप को स्वतंत्र ख़याल करते थे। शाह शुजा महाराजा के पास अधिक ठहर न सका। तुरंत ख़ुशाब से प्रस्थान कर के रावलपिंडी चला गया और वहां से पेशावर पहुँचा।

मुलतान पर आक्रमण—फ़रवरी सन् १८१० ई०

महाराजा अभी ख़ुशाब ही में ठहरा हुआ था कि सरदार फ़तेह सिंह अहलूवालिया और अन्य सर्दारों के नाम आज्ञाएं निकलीं कि अपनी-अपनी सेनाएं ले कर महाराजा से आ मिलें। उन के पहुँचने पर २० फ़रवरी सन् १८१० ई० को महाराजा ने मुल्तान की ओर कूच किया और चार ही दिन में लंबी यात्रा करके निर्दिष्ट स्थान पर जा पहुँचा। इस बार नवाब भी युद्ध के लिए पूर्णरीति से तैयार था। सरदार निहाल सिंह अटारीवाले और अतर सिंह धारी के नेतृत्व में एक बहादुर दल ने नगर पर आक्रमण किया। युद्ध का बाज़ार गर्म हुआ। दोपहर के बाद तलवारों

के दाँव चलने लगे। ऐसा घमासान युद्ध सिख नौजवानों को बहुत समय बाद नसीब हुआ था। महाराजा घोड़े पर सवार युद्धक्षेत्र में एक जगह से दूसरी जगह उड़ता हुआ अपने बहादुरों का दिल बढ़ाता फिरता था। संध्या तक रक्तपात जारी रहा। ख़ून की नदियां बह निकलीं। मरे हुए लोगों के ढेर लग गए। नवाब की सेना ने पहले की अपेक्षा कई गुना जोश और पराक्रम दिखाया, परंतु अंत में उन के पैर उखड़ गए और रात की अँधेरी में पठान मैदान ख़ाली करके क़िले में जा घुसे। अतएव २५ फ़रवरी को सिखों ने नगर पर अधिकार कर लिया।

अब क़िले का घेरा डाल दिया गया। दोनों पक्षों की ओर से गोला-बारी आरंभ हुई। यद्यपि क़िले में ताज़ादम सेना बड़े उत्साह के साथ रक्षा-कार्य में सन्नद्ध थी, परंतु महाराजा भी इस बार मुल्तान पर अधिकार करने पर तुला हुआ था। अतएव उस ने अपनी रसद के प्रबंध को और भी पक्का किया। कुछ दिनों के बाद ही सरदार निहाल सिंह ने क़िले के पश्चिम ओर सुरंगें खुदवानी आरंभ कीं। उन में बारूद भर कर आग लगा दी गई। संयोगवश निहाल सिंह उस समय सुरंगों से बहुत दूर पर नहीं था। जब दीवार का एक हिस्सा बारूद के धमाके से ज़मीन पर जा पड़ा तो कुछ पत्थर सरदार के आ लगे जिस से वह बुरी तरह घायल हो गया। महा-राजा का प्रिय अफ़सर सरदार अतर सिंह धारी भी उस के निकट ही खड़ा था। उसे ऐसी गहरी चोट आ आई कि वह फ़ौरन मर गया। यह देख कर ख़ालसा फ़ौजियों को बहुत जोश आया। उन्हों ने गिरी हुई दीवार से आक्रमण किया और आन की आन में क़िले के भीतर आ घुसे और हाथों-हाथ तलवार चलानी आरंभ की। अब तो नवाब हतोत्साह हो गया। संधि

का सफ़ेद झंडा ऊँचा किया, और भारी रक़म युद्ध के ख़र्चे के लिए भेंट-स्वरूप देने को तैयार हुआ[१]। महाराजा ने अपने सचिवों से सलाह की और इस पर राज़ी हुआ कि मुल्तान का नवाब आगे के लिए अपने को काबुल का सूबेदार न कहे, और जरूरत पड़ने पर सिख शासन की सहायता करे। अतएव भेंट ले कर महाराजा लाहौर वापस आया।[२]

डस्का के इलाक़े पर विजय

मुल्तान से वापस आते समय सरदार निधान सिंह हट्टू जो डस्का के इलाक़े का स्वामी था बिना महाराजा की आज्ञा प्राप्त किए हुए अपने इलाक़े में चला गया। निधान सिंह अनुभवी और वीर सैनिक था और गर्व भी उस में था। उस का क़िला बहुत मज़बूत था। महाराजा ने फ़ौज का एक भाग भेज कर डस्का के क़िले का घेरा कर लिया। सरदार निधान सिंह ने एक मास तक बड़ी बहादुरी से सामना किया। अंत में महाराजा की अधीनता स्वीकार कर ली, और अपनी भूल का प्रतीकार किया। महाराजा ने उसे कुछ देर तक नज़रबंद रख कर मुक्त कर दिया और अपनी घोड़चढ़ा फ़ौज में एक उच्च पद पर नियुक्त किया और अच्छी जागीर भी प्रदान की। महाराजा में यह ख़ास बात थी कि जहां तक संभव होता वह विजित वीर सरदारों

---

[१] दीवान अमर नाथ यह रक़म एक लाख अस्सी हज़ार बताते हैं।

[२] अभी तक शुजाउल्मुल्क हिंदुस्तान ही में था और पेशावर के संपूर्ण इलाक़े पर अधिकार कर चुका था। संभवतः इसी कारण रंजीतसिंह ने मुज़फ़्फ़र ख़ां से यह शर्त तै कराई थी कि वह आगे के लिए काबुल सरकार से कोई संबंध न रक्खे। नवाब मुज़फ़्फ़र ख़ां ने इस आक्रमण के बीच गवर्नर-जनरल से भी पत्र-व्यवहार आरंभ किया था। संभवतः यह भी एक कारण रहा हो जिस से महाराजा ने भेंट ले कर ही संतोष किया हो, और क़िले पर अधिकार करने का निश्चय तत्क्षण छोड़ दिया हो।

को उच्च पद पर नियुक्त कर के उन का पद बनाए रखता था, जिस कारण वह महाराजा के प्रति पूर्ण वफ़ादारी बनाए रखते थे और महाराजा भी उन की वीरता से लाभ उठाता था। अतएव सरदार निधान सिंह ने इस के अनंतर कई अवसरों पर अपनी वीरता दिखाई।

मंडी, सकेत और हलूवाल

इसी वर्ष सेना का एक भाग काँगड़ा पहाड़ी के नाज़िम सरदार दिलीसा सिंह मजीठिया, के नेतृत्व में मंडी और सकेत के प्रति भेजा गया, जिस ने वहां के राजों से भेंटें वसूल कीं। महाराजा ने सरदार दिलीसा सिंह को उस की विजयों पर बहुत पुरस्कारादि दिए।

जैसा कि उपरोक्त घटनाओं के अध्ययन से प्रकट हो चुका होगा महाराजा ने उस समय छोटे-छोटे क़िलों का दमन करने की नियमित नीति बना ली थी। अतएव रावी और चिनाब के बीच का इलाक़ा हलूवाल जो सरदार बाघ सिंह के पास था घेरा गया। बाघ सिंह को गुज़ारे के लिए अच्छी जागीर दे कर उस का इलाक़ा लाहौर राज्य में सम्मिलित कर लिया गया।

कसक क़िले का दमन

कसक का दुर्ग नमकसार खेवड़ा के निकट पहाड़ी की चोटी पर स्थित है। उस समय यह क़िला चूहा सीदन शाह, कटास और नमकसार खेवड़ा की नाक ख़याल किया जाता था। महाराजा ने यहां अपना थाना स्थापित करना आवश्यक ख़याल कर के क़िलेदार को उसे ख़ाली करने के लिए कहला भेजा। साथ ही यह भी लालच दिया कि तुम्हें उचित जागीर प्रदान की जायगी और दो आने फ़ी रुपया, पुराने तरीक़े के अनुसार जो तुम्हें मिलता है, बराबर मिलता रहेगा। परंतु युद्धप्रिय क़बीले के सिपाही

दुर्ग ख़ाली करने पर तैयार न हुए। अतएव क़िले का घेरा आरंभ किया गया। परंतु ख़ालसा सेना के सब साहसपूर्ण आक्रमण असफल रहे। अंत में महाराजा ने चूहा सीदन शाह जो कि क़िले की सीमा से लगभग एक मील की दूरी पर स्थित था और जहां से क़िले में पीने का पानी जाता था, अपने अधिकार में कर लिया। अतएव कुछ समय के बाद पानी की कमी के कारण क़िला ख़ाली कर दिया गया। क़िले वालों को वादे के अनुसार जागीरें प्रदान की गईं। महाराजा ने वहां अपना थाना क़ायम कर लिया और सरदार हुकमा सिंह चिमनी को, जो इस सेना का नायक था, प्रतिष्ठा के लिए खिलअत प्रदान की।

क़िला मंगला की विजय

इस से पूर्व इस बात का वर्णन हो चुका है कि सरदार साहब सिंह गुजरात से भाग कर पहाड़ी इलाक़ा देवावटाला में शरणागत हुआ था। अतएव महाराजा ने तुरंत उस के क़िलेदारों के नाम आज्ञाएं जारी कीं कि वह उस की सहायता न करें। महाराजा को उस समय और युद्ध करने थे। इस लिए तत्काल उस इलाक़े पर विजय करने का प्रयास स्थगित रक्खा। इस के बाद कुछ अवकाश मिलने पर इस ओर अपना ध्यान दिया। क़िला मंगला पहाड़ी क़िलों में सब से अधिक दृढ़ था जो झेलम नदी के किनारे ऊँची पहाड़ी पर स्थित था।[१] ख़ालसा सेना ने जी तोड़ कोशिश के बाद

[१] आज कल भी इसी मिस्ल पर एक क़िला स्थित है। झेलम नदी यहां से तेज़ी से मुड़ती हुई पहाड़ी प्रदेश छोड़ कर मैदानी प्रदेश में प्रवेश करती हैं। संभवतः इसी जगह से महान सिकंदर ने झेलम नदी पार कर के महाराजा पोरस पर अचानक आक्रमण किया था।

क़िले पर विजय प्राप्त की। इस के बाद अन्य क़िलेदारों ने भी बिना सामना किए महाराजा की अधीनता स्वीकार कर ली। इस प्रकार झेलम पार के पहाड़ी देश पर महाराजा का पूरा अधिकार क़ायम हो गया।

फ़ज़ीलपुरिया मिस्ल के प्रदेशों पर अधिकार

फ़ज़ीलपुरिया मिस्ल के अधिकार के देश सतलज के दोनों पार स्थित थे। इस मिस्ल का सरदार बुध सिंह बड़ा बहादुर, और प्रतिष्ठत पुरुष था और अन्य सरदारों की तरह महाराजा की अधीनता स्वीकार करने के लिए तैयार न था। अतएव महाराजा ने दीवान मुहकम चंद को बुध सिंह के अधिकार के प्रदेशों को विजय करने की आज्ञा दी। जनरल मुहकम चंद ने तुरंत फुलौर से कूच किया। रामगढ़िया मिस्ल के सरदार जोध सिंह के साथ जालंधर का घेरा डाल दिया। सरदार बुध सिंह अवसर पाकर सतलज पार चला गया और लुधियाना में अंग्रेज़ों की शरण में पहुँचा। परंतु उस की राजभक्त सेना मुक़ाबले पर डटी रही और अंत में परास्त हुई। दीवान मुहकम चंद ने फ़ज़ीलपुरिया मिस्ल के क़िला जालंधर और आस-पास के इलाक़े पर अधिकार कर लिया। दूसरी तरफ़ से बुध सिंह की असली जन्म-भूमि क़िला पट्टी पर जो तरनतारन के क़रीब स्थित था महाराजा के तोप-ख़ाने के दारोग़ा ग़ोसी ख़ां ने अधिकार कर लिया। इस प्रकार यह समस्त देश जिस की सालाना आय लगभग तीन लाख थी लाहौर राज्य में सम्मिलित कर लिया गया। इस के अतिरिक्त बहुत-सा धन और अस्त्र जो इन क़िलों में मौजूद था महाराजा के हाथ आया। दीवान मुहकम चंद को मूल्य-वान् और सम्मानित ख़िलअत, जड़ाऊ दस्तेवाली तलवार, सोने की कलग़ी और एक हाथी सुनहले हौदे सहित प्रदान किया।

नकई मिस्ल के प्रदेशों पर अधिकार

ख़ालसा शासन स्थापित करने के लिए यह आवश्यक था कि अन्य मिस्लें भी विजित की जायँ। अतएव अब नकई मिस्ल की बारी आई, जिस के प्रदेश गुल्तान से लेकर क़सूर तक फैले हुए थे, और जो लगभग नौ लाख वार्षिक की मालियत थी। इस में चूनियां, दीपालपूर, शरक़पूर, सतघरा, कोट कमालिया और गोगीरा इत्यादि बड़े-बड़े क़स्बे अंतर्गत थे। महाराजा का दूसरा विवाह नकई मिस्ल के सरदार ज्ञान सिंह की बहन के साथ हुआ था और कुँवर खड़क सिंह इसी रानी के पेट से था। परंतु यह संबंध नकइयों के लिए विशेष-रूप से लाभदायक न सिद्ध हुआ। महाराजा ने उन का सारा देश शाहज़ादा खड़क सिंह को जागीर में प्रदान कर दिया। दीवान मुहकम चंद को शाहज़ादा के साथ इलाक़े पर अधिकार करने के लिए भेजा। सरदार काहन सिंह नकई जो अपने भाई ज्ञान सिंह की मृत्यु पर उस समय मिस्ल की सरदारी के पद पर आसीन था महाराजा की ओर से मुल्तान के शासक मुज़फ़्फ़र ख़ां से नज़राना वसूल करने गया हुआ था। ज्योंही उस के प्रबंधकर्ता दीवान हाकिम राय को इस बात की ख़बर लगी, वह चूनियां से भागा हुआ महाराजा के पास लाहौर आया, और प्रार्थना की कि सरदार काहन सिंह की अनुपस्थिति में ऐसा करना अनुचित है, और यह भी प्रकट किया कि अगर उस का मुल्क सरदार के पास ही रहने दिया जाय तो वह उचित धन भेंट-स्वरूप भी उपस्थित करेगा। महाराजा ने बिना आश्वासन योग्य उत्तर दिए दीवान की बात को हँसी में उड़ा दिया और कहा कि—"हमारा इस मामले से कुछ संबंध नहीं। युवराज खड़क सिंह नकइयों का निवासा है। वह जाने और उस का काम।" अतएव दीवान

मुहकम चंद ने जाते ही चूनियां, दीपालपूर, सतघरा, इत्यादि क़िलों पर अधिकार कर लिया और कुछ दिनों बाद जेठपूर और हतेलियां इत्यादि के सुदृढ़ किलों में भी महाराजा के थाने स्थापित हो गए। सरदार काहन सिंह यह समाचार सुनते ही मुल्तान से लौटा। बहुत तिलमिलाया, परंतु अपना क्रोध दबा कर चुप हो रहा। उस में महाराजा का सामना करने की सामर्थ्य कहां थी? महाराजा ने भड़वाल में उसे बीस हज़ार की जागीर दी। इस मिस्ल का भी अंत हुआ।

कन्हैया मिस्ल पर अधिकार

सरदार जय सिंह की मृत्यु के अनंतर कन्हैया मिस्ल के अधिकार के प्रदेश दो भागों में विभक्त हो चुके थे। इस मिस्ल का अधिकांश रंजीत-सिंह की सास रानी सदा कुँवर, गुरुबख़्श सिंह की विधवा के अधिकार में था। बाक़ी थोड़ा सा इलाक़ा जो मुकरियान के आस-पास पहाड़ की तल-हटी में फैला हुआ था और जिस में हाजीपूर और सोहियां इत्यादि के दुर्ग थे सरदार जय सिंह के दूसरे दो लड़कों, भाग सिंह और निधान सिंह के हिस्से में आया था, और वहां वह अपनी माता सरदारनी राजकुँवर के साथ जीवन-निर्वाह करते थे। निधान सिंह युवावस्था में कुचाल में पड़ गया और अपनी रियासत के प्रबंध के अयोग्य सिद्ध हुआ। अतएव महाराजा ने किसी बात पर नाराज़ हो कर उसे क़ैद कर लिया और दिसंबर, सन् १८११ ई० में ब्यास नदी के पार थोड़ी-सी सेना भेज कर उस के इलाक़े पर कब्ज़ा कर लिया। बाद में उसे तथा उस की मा को जागीरें दे दी गईं।

अफ़ग़ानिस्तान का आंतरिक कलह

शाह शुजा ने महाराजा से बिदा हो कर सीधे अटक की ओर प्रस्थान

किया और वहां के क़िलेदार जहांदाद ख़ां और कश्मीर के सूबेदार अता मुहम्मद ख़ां से सहायता लेकर पेशावर पर अधिकारी हो गया। यहां उस ने बहुत सी सेना एकत्र कर ली। दूसरी बार काबुल पर ध्यान दिया। अपने भाई शाह महमूद को तख़्त से उतार कर आप गद्दी पर बैठ गया। परंतु अफ़ग़ानिस्तान का शासन क्रांतियों के कारण कमज़ोर हो गया था। शाह शुजा को गद्दी पर बैठे अभी चार मास भी नहीं हुए थे कि वज़ीर फ़तेह ख़ां के भाई मुहम्मद अज़ीम ख़ां ने दुर्रानी सेना एकत्र कर के शुजाउमुल्क को काबुल से निकाल दिया। शाह महमूद और वज़ीर फ़तेह ख़ां को काबुल के शासन पर पुनः नियुक्त कर किया। शाह शुजा मारा-मारा फिरने लगा। आरंभ में अटक के शासक जहांदाद ख़ां ने शुजाउल्मुल्क की सहायता की। बाद में उसे संदेह हो गया कि शाह शुजा छिपे रूप से वज़ीर फ़तेह ख़ां से साज़-बाज़ कर रहा है, और इस लिए कि जहांदाद ख़ां की वज़ीर फ़तेह ख़ां से व्यक्तिगत दुश्मनी थी शाह का यह ढंग उसे पसंद न आया। शाह शुजा को बंदी कर के अपने भाई अता मुहम्मद ख़ां के पास कश्मीर भेज दिया।

शाह शुजा की बेगमों और शाह ज़मां का लाहौर आना

शाह शुजाउल्मुल्क एक वर्ष से अधिक समय के फेर का शिकार रहा। उस की बेगमें और शहज़ादे अपने अंधे चचा शाह ज़मां के साथ रावलपिंडी में स्थित थे। अतएव जब रंजीत सिंह कसक की विजय से मुक्त हुआ तो उस ने शाह ज़मां से भेंट करने के उद्देश्य से उधर प्रस्थान किया। शहर से दो मील की दूरी पर शाही ख़ेमें लगाए गए। शाह ज़मां महाराजा से भेंट करने के लिए आया। महाराजा की ओर से पूरे राजसी ढंग से शाह

का स्वागत किया गया। दीवान भवानी दास और उस का भाई दीवान देवी दास जो शाह के यहां दीवानी के पद पर नियुक्त रह चुके थे और काबुल दरबार के रीति-रवाजों से भली-भाँति परिचित थे आतिथ्य के लिए नियुक्त किए गए। रंजीतसिंह ने शाह ज़मा को सब प्रकार आश्वासन दिया। उसे लाहौर में आकर रहने के लिए निमंत्रित किया, और उस के गुज़ारे के लिए १५००) मासिक नियुक्त किया। शाह की भेंट से छुट्टी पा कर महाराजा लाहौर लौटा[1] शाह ज़मां कुछ काल तक रावलपिंडी में रह कर भीरा में रहा। फिर नवंबर सन् १८११ में लाहौर आया और रौज़ए-दाता-गंज बख़्श के निकट ठहरा। महाराजा ने उस का आवभगत से स्वागत किया। दीवान भवानी दास द्वारा एक हज़ार रुपया दावत के लिए भेजा और शहर में बड़ा हवादार मकान उस के रहने के लिए दिया। बाद में शाह शुजाउल्मुल्क की बेगमें और शहज़ादे भी आ गए।

[1] जब महाराजा लाहौर पहुँचा तो अंग्रेज़ी सरकार का वकील मुंशी एवज़ अली ख़ां महाराजा के दरबार में आया और गवर्नर-जनरल की ओर से अमूल्य भेंटें साथ लाया, जिन में एक सुंदर फ़िटन थी, जिस में बैठने के लिए अत्यंत अच्छे स्प्रिंगदार गद्दे लगे थे। पंजाब में इस प्रकार की गाड़ियां देखने में न आती थीं। अतएव उसे देख कर महाराजा बहुत प्रसन्न हुआ। उस में दो घोड़े एक-दूसरे के आगे-पीछे जोते गए और महाराजा साहब उस में सवार हुए। परंतु सड़कें ऊँची-नीची होने के कारण गाड़ी बहुत देर तक व्यवहार में न लाई जा सकी। विस्तार के लिए देखिए, मुंशी सोहन लाल लिखित 'उम्दतुत्तवारीख़'।



दसवां अध्याय

कोहनूर की घटना तथा अन्य बातें

(सन् १८१२–१४ ई०)

युवराज खड़क सिंह का विवाह

जनवरी सन् १८१२ ई० के आरंभ में शाहज़ादा खड़क सिंह के विवाह की तैयारियां होने लगीं। सतलज पार की रियासतों के राजे और पंजाब के समस्त सरदारों के यहां मिठाई बाँटी गई और बारात में सम्मिलित होने का निमंत्रण दिया गया। मिस्टर मेटकाफ़ और दिल्ली के रेज़िडेंट द्वारा अंग्रेज़ी सरकार के पास भी निमंत्रण गया, अतएव अक्तरलोनी को शरीक होने की आज्ञा मिली। उस के साथ झींद-नरेश राजा भाग सिंह; नाभा-नरेश राजा जसवंत सिंह और कथैल-नरेश भाई लाल सिंह भी आए और महाराजा का उत्साह बढ़ाया। भावलपूर, मुल्तान और मनकीरा के प्रतिष्ठित प्रतिनिधि और राजा संसार चंद तथा अन्य पहाड़ी राजे भी आए।

दीवान अमर नाथ और मुंशी सोहन लाल अपनी पुस्तकों में विवाह का पूरा वर्णन लिखते हैं। उन के लेखों से मालूम होता है कि इस अवसर पर महाराजा ने बड़े उत्साह के साथ खर्च किया। फ़ौज के तमाम सिपाहियों और अफ़सरों को पद, नई पोशाकें, क़लग़ियां और सोने के कंठे इत्यादि प्रदान किए गए। और वह पूरी प्रकार से लैस हो कर बारात में सम्मिलित हुए। आतशबाज़ी के आश्चर्यजनक प्रदर्शन हुए माहाराजा को

लगभग दो लाख छत्तीस हज़ार रुपए तंबूल में प्राप्त हुए।[1]

बारात लाहौर से प्रस्थान कर के अमृतसर, फिर मजीठिया ठहरी और वहां से बहुत धूमधाम के साथ हाथियों के जलूस में सरदार जमील सिंह कन्हैया के घर क़स्बा फ़तेहपूर ज़िला गुरदासपूर पहुँची। तमाम बाराती अच्छे-अच्छे वस्त्र पहने हुए थे। कन्हैया सरदारों ने आतिथ्य में कोई कसर उठा न रक्खी, और रुपया पानी की तरह बहाया। दीवान अमर नाथ लिखते हैं कि सरदार जयमल सिंह ने पचास हज़ार रुपए महाराजा को मिलने के समय भेंट किए, और पंद्रह हज़ार रुपया नित्य आतिथ्य के लिए महाराजा की सेवा में भेजता रहा। बिदाई के समय प्रत्येक मेहमान को उस के पद के अनुकूल पगड़ी और खिलअत दी। मूल्यवान् दहेज़

[1] तंबूल के यह अंक विस्तार से महाराजा रंजीतसिंह के दफ़्तर के क़ागज़ों में लिखे हैं, जिसे लेखक ने दस वर्ष हुए संपादित किया था। तफ़सील यह है—

१—पहाड़ी राजों से	५०,०००)
२—महाराजा के अपने इलाक़े से	३५७७५)
३—सरदारों और रईसों की ओर से	१०६,३००)
४—फ़ौज के अफ़सरों और सिपाहियों से	२३,७०७॥)॥
५—रिसाला के सरदारों से	१६,०००)
६—शहर के सराफ़ों की ओर से	३,०५०)
७—विविध	१,२०५)
जोड़	२,३६,०३७॥)॥

संख्या ३ में पाँच हज़ार की रक़म जो अंग्रेज़ी सरकार की ओर से करनल अक्तर-लोनी द्वारा महाराजा को तंबूल में मिली थी सम्मिलित है। मुंशी सोहन लाल ने भी तंबूल का कुछ लेखा अपनी पुस्तक में दिया है और उन सरदारों और रईसों के नाम लिखे है जिन्हों ने तंबूल की भारी रक़म महाराजा को भेंट की थी। दफ़्तर वाली रक़म और मुंशी सोहन लाल के अंकों का जोड़ मिलता नहीं।

दिया, जिस में हाथी, घोड़े, ऊँट, सोने-चाँदी के बहुत से बर्तन और ज़री और कमख़ाब की वर्दियां थीं। ६ फ़रवरी सन् १८१२ ई० को बारात वापस आई। रास्ते में महाराजा ने अमृतसर में पड़ाव किया, और दरबार साहब में बहुत रुपया विवाह के उपलक्ष में भेंट किया।

अंग्रेज़ी एजेंट की आव-भगत

इस अवसर पर महाराजा ने अंग्रेज़ी एजेंट करनल अक्तरलोनी की ख़ूब आवभगत की। अवसर से पूरा लाभ उठा कर मेल-जोल बढ़ाने का प्रयत्न किया। उस के दिल में महाराजा की तरफ़ से जो संदेह थे वह सब दूर कर दिए। लाहौर पहुँच कर उसे कुछ दिन और अपना अतिथि रक्खा। लाहौर का क़िला दिखाया और उसे फ़ौज की परेड दिखा कर प्रसन्न किया। प्रिंसेप अपनी पुस्तक में लिखता है कि जब महाराजा अंग्रेज़ी एजेंट को अपना क़िला और सामान, अस्त्र इत्यादि दिखाता था तो दीवान मुहकम चंद और सरदार गंडा सिंह महाराजा को रोकते थे, परंतु रंजीतसिंह अपने अच्छे स्वभाव के अनुसार जब एक बार किसी को अपना मित्र बना लेता था तो उस से कोई बात छिपा न रखता था।

काबुल सरकार का वकील लाहौर में

यह प्रकट हो चुका होगा कि दुर्रानी शासन की भाग्यलक्ष्मी नित्य विमुख होती जा रही थी। केंद्रीय शासन की नित्य की क्रांतियों के कारण पेशावर, अटक और कश्मीर के सूबेदार काबुल सरकार से विमुख हो चुके थे। अतएव जब शाह महमूद और वज़ीर फ़तेह ख़ां दूसरी बार ज़ोर पकड़ गए तो उन्हों ने अता मुहम्मद ख़ां, सूबेदार कश्मीर को परास्त करने का निश्चय किया। परंतु उस समय रंजीतसिंह का बल बढ़ा-चढ़ा था, जिस से

वह पूर्ण-रूप से परिचित हो चुके थे। जम्मू, झेलम, और गुजरात के नाके जिन के द्वारा कश्मीर की घाटी में प्रवेश करते हैं, महाराजा के अधिकार में आ चुके थे। इस लिए महाराजा की इच्छा के बिना कश्मीर पर आक्रमण करना फ़ौजी दृष्टिकोण से भय से रहित न था। अतएव वज़ीर फ़तेह ख़ां ने अपना विश्वस्त वकील गूदड़मल महाराजा के दरबार में भेजा। दिसंबर सन् १८११ ई० में वह अफ़ग़ानिस्तान से उत्तम भेंट लेकर लाहौर दरबार में पहुँचा और अपने स्वामी का संदेश कह सुनाया। महाराजा ने हर प्रकार से उस का आश्वासन किया और कहा कि मैं इस समय राजकुमार के विवाह के प्रबंध में लगा हूं। इस के बाद वज़ीर फ़तेह ख़ां की सहायता करूँगा। उक्त वकील यह जवाब लेकर लौटा।

भंबर, राजोरी और अखनौर पर आक्रमण

ज्योंही महाराजा विवाह-कार्य से मुक्त हुआ उस ने पहाड़ी इलाक़ों—भंबर और राजोरी—की ओर ध्यान दिया, और जम्मू और अखनौर पर भी पूर्ण-रूप से अधिकार करने का विचार कर लिया। पूर्व की ओर यह स्थल कश्मीर की घाटी के नाके हैं। कश्मीर विजय करने के लिए इन स्थलों पर महाराजा का पूर्व से ही अधिकार होना आवश्यक था। अतएव कुँवर खड़क सिंह के नेतृत्व में भाई राम सिंह एक बड़ी सेना ले कर गया। राजा सुलतान ख़ां भँवर वाले और राजा उगर ख़ां राजोरी वाले ने घोर विरोध किया। दीवान मुहकम चंद के नेतृत्व में फ़ौज पहुँचने पर अधीनता स्वीकार की। महाराजा ने कुछ दिनों के लिए उन्हें अपने पास लाहौर में नज़रबंद रक्खा। अखनौर भी लाहौर साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया।

वफ़ा बेगम का कोहनूर देने का वचन देना

जब शुजाउल्मुल्क कश्मीर में क़ैद किया गया तो उस की बेगमें और शहज़ादे लाहौर में आ गए थे, और महाराजा ने उन्हें अत्यंत आदर और सद्भाव से शरण दिया। जब वज़ीर फ़तेह ख़ां और शाह महमूद के कश्मीर विजय करने के विचार का हाल शाह शुजा की बेगमों को मालूम हुआ तो वह बहुत घबराईं। शाह शुजा और शाह महमूद एक-दूसरे के प्रबल शत्रु थे। शाह महमूद स्वभाव का निर्दयी था। उस ने अपने दूसरे भाई शाह ज़मां को आँखें निकलवा दी थीं। उन्हें यह भय हुआ कि कश्मीर-विजय के बाद हत्याकारी कहीं शाह शुजा के साथ भी वैसा ही व्यवहार न करे। अतएव शाह की स्त्री वफ़ा बेगम ने जब यह सुना कि महाराजा भी अपनी कुछ फ़ौज फ़तेह ख़ां के साथ कश्मीर भेजने का निश्चय कर रहा है, तो उस ने फ़क़ीर अज़ीज़ुद्दीन और दीवान भवानी दास द्वारा यह संदेश भेजा कि यदि महाराजा शाह शुजा को क़ैद से छुड़ा लाए और वह अपने बाल बच्चों के पास लाहौर पहुँच जावे, तो वह प्रसिद्ध कोहनूर हीरा महाराजा को भेंट कर देगी। अतएव रंजीतसिंह ने यह बात स्वीकार कर ली, और जब उस की सेना कश्मीर जाने लगी तो महाराजा ने जनरल मुहकम चंद को यह विशेष रूप से आज्ञा दी कि जिस प्रकार हो सके वह शाह शुजा को अपने साथ लाहौर ले आए।[1]

वज़ीर फ़तेह ख़ां की महाराजा से भेंट—नवंबर सन् १८१२ ई०

फ़तेह ख़ां का वकील गूदड़ मल जब काबुल वापस पहुँचा और महाराजा

[1] विस्तृत वर्णन के लिए देखिए—मुंशी सोहन लाल, दीवान अमरनाथ और मैकक्रेगर। इन सब ने वफ़ा बेगम के वचन देने की स्पष्ट चर्चा की है।

का संतोष-जनक उत्तर अपने स्वामी को दिया, तो फ़तेह ख़ां ने काश्मीर चढ़ाई की तैयारियां आरंभ कर दीं, और नवंबर सन् १८१२ ई० में अटक नदी पार कर के पंजाब की ओर बढ़ा। इधर महाराजा ने भी अपनी फ़ौज के साथ झेलम नदी पार कर के रोहतास के निकट डेरे डाल दिए। अतएव महाराजा के ख़ेमे में दोनों की भेंट हुई। और सम्मिलित रूप से चढ़ाई करने का निर्णय हुआ। महाराजा के समझाने पर वज़ीर फ़तेह ख़ां भी राज़ी हो गया कि मुज़फ़्फ़राबाद वाले रास्ते के स्थान पर जो बर्फ़ की वजह से पार करने में कठिन था, भंबर और राजोरी के रास्ते कूच किया जाय और पीर पंजाल पार करके कश्मीर की घाटी में प्रवेश किया।

महाराजा के सम्मिलित आक्रमण का उद्देश्य

कश्मीर के सम्मिलित युद्ध के संबंध में महाराजा ने अपने मंत्रियों और अमीरों से सलाह किया। सब ने इस अवसर से लाभ उठाने का परामार्श दिया क्योंकि सहज में शाह शुजा को कश्मीर के सूबेदार के क़ैद से मुक्त कराया जा सकेगा, जिस के बदले उस की बेगम ने महाराजा को कोहनूर देने का वादा कर रक्खा था, और महाराजा इस मतलब के लिए अकेला फ़ौज भेजने वाला था। दूसरे पंजाब का शेर उचित अवसर मिलने पर कश्मीर विजय का स्वयं भी विचार रखता था। अतएव इस अवसर पर ख़ालसा फ़ौजें, दर्रों, घाटियों और मार्गों से पूर्णतया परिचित हो जायँगी जो बाद में बहुत लाभदायक सिद्ध होगा।

कश्मीर-यात्रा

अतएव बारह हज़ार सिख नवयुवक सरदार दल सिंह, जीवन सिंह पिंडीवाला, और पहाड़ी राजे जसरोठ, बिसोहली, नूरपूर इत्यादि के नेतृत्व

में कश्मीर के लिए रवाना हुए। दीवान मुहकचंद इस फ़ौज का सेनापति था। दोनों सेनाओं ने पहली दिसंबर सन् १८१२ ई० को झेलम से प्रस्थान किया। भंबर, राजोरी और थाना के राह से होती हुई पीर पंजाब पार कर के कश्मीर में प्रविष्ट हुईं।

वफ़ा बेगम को आश्वासन

रंजीतसिंह झेलम से लाहौर वापस पहुँचा, और वफ़ा बेगम को आश्वासन देने और उत्साहित करने के लिए फ़क़ीर अज़ीज़ुद्दीन और दीवान भवानी दास को उस के पास भेजा जिस में उसे बतावें कि ख़ालसा सरदारों को विशेष-रूप से यह आज्ञाएं दी गई हैं कि वह शाह शुजा को अपने साथ लाहौर ले आवें। इस पर वफ़ा बेगम ने अपने विश्वस्त मुसाहब मीर अबुलहसन, मुल्ला जाफ़र और क़ाज़ी शेर मुहम्मद को महाराजा की सेवा में भेजा और कहला भेजा कि मैं अपने वादे पर पक्की हूं। जिस समय शाह शुजा लाहौर पहुँचेगा हीरा बिना किसी प्रकार के हीले-हवाले के आप की भेंट किया जायगा।[1]

दीवान मुहकम चंद की होशयारी

दोनों फ़ौजें बड़ी शीघ्रता से रास्ता पार कर रही थीं। सिख और अफ़ग़ान वीरता में एक-दूसरे से बाज़ी जीतना चाहते थे। प्रत्येक की यही इच्छा थी कि मेरी सेना अधिक वीर प्रमाणित हो। इसी दौड़-धूप में अफ़ग़ानी सेना जो पहाड़ी दुर्गम मार्गों को पार करने में अभ्यस्त थी ख़ालसा

---

[1] विस्तृत हाल जानने के लिए देखिए—मुंशी सोहन लाल की 'उम्दतुलतवारीख़'। सिखों के प्रसिद्ध इतिहासकार दीवान अमर नाथ तो यह लिखते हैं कि महाराजा का उद्देश्य केवल शाह शुजा को मुक्त कराना था—('ज़फ़रनामा-रंजीतसिंह', पृष्ट ७)। कनिंघम भी इसी का समर्थन करता है।

सेना से बहुत आगे निकल गई। परंतु दीवान मुहकम चंद बड़ा चतुर व्यक्ति था। उस ने तुरंत भंबर और राजोरी के राजों को, जो उस समय खालसा सेना के साथ थे, भारी जागीर का लालच दिया और उन से कहा कि ऐसा निकट का रास्ता बताओ कि जिस से खालसा सेना अफ़ग़ान सेना के साथ हो कर कश्मीर की घाटी में जा पहुँचे। अतएव ऐसा ही हुआ और सिख सेना फ़तेह खां की फ़ौज से पूर्व ही कश्मीर की घाटी में प्रविष्ट हुई।

शेरगढ़ क़िले का दमन

अता मुहम्मद खां को जब इस आक्रमण का हाल मालूम हुआ तो उस ने शेरगढ़ क़िले के निकट इन फ़ौजों को रोकने का पूरा प्रबंध कर लिया। सँकरे दर्रों और दुर्गम रास्तों को पत्थरों और वृक्षों से बंद कर के और भी दुर्गम बना दिया। सर्दी का मौसम पूरे ज़ोरों पर था। बर्फ़ ख़ूब अधिकता से गिर रही थी। खालसा सेना इस प्रकार की तीव्र सर्दी सहन नहीं कर सकती थी, अतएव लगभग २०० सिपाही मर गए। खाने की वस्तुएं बड़ी महँगी हो गईं। परंतु सिक्खों के जोश के सामने इन कठिनाइयों में क्या था? वह अफ़ग़ानी सेना के साथ ही साथ आगे बढ़ते रहे। अतएव शेरगढ़ का घेरा डाल दिया गया। अता मुहम्मद ने कुछ देर डट कर सामना किया, परंतु अंत में पराजित हुआ। खालसा और अफ़ग़ानी फ़ौजों ने क़िले पर अधिकार कर लिया। बहुत-सा मूल्यवान् माल विजेताओं के हाथ लगा।[१] शाह शुजाउलमुल्क भी इसी क़िले में पैरों में ज़ंजीर से बँधा

[१] प्रिंसेप और उस से नक़ल कर के बहुत से इतिहासकारों ने यह लिखा है कि वज़ीर फ़तेह खां ने अकेले ही अता मुहम्मद खां को परास्त किया था और खालसा सेना पीछे रह गई थी। यह वर्णन नितांत अशुद्ध है। विस्तृत वर्णन के लिए मुंशी सोहन लाल की पुस्तक देखिए।

हुआ क़ैद था। अतएव शाह को तुरंत मुहकम चंद के कैंप में लाया गया। उस की ज़ंजीरें कटवा कर उस का बहुत कुछ आश्वासन किया गया।

वज़ीर फ़तेह ख़ां ने भी क़िला में प्रवेश करते ही शाह शुजा की तलाश की, परंतु वह वहां कहां था। उस ने शाह को दीवान मुहकम चंद से प्राप्त करने का असफल प्रयत्न किया। परंतु दीवान बड़ा बुद्धिमान था। उस ने शुजाउल्मुल्क को अपने पास रखने में कोई उपाय उठा न रक्खा। अतएव इसी कारण वज़ीर फ़तेह ख़ां और दीवान मुहकम चंद में भेद-भाव उत्पन्न हो गया। दीवान मुहकम चंद यहां से ही अफ़ग़ान फ़ौज से अलग हो कर ख़ालसा सेना और शाह शुजा के साथ लाहौर वापस लौट पड़ा, और वज़ीराबाद पहुँच कर उस ने महाराजा को विस्तृत समाचार लिख भेजा। फिर दो दिन बाद लाहौर जा पहुँचा। महाराजा ने शाह शुजा का सम्मान-पूर्वक स्वागत किया। एक बड़ा और अच्छा घर जो लाहौर में आज तक मुबारक हवेली के नाम से प्रसिद्ध है शाह के रहने के लिए प्रस्तुत किया।

कोहनूर पर झगड़ा

अब महाराजा ने वादे के अनुसार शाह शुजा से कोहनूर माँगा। और इस उद्देश्य से फ़क़ीर अज़ीज़ुद्दीन और भाई राम सिंह को शाह के पास भेजा। परंतु इस मूल्यवान् हीरे को अलग करना कोई साधारण बात न थी। अतएव शाह और उस की बेगम ने टाल-मटोल किया और अपने वकील हबीबुल्ला ख़ां और हाफ़िज़ रूहुल्ला ख़ां को महाराजा के पास क़िले में रवाना किया। उन्हों ने प्रकट किया कि कोहनूर इस समय उन के अधिकार में नहीं है। वफ़ा बेगम ने उसे क़ंधार में एक मनुष्य के यहां छः करोड़ रुपए पर गिरवी रक्खा है। यह रुपया शाह ने अपने युद्धों में व्यय किया था।

भला रंजीतसिंह ऐसा होशियार आदमी इन चक्रमों में कहां आने वाला था ? उस ने कोहनूर प्राप्त करने के लिए कश्मीर के युद्ध में दो लाख रुपया ख़र्च किया था । सैकड़ों सिख नौजवान हाथ से खोए थे । स्वयं और उस के सेनापतियों ने इतनी मेहनत और कठिनाइयां सहन की थीं और शाह के कारण उस ने वज़ीर फ़तेह ख़ां को अंत में अप्रसन्न किया था । क्या टाल-मटोल के दो-चार शब्द इन अनेक बलिदानों के बराबर थे ? स्वाभाविक था कि महाराजा को इस वचन को तोड़ने पर क्रोध आए । अतएव शीघ्र ही शादी ख़ां कोतवाल को यह आज्ञा हुई कि शाह के घर पर कठिन पहरा लगाया जाए जिस में वहां से कोई भीतर-बाहर न जा सके । कुछ दिन बादशाह के पास यह भी संदेश भेजा कि आप को कोहनूर के उपलक्ष में तीन लाख रुपया नक़द और पचास हज़ार की जागीर दी जायगी । अंत में शाह ने इन कठिनाइयों से विवश हो कर यह स्वीकार किया कि ५० दिन के भीतर-भीतर कोहनूर महाराजा को दे दिया जायगा । अतएव जब यह अवधि समाप्त होने को आई तो १८१३ ई० की जून के आरंभ में शाह शुजा के कहने पर महाराजा एक हज़ार सवार व प्यादा और कुछ सरदार अपने साथ ले कर मुबारक हवेली में शाह के पास पहुँचा । शाह शुजा ने उठ कर महाराजा का स्वागत किया और कोहनूर भेंट कर दिया । महाराजा ने शाह को लिख कर दिया कि चौकी व पहरा शाह के मकान से उठा लिया जायगा और आगे उस पर बंधन न लगाया जायगा ।

इस घटना के संबध में इतिहासकारों की सम्मतियां

इस घटना का वर्णन करते हुए कप्तान मरे ने अपनी रिपोर्ट में और उस से नक़ल कर के सैयद मुहम्मद लतीफ़ ने यह प्रकट करने का प्रयत्न

किया है कि महाराजा अत्यंत लालची था। उस ने स्वयं जान-बूझ कर वफ़ा बेगम को उस के पति के जीवन के संबंध में डराया और यह आशा दिलाई कि यदि वह उसे कोहनूर देने का वादा करे तो महाराजा उस के पति को फ़तेह ख़ां के पंजे से सुरक्षित छुड़ा लावेगा। बाद में तरह-तरह के कष्ट दे कर यह हीरा उन से छीन लिया। उस के विपरीत भाई प्रेम सिंह ने अपनी पुस्तक में यह प्रकट किया है कि इस घटना से महाराजा रंजीत-सिंह का कोई संबंध न था। वफ़ा बेगम ने दीवान मुहकम चंद और फ़क़ीर अज़ीज़ुद्दीन से कोहनूर देने का वादा किया था। अब उन्हीं दोनों ने शाह और उस की बेगम से यह हीरा निकलवाने का प्रयत्न किया, जिस में कि वह महाराजा के सम्मुख झूठे न बनें और लज्जित न हों। हमें रंजीतसिंह को निर्दोष सिद्ध करने या उस में दोष दिखाने से कोई संबंध नहीं। हमारा मुख्य धर्म घटनाओं को यथार्थ रूप से उपस्थित करना है। हमारी सम्मति में उप-रोक्त इतिहासकारों की सम्मति पक्षपात से रहित नहीं। यह घटनाओं को अतिरंजित करना या छिपाना उन की अपनी ईजाद है। हमारा बयान मुंशी सोहन लाल और दीवान अमर नाथ की पुस्तकों पर आश्रित है। यह दोनों महाराजा के दरबार के घटना-लेखक थे और जहां तक मैं जानता हूं, इन्हों ने घटनाओं को ठीक प्रकार से वर्णित किया है। जहां उन्हों ने वफ़ा बेगम के वादे का साफ़-साफ़ वर्णन किया है वहां खुले प्रकार से यह भी लिख दिया है कि जब शाह और उस की बेगम ने कोहनूर देने में टाल-मटोल किया तो महाराजा की आज्ञा से इन के मकान पर पहरा बैठा दिया गया और शाह को बहुत कष्ट दिया गया।

शाह शुजा भी अपने आत्मचरित्र[1] में इस घटना का वर्णन करता है

[1] अध्याय, १५

जिस के पढ़ने से स्पष्ट होता है कि उसे कुछ कष्ट अवश्य दिया गया था, परंतु जितना कि कप्तान मरे ने सुनी-सुनाई बातों का बतंगड़ बना दिया है उतना नहीं। कप्तान मरे और शाह शुजा के बयान में बहुत अंतर है।

शाह शुजा का पूर्व-वृत्तांत

इस घटना के अनंतर शाह शुजा सकुटुंब डेढ़ साल तक लाहौर में रहा। परंतु उस के हृदय में अभी बादशाही की लालसा चुटकियां ले रही थी। अतएव उस ने लाहौर से भाग कर निकलने का पूरा इरादा कर लिया। १ नवंबर, सन् १८१४ ई० को शाह की बेगमें शहर लाहौर से भाग कर सतलज नदी को पार कर के लुधियाने में शरणागत हुईं। जब महाराजा को यह भेद मालूम हुआ तो उस ने चौकी-पहरा नियुक्त किया। परंतु अप्रैल सन् १८१५ ई० को शाह शुजा भी भेस बदल कर भाग निकला। और १८३८ ई० तक अंग्रेज़ी सरकार के यहां पेंशन पाता रहा। इस बीच में शाह ने कई बार कश्मीर, पेशावर, सिंध और काबुल की तरफ़ प्रस्थान किया परंतु सदा असफल रहा। अंत में सन् १८३९ ई० में अंग्रेज़ों की सहायता से काबुल के तख़्त पर बैठा, परंतु अगले वर्ष ही क़त्ल कर दिया गया। महाराजा ने शाह शुजा के संबंध में आकृति देख कर यह राय निर्धारित की थी कि यह बादशाही प्राप्त करने में सफल न होगा। वैसा ही हुआ।

अटक के क़िले पर महाराजा का अधिकार

अटक का सुदृढ़ क़िला सिंध नदी के ठीक किनारे पर स्थित है, और पश्चिमोत्तरी दर्रों की राह आने-जाने वालों के लिए पंजाब का द्वार समझा जाता है। उस समय अटक का क़िला अफ़ग़ानी सरदार जहाँदाद ख़ां के अधिकार में था। महाराजा रंजीतसिंह के मन में यह बात बैठ चुकी थी कि

जब तक यह दुर्ग उस के अधिकार में न आएगा अफ़ग़ानी सेना की रोक-थाम बहुत कठिन होगी। अतएव सौभाग्यवश महाराजा को अवसर शीघ्र ही प्राप्त हुआ। अटक का क़िलादार जहाँदाद ख़ां कश्मीर के सूबेदार अता मुहम्मद ख़ां का भाई था। कश्मीर की हार का हाल सुन कर उसे अपने लिए भी भय उत्पन्न हो गया। वह स्पष्ट रूप से जानता था कि वह अकेला शाह महमूद और उस के वज़ीर फ़तेह ख़ां का सामना न कर सकेगा। अस्तु उस ने रंजीतसिंह से पत्र-व्यवहार आरंभ किया, और इस शर्त पर क़िला ख़ाली करने पर तैयार हो गया, कि उसे गुज़ारे के लिए महाराजा की ओर से उचित जागीर दे दी जाय। महाराजा ने तुरंत वज़ीराबाद का परगना जहाँदाद ख़ां की जागीर के लिए नियुक्त कर दिया और ख़ालसा फ़ौज का एक बड़ा टुकड़ा अटक पर अधिकार करने के लिए भेजा। अफ़ग़ानी फ़ौज ने क़िला ख़ाली करने से पूर्व लगभग एक लाख रुपया जो उन की वेतनों का जहाँदाद ख़ां के यहां बाक़ी था महाराजा के अफ़सरों से माँगा। यह रुपया अदा कर दिया और ख़ालसा फ़ौज क़िले पर अधिकारी हो गई।

वज़ीर फ़तेह ख़ां की तिलमिलाहट

वज़ीर फ़तेह ख़ां से यह सब व्यापार छिपा रहा, और उसे जहाँदाद ख़ां की कृति की कुछ ख़बर न मिली। उस की आँखें उस समय खुलीं जब महाराजा का अटक क़िले पर अधिकार हो चुका था। अतएव वह बहुत तिलमिलाया। तुरंत कश्मीर की सूबेदारी अपने भाई अजीम ख़ां के हाथों में दी। स्वयं पखली और धमतूर वाले रास्ते से होता हुआ ऊपर ही ऊपर पेशावर पहुँच गया और महाराजा को क़िला ख़ाली करने के लिए कहला भेजा। महाराजा क़िले में अपनी सेना बढ़ाने के लिए समय प्राप्त करना

चाहता था। अतएव उस ने फ़तेह ख़ां के साथ समझौते की बात-चीत में कुछ समय व्यतीत कर दिया और उसी समय अटक के क़िले की फ़ौज भी बढ़ा दी। बाद में क़िला ख़ाली करने से साफ़ इन्कार कर दिया।

सिखों और अफ़ग़ानों का प्रथम युद्ध

फ़तेह ख़ां ने तुरंत एक बड़ी अफ़ग़ानी सेना के साथ इलाक़ा छछ में डेरे डाल दिए और क़िले का घेरा आरंभ कर दिया। इधर से महाराजा का तोपख़ाना और लश्कर मुहकम चंद के नेतृत्व में झेलम पार कर के क़िला की रक्षा के लिए पहुँच गया। दोनों फ़ौजें तीन मास तक आमने-सामने पड़ी रहीं। इस घेरे के अवसर पर क़िले वालों को रसद पहुँचाना कठिन हो गया, अतएव दीवान मुहकम चंद ने महाराजा से आज्ञा प्राप्त कर के अफ़ग़ानी सेना पर आक्रमण कर दिया। १२ जूलाई सन् १८१३ ई० को ख़ालसा सेना के चुने हुए सवारों का एक टुकड़ा आगे बढ़ कर वैरी की देख-भाल कर रहा था, कि उन्हें निकट ही अफ़ग़ानों का एक पड़ाव दिखाई दिया। उन्हों ने अवसर पाकर यकायक उन पर आक्रमण कर दिया। इसी बीच में बाक़ी बची सिख सेना भी पहुँच गई। बड़ा घमासान युद्ध हुआ। दोनों पक्ष के बहुत से योद्धा काम आए। रात के अँधेरे ने दोनों फ़ौजों की तलवारें म्यान में रखवा दीं। १३ जूलाई को दीवान मुहकम चंद ने ख़ुसरो मुक़ाम के निकट अपनी सेना को सजाया। फ़ौज चार भागों में बँटी। तोपख़ाना और पैदल सेना चौकोर आकार में सजाई गई। दोस्त मुहम्मद ख़ां के नेतृत्व में अफ़ग़ानों के लिए भी सेना पहुँच गई, अतएव अफ़ग़ानी टिड्डी-दल फ़ौज ने बड़े जोश और उत्साह के साथ सिख सेना पर आक्रमण किया। ख़ालसा योद्धा भी अपने मोर्चों और दमदमों से बाहर निकल पड़े और

ऐसा सामना किया कि वैरी के दाँत खट्टे हो गए। अफ़ग़ानों ने पीछे हटना आरंभ किया। ख़ालसा घुड़सवारों ने उन का पीछा किया। तलवार के वह करतब दिखाए कि पल की पल में हज़ारों को खेत रक्खा।[१] मैदान ख़ालसा के हाथों रहा। अफ़ग़ानी सेना का अगणित नगद रुपया व सामान, ख़ेमे, ऊँट, घोड़े और लगभग ७ छोटी तोपें उन के हाथ आईं। विजय का समाचार प्राप्त होने पर लाहौर में ख़ुशी के बाजे बजे। इस सुखद समाचार के लाने वाले को महाराजा ने सोने के कड़ों की एक जोड़ी और सम्मान की ख़िलअत प्रदान की। वज़ीर फ़तेह ख़ां ने भाग कर पेशावर में दम लिया। महाराजा ने मुखड वग़ैरह के क़िलों में अधिकार कर के संपूर्ण इलाक़ा अपने अधीन कर लिया। मैक ग्रेगर लिखता है कि—यह सिखों की अफ़ग़ानों पर पहली प्रबल विजय थी। उस दिन से ख़ालसा का ऐसा सिक्का अफ़ग़ानों पर जमा जो बाद में सिखों के लिए बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ।

कश्मीर की चढ़ाई की तैयारियां—अक्तूबर सन् १८१३ ई०

ख़ालसा सेना ने कश्मीर और अटक के युद्धों में अफ़ग़ानी सेना में बल का अनुमान कर लिया था कि यह लोग उन से किसी प्रकार अच्छे योद्धा या शूर नहीं हैं। फ़ौज़ी दृष्टिकोण से अटक के क़िले पर अधिकार बनाए रखने के लिए महाराजा ने यह आवश्यक ख़्याल किया कि सूबा कश्मीर और उस के आस-पास का पहाड़ी इलाक़ा वज़ीर फ़तेह ख़ां के सहायकों के हाथ में अधिक समय तक नहीं रहना चाहिए। अतएव अक्तूबर मास के आरंभ में महाराजा ने कश्मीर के दमन करने का विचार किया। और अपने सचिवों से परामर्श किया। अतएव इस युद्ध के लिए तैयारियां आरंभ हो गईं।

[१] दीवान अमर नाथ के अनुसार दो हज़ार अफ़ग़ान सिपाही युद्ध में काम आए।

महाराजा साहब ने स्वयं दशहरा से पहले नवरात्र के दिन प्रस्थान किया। अमृतसर होते हुए काँगड़ा में ज्वाला जी के पवित्र स्थल पर भेंट चढ़ाई।[१] फिर पठानकोट और आदीनानगर होते हुए स्यालकोट में ख़ेमा डाला। यहां संपूर्ण खालसा फ़ौजें एकत्र की गईं। सरदार निहाल सिंह अटारीवाला, सरदार दीसा सिंह मजीठा, दीवान राम दयाल, सरदार हरी सिंह नलवा, और भैया राम सिंह इत्यादि के नेतृत्व में अलग-अलग सेना के भाग नियुक्त हुए। नवंबर में महाराजा रोहतास पहुँचा। यहां उसे समाचार मिला कि वज़ीर फ़तेह खां पेशावर से डेराजात की तरफ़ आ रहा है, और मुल्तान दमन करने का विचार रखता है, और पीर पंजाल में भी बर्फ़ पड़ रही है। अतएव तत्काल कश्मीर विजय करने का विचार स्थगित करना पड़ा। फिर भी एक टुकड़ा सेना का दीवान राम दयाल (जो दीवान मुहकम चंद का पोता और बीस वर्ष की अवस्था का नवयुवक था) के नेतृत्व में राजौरी की ओर रवाना किया गया, जिस में कि वह उस रास्ते के दर्रों पर अधिकार कर ले और अनाज इत्यादि के ढेर जमा करने के उचित स्थान देख आए। महाराजा स्वयं २६, दिसंबर को लाहौर वापस पहुँच गया।

कश्मीर पर चढ़ाई—अप्रैल सन् १८१४ ई०

अतएव अब मौसम खुलने पर अप्रैल सन् १८१४ ई० में कश्मीर की चढ़ाई का पुनः निश्चय हुआ। काँगड़ा पहाड़ी के राजों के नाम आज्ञापत्र निकले कि अपनी-अपनी सेना लेकर महाराजा के साथ सम्मिलित हों। अतएव तारीख़ ४ जून को वज़ीराबाद के स्थल पर संपूर्ण सेना का निरीक्षण

[१] विस्तृत हाल के लिए देखिए मुंशी सोहन लाल की 'उम्दतुल्तवारीख़,' दफ़्तर २, पृष्ठ १४७

हुआ,[1] और उसे विभिन्न भागों में बाँटा गया। यहां से सेना कूच कर के गुजरात और भंबर होती हुई ११ जून को राजोरी पहुँची। यहां महाराजा ने युद्ध का उचित प्रबंध किया। अतएव तोपख़ाना का भारी असबाब यहीं पर छोड़ दिया और हल्की शुतरी तोपों को अपने साथ लिया। सेना को दो बड़े भागों में विभक्त किया। एक टुकड़ा जिस की संख्या तीस हज़ार के लगभग थी दीवान राम दयाल, सरदार दल सिंह, ग़ौस ख़ां दारोग़ा तोपख़ाना, सरदार हरी सिंह नलवा और सरदार मता सिंह पधानिया, के नेतृत्व में बहराम गल्ला के रास्ते से शोपियां स्थल पर कश्मीर की घाटी में प्रवेश करने के लिए चला। फ़ौज का दूसरा भाग जिस की संख्या और अधिक थी और जिस का नेतृत्व महाराजा के हाथों में था पोंछ वाले मार्ग से होकर तोशा मैदान के दर्रे से निकल कर वादी में पहुँचने के लिए चल पड़ा।

---

[1] वज़ीराबाद पहुँचने से पहले महाराजा को समाचार मिला कि निकट के जंगल में दो बड़े शेर रहते हैं और आदमी तथा पशुओं की जान का नुक़सान कर रहे हैं। महाराजा भी शेर के शिकार का प्रेमी था। अतएव वहां पर एक दिन के लिए शिकार के उद्देश्य से पड़ाव किया। कुछ एक सवार साथ लेकर महाराजा हाथी पर सवार होकर जंगल में निकल गया। हरी सिंह डोगरा राजपूत जो बड़ा फुर्तीला और बहादुर सवार था महाराजा के हाथी के आगे-आगे था, इतने में शेर सामने आया। हरी सिंह ने अपनी तलवार से शेर पर वार किया। आन की आन में सरदार जगत सिंह अटारीवाला, जो महाराजा के साथ था घोड़े के एड़ी लगा कर निकट पहुँच गया। शेर झुँझला कर जगत सिंह पर लपका और घोड़े के शरीर पर ऐसा पंजा मारा कि घोड़ा उसी दम मर गया। इस बीच में हरी सिंह ने शेर पर तलवार से इस ज़ोर से आक्रमण किया कि उस का काम तमाम हो गया। महाराजा शेर को अपने हाथी पर लाद कर वज़ीराबाद लाया और अपने तोशाख़ाना के अफ़सर को आज्ञा दी कि सोने के कंगन की एक जोड़ी और मूल्यवान् ख़िलअत हरी सिंह को दी जाय। और एक अच्छा ताज़ी घोड़ा और दो हज़ार रुपया नक़द जगत सिंह को प्रदान किया।

कश्मीर पर आक्रमण की असफलता

दीवान राम दयाल अपने सेना के भाग को लेकर मंज़िल-मंज़िल पर पड़ाव करता हुआ १८ जून को बहराम गल्ला पहुँच गया और पीर पंजाल की घाटियों के दर्रों पर अधिकारी हो गया। बहराम गल्ला स्थल पर दो-एक छोटी लड़ाइयां हुईं। ख़ालसा नवयुवक नियमित रूप से आगे बढ़ते गए। और सराय से होते हुए आमादपूर जा पहुँचे, और तुरंत हमीरपूर अधिकार में कर लिया। अज़ीम खां, सूबेदार कश्मीर की फ़ौज का एक बड़ा भाग सामना करने के लिए आगे बढ़ा, और २४ जून को सिखों और अफ़ग़ानों में घमासान युद्ध हुआ। अफ़ग़ान हार कर लौटे। सिख सेना यहां से शोपियां पहुँची। वहां अफ़ग़ानी सेना मुहम्मद शकूर ख़ां के नेतृत्व में एक बड़ी संख्या में उपस्थित थी। बड़ा घमासान युद्ध हुआ। शाहज़ादा खड़क सिंह की सेना का वीर अफ़सर जो आगे की पंक्ति में तलवार लिए लड़ रहा था इसी लड़ाई में मारा गया। उधर ईश्वर को भी कदाचित् ख़ालसा की सफलता वांछित न थी। ठीक युद्ध के अवसर पर मूसलाधार वर्षा आरंभ हो गई। अब ख़ालसा सेना को श्रीनगर की तरफ़ बढ़ने के अतिरिक्त कोई उपाय न रहा। अतएव दीवान राम दयाल ने श्रीनगर के निकट जा डेरे लगाए और ताज़ा सेना की आशा करने लगा। लेकिन वर्षा की अधिकता और भैया राम सिंह–जिस के नेतृत्व में पाँच हज़ार सेना महाराजा की ओर से भेजी गई थी—की कायरता के कारण समय पर सहायता न पहुँच सकी। इसी कारण कुछ काल के लिए राम सिंह अपने पद से हटा भी दिया गया।

महाराजा का वापस आना

ख़ालसा सेना का दूसरा भाग जो स्वयं महाराजा के साथ था वर्षा

की अधिकता के कारण जून के अंत तक राजोरी में ही रुका रहा। अंत में वह २८ जून को पोंछ पहुँच गया। यहां भी पंद्रह दिन ठहरना पड़ा, क्योंकि पोंछ का अधिकारी रूहल्ला खां कश्मीर के सूबेदार से मिला हुआ था। अतएव महाराजा की सेना को रसद प्राप्त करने में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। अब महाराजा ने तोशा मैदान के दर्रे से जाने का विचार किया, परंतु यहां भी सफलता के कोई लक्षण दिखाई न देते थे। अतएव महाराजा मंडा की ओर बढ़ा, परंतु ऊपर से रूहल्ला खां ने खालसा सेना को तंग करना आरंभ किया। पहाड़ों की चोटियों से गोलियों की बौछार ने महाराजा के पाँव उखाड़ दिए। उधर से अज़ीम ख़ां ने भी मौक़े पर आक्रमण कर दिया। महाराजा चारों ओर से घिर गया। अतएव वापस आने के अतिरिक्त कोई बस न था, और पोंछ, कोटली, मीरपूर से होता हुआ अगस्त सन् १८१४ ई० में महाराजा लाहौर वापस पहुँचा।

दीवान राम दयाल की वीरता

दीवान राम दयाल की सेना जो श्रीनगर के निकट स्थित थी बहुत दृढ़ बनी रही और बड़ी शूरता और तत्परता से अज़ीम ख़ां का सामना करती रही। दीवान अमर नाथ लिखते हैं कि राम दयाल के युद्धों में लगभग दो हज़ार अफ़ग़ान काम आए।[1] संभवतः अज़ीम ख़ां भी इसी को नीति-युक्त समझता था कि जितनी जल्दी हो सके ख़ालसा सेना उस की रियासत से बाहर चली जाय। अतएव राम दयाल की शूरता और दृढ़ता देख कर उस के साथ संधि कर ली और जैसा सैयद मुहम्मद लतीफ़ लिखते हैं, उस ने महाराजा के लिए मूल्यवान् भेंटें भेजीं, और दीवान राम दयाल को

[1] 'ज़फ़रनामा रंजीतसिंह', पृ० ८४

आश्वासन दिलाया कि वह आगे सदा महाराजा की शुभ कामना करेगा।[1]

दीवान मुहकम चंद की मृत्यु—अक्तूबर सन् १८१४ ई०

ख़ालसा सेना का बहादुर योद्धा और महान् सेनापति दीवान मुहकम चंद कुछ काल से बीमार चला आता था। परंतु अच्छा न हो सका और अक्तूबर सन् १८१४ ई० में परलोक सिधारा। दीवान मुहकम चंद उन प्रसिद्ध व्यक्तियों में सब से पहला सिख सरदार था जिस ने ख़ालसा की जी-जान से सेवा की और यही कर्तव्य पालन करता हुआ मरा। मुहकम चंद का हृदय प्रेम और स्वामिभक्ति का स्रोत था, जिस ने महाराजा की सेवा में कोई कसर उठा न रक्खी। दिल की उच्चता के अतिरिक्त यह दीवान बुद्धि के और शारीरिक चमत्कारों की मूर्ति था। कड़ी से कड़ी कठिनाइयों से ज़रा भी विचलित न होता था। स्वभाव से उच्च कोटि का सेनापति था। देशभक्ति के भाव उस में कूट-कूट कर भरे थे।

रंजीतसिंह को उक्त दीवान पर बड़ा गर्व था, और उस के मरने का महाराजा को बहुत बड़ा शोक हुआ। संपूर्ण ख़ालसा दरबार शोक में छा गया। उस की अंतिम क्रिया बड़े आदर से फ़ौजी रीति से की गई, और फुलौर के बड़े बाग़ में दीवान की समाधि बनाई गई, जो अब तक उपस्थित है। महाराजा ने दीवान के बेटे मोतीराम को दीवानी की उपाधि प्रदान की और उस के पिता की जागीर पर उसे बनाए रक्खा। मोतीराम के होनहार नवयुवक पुत्र राम दयाल को दीवान मुहकम चंद की जगीरदारी सेना का

---

[1] इस के संबंध में प्रिंसेप इत्यादि का यह लिखना है कि अज़ीम ख़ां ने राम दयाल के दादा दीवान मुहकम चंद की मैत्री का ध्यान रख कर उसे कश्मीर से सुरक्षित निकल जाने दिया। यह बिल्कुल अयथार्थ है, और घटनाओं पर आश्रित नहीं है।

अफ़सर नियुक्त किया।

ब्रिटिश सरकार का दूत

इस के थोड़े दिनों बाद अंग्रेजी सरकार के दूत, अब्दुलनबी ख़ां और राय नंद सिंह लाहौर आए और गवर्नर-जनरल की ओर से मूल्यवान् भेंट महाराजा के सम्मुख प्रस्तुत की। महाराजा ने उन्हें अपने यहां अतिथि रक्खा ख़ूब आदर-सत्कार किया और गवर्नर-जनरल और सर डेविड अक्तरलोनी के लिए मूल्यवान् भेंटें उन के साथ वापस भेजीं।



ग्यारहवां अध्याय

युद्धों का क्रम और मुल्तान विजय

(सन् १८१५—१८१८ ई०)

ब्रिटिश-गोरखा युद्ध—सन् १८१४ से १८१६ ई० तक

सन् १८१४ ई० से सन् १८१६ ई० तक अंग्रेज़ों और गोरखों में लगातार युद्ध चलता रहा। आरंभ में ब्रिटिश सेना की एक-दो बार हार हुई। इस अवसर पर दरबार नैपाल का एजेंट पृथ्वी विलास महाराजा के पास अंग्रेज़ों के विरुद्ध सहायता के लिए आया, परंतु रंजीतसिंह ने स्पष्ट इन्कार कर दिया। एजेंट निराश होकर चला गया। अतएव उसी समय महाराजा ने फ़क़ीर अज़ीज़ुद्दीन को करनल अक्तरलोनी के पास लुधियाना भेजा कि यदि आप को मेरी सहायता की आवश्यकता हो तो मैं उपस्थित हूं। इसी आशय का संदेश गवर्नर-जनरल को भी भेजा गया।

सुधारों की आवश्यकता

कश्मीर के युद्ध में महाराजा को स्पष्ट रीति से यह मालूम हो गया कि उस की सेना में बहुत से सुधारों की आवश्यकता है। अतएव महाराजा ने तुरंत इस ओर ध्यान दिया। बहुत सी नई सेना भरती की गई, जिस में दो गोरखा पलटनें भी सम्मिलित थीं। कई और सुधार भी किए गए।

दीवान गंगाराम और पंडित दीनानाथ

पहले इस का वर्णन किया जा चुका है कि दीवान भवानी दास ने माल-विभाग का अत्युत्तम प्रबंध किया था, और प्रति वर्ष की आय व व्यय के

नियम-पूर्वक हिसाब का क्रम प्रचलित किया था।[1] अतएव महाराजा इस बात का बहुत इच्छुक था कि इस प्रकार के और विद्वान् लोग भी उस के यहां नौकर रहें। उन दिनों महाराजा का राज्य बड़े वेग से विस्तार पा रहा था। आय और व्यय के साधन नित्य वृद्धि पा रहे थे। व्यय की मदें बढ़ रही थीं। अतएव महाराजा ने सन् १८१३ में दीवान गंगाराम कश्मीरी पंडित को दिल्ली से बुला भेजा। दीवान की योग्यता की ख्याति महाराजा तक पहुँच चुकी थी। दीवान गंगाराम ने आते ही फ़ौज-विभाग के हिसाब किताब को सँभाला। दीवान के पास काम की इतनी भरमार थी कि वह उसे अकेला न निपटा सकता था, अतएव महाराजा ने उसे दो वर्ष बाद यह आज्ञा दी कि वह किसी आदमी को अपनी सहायता के लिए नायब के रूप में नियुक्त कर ले। दीवान गंगाराम ने पंडित दीनानाथ को बुला लिया जो बाद में बहुत योग्य और कुशल कर्मचारी प्रमाणित हुआ, और धीरे-धीरे माल-विभाग का सर्वोच्च पदाधिकारी नियुक्त हुआ, दीवान की उपाधि प्राप्त की और बाद में राजा के नाम से निर्वाचित हुआ।

राजौरी व भंबर का युद्ध—सन् १८१५ ई०

पिछले वर्ष महाराजा की सेना कश्मीर के युद्ध में विशेष सफलता न प्राप्त कर सकी थी। इस लिए पहाड़ी प्रदेशों के राजा भी विमुख होने लगे। महाराजा ने उन्हें शिक्षा देना उचित समझा। अतएव वर्षा ऋतु के अंत में

---

[1] सिख शासन के सन् १८१२ ई० से लेकर सन् १८४९ ई० तक के समस्त काग़ज़-पत्र पंजाब गवर्नमेंट के रेकार्ड आफ़िस में मौजूद हैं, जिन्हें कुछ वर्ष हुए लेखक ने संपादित किया था, और उन की विस्तृत सूची अंग्रेज़ी भाषा में दो जिल्दों में प्रकाशित की थी।

अक्तूबर मास के आरंभ होते ही सरदारों के नाम आज्ञा-पत्र निकल गए कि स्यालकोट में अपनी-अपनी सेना ले कर उपस्थित हों। वहां उन्हें राजौरी, भंबर और पीर पंजाल के संपूर्ण पहाड़ की तलहटी के इलाक़ों को विजय करने की आज्ञाएं मिलीं। महाराजा ने स्वयं वज़ीराबाद के रास्ते से बढ़ना चाहा। राजौरी का राजा उगर ख़ां रंजीतसिंह के इरादे से बेख़बर न था। उस ने सर्वत्र रास्तों और दर्रों पर अपनी फ़ौज के छोटे-छोटे टुकड़े नियुक्त कर दिए। और आप राजौरी के क़िले में रक्षार्थ ठहरा। यह क़िला एक ऊँची चोटी पर स्थित था अतएव ख़ालसा सेना को क़िला विजय करने में बड़ी कठिनाइयां उपस्थित हुईं। अंत में उन्हें एक उपाय सूझा और आठ तोपें बलवान् और बड़े हाथियों पर लाद कर क़िले के सामने से गोलाबारी आरंभ कर दी, और क़िले की दीवार चलनी कर दी। अब तो उगर ख़ां के होश उड़े और समय लाभ करने की इच्छा से संधि की बात-चीत आरंभ कर दी। इसी बीच में अवसर पाकर वहां से वह निकल भागा और अपने दूसरे क़िले कोटली में पनाह ली। महाराजा के वीर सरदारों, दीवान राम दयाल, फूला सिंह अकाली, और हरी सिंह ने राजौरी के क़िले पर अधिकार कर लिया। अब सिख सेना कोटली की ओर बढ़ी, और उगर ख़ां को भगा दिया। अतएव महाराजा का राजौरी के इलाक़े पर अधिकार हो गया। इस के बाद इसी प्रकार भंबर के क़िलों पर भी महाराजा का अधिकार हो गया, और दोनों पहाड़ी राजाओं को लाहौर में रहने की आज्ञा मिली।[1]

---

[1] इस संबंध में मुंशी सोहन लाल लिखते हैं कि क़िला कोटली पर अधिकार करने में एक राजपूत जागीरदार औरत मुसम्मात बीबी से महाराजा की सेना को बड़ी सहायता मिली—'उम्दतुल्तवारीख़', पृ० १८२

नूरपूर और जसवां का दमन—जनवरी सन १८१६ ई०

२८ दिसंबर सन् १८१५ ई० को महाराजा राजौरी के युद्ध से लौटा। इस युद्ध के बीच में महाराजा ने कई बार राजा बीर सिंह नूरपुरिया को उपस्थित होने के लिए लिखा लेकिन राजा टाल-मटोल करता रहा, क्योंकि उस ने बहुत समय से कर अदा नहीं किया था। अंत में, विवश हो कर जनवरी सन् १८१६ ई० में दरबार में उपस्थित हुआ और क्षमा चाही। अपने आप को नज़राने की भारी रक़म अदा कर सकने में असमर्थ प्रकट किया। महाराजा ने उसे अपनी रियासत को छोड़ देने को कहा। अतएव वह इस पर राज़ी हो गया। महाराजा ने उसे उचित जागीर प्रदान की और नूरपूर में सिक्खों का थाना स्थापित हो गया।

नूरपूर के बाद दूसरे पहाड़ी इलाक़ा जसवां की बारी आई। इस इलाक़े में दो-तीन मज़बूत क़िले थे, जिन पर बहुत दिनों से महाराजा की दृष्टि थी। अतएव राजा जसवां को भी नज़राने की रक़म न अदा कर सकने के कारण रियासत से अलग किया गया और उसे दस हज़ार की मालियत की जागीर प्रदान हुई।

काँगड़ा की घाटी पर महाराजा का पूर्ण अधिकार

धीरे-धीरे राजपूतों की संपूर्ण छोटी-छोटी रियासतें महाराजा के अधिकार में आ चुकी थीं। कुछ राजे नियमित रूप से कर देने वाले बन चुके थे। और कुछ के इलाक़े लाहौर सल्तनत में सम्मिलित किए जा चुके थे। क़िला काँगड़ा जो घाटी की नाक था महाराजा के अधिकार में पहले आ चुका था। राजा संसार चंद जो पहले अपने राज्य को विस्तार देने में उत्साह से लगा था, इस समय तक महाराजा रंजीतसिंह का करद बन चुका था।

इस प्रकार काँगड़ा की घाटी पर महाराजा का पूर्ण अधिकार जम गया।

बहावलपूर का दौरा—मार्च सन् १८१६ ई०

नवाब बहावलपूर वार्षिक नज़राना प्रस्तुत करने में सदा टाल-मटोल किया करता था। अतएव इस वर्ष महाराजा ने अपना ध्यान उस ओर दिया, और एक बड़ी सेना मिश्र दीवान चंद के नेतृत्व में, जो योग्यता में दीवान मुहकम चंद का स्थान ले रहा था, बहावलपूर की तरफ़ भेजी। सिख सेना के आने का हाल सुन कर नवाब ने अपने वकील सूबा राय और किशन दास द्वारा महाराजा के साथ पत्र-व्यवहार आरंभ कर दिया और नया प्रतिज्ञा-पत्र लिख दिया, जिस से ७० हज़ार रुपया सालाना कर-रूप में देना स्वीकार किया और उसी समय ८० हज़ार रुपया देने का वादा किया, जिसे वसूल करने के लिए विश्वस्त अफ़सर नियुक्त किए गए।

मुल्तान का घेरा

मिश्र दीवान चंद को आज्ञा मिली कि यहां से मुल्तान की तरफ़ कूच करो, और तलंबा मौज़े में पड़ाव करो। उस स्थल पर महाराजा भी उस से आ मिला। मुल्तान के नवाब का वकील मूल्यवान् उपहार ले कर महाराजा के पास पहुँचा। महाराजा ने कुल पिछली रक़म माँगी। जो एक लाख से कुछ अधिक थी। वकील ने तत्काल केवल चालीस हज़ार देने का वादा किया। महाराजा ने अपनी सेना को आगे बढ़ने की आज्ञा दी। मिश्र दीवान चंद ने अहमदाबाद के क़िले का घेरा डाल दिया, जिस पर ख़ालसा सेना ने अधिकार कर लिया।

इस के बाद तिरमू घाट पर चिनाब नदी पार कर के महाराजा ने सालारवां के निकट ख़ेमा डाला, और फ़ौज का एक टुकड़ा मुल्तान भेजा।

प्रसिद्ध अकाली सरदार फूला सिंह का निहंग सिपाहियों का दस्ता भी इस में सम्मिलित था। यह लोग नितांत निडर और योद्धा सिपाही थे। अतएव शहर के आस-पास लूट मार और नाश का बाज़ार गर्म हुआ। एक दिन जोश में आकर फूला सिंह के दस्ते ने नगर की दीवार पर धावा बोल दिया। नवाब ने संधि करना ही नीति के अनुकूल समझा। ८० हज़ार रुपया तुरंत दिया, और शेष दो मास के भीतर देने का वचन दिया।

मनकीरा इलाक़े का दौरा—अप्रैल सन् १८१९ ई०

मुलतान से छुट्टी पाकर महाराजा ने मनकीरा इलाक़े की ओर ध्यान दिया। अभी राजा की सेना मनकीरा पहुँची ही थी कि नवाब मुहम्मद ख़ां की अचानक मृत्यु हो गई। शेर मुहम्मद ख़ां ने नवाबी सँभाली। महाराजा ने उस के साथ कर के संबंध में बात-चीत की और बक़ाया मिला कर कुल एक लाख २० हज़ार रुपया माँगा। परंतु नवाब केवल बीस हज़ार देने को तैयार था और इस तरह महाराजा को टालना चाहता था। रंजीतसिंह के इशारे पर सेना ने गति आरंभ की। मनकीरा के इलाक़े में महमूदकोट, ख़ानगढ़, महमूदपूर, लिया, भक्कर इत्यादि बहुत से क़िले थे। ख़ालसा सेना ने महमूदकोट का घेरा डाल दिया और अपनी प्रबल तोपों की सहायता से क़िले की दीवार चलनी कर दी। फूला सिंह काली के निहंग दस्ते ने ख़ानपूर को तहस-नहस करना आरंभ किया। मई के साथ गर्मी का महीना आ चुका था। अतएव कर वसूल कर के महाराजा लाहौर वापस आया।

दोआबा चेनाब का दौरा—मई सन् १८१६ ई०

पंजाब का शेर तिरमूंघाट पर चेनाब नदी पार कर के झंग के इलाक़े में प्रविष्ट हुआ। झंग के शासक नवाब अहमद ख़ां सियाल ने महाराजा का

करद होना स्वीकार कर लिया था, और कई वर्ष तक लाहौर दरबार में कर भेजता भी रहा था। परंतु पिछले कुछ वर्षों से उस ने कुछ नहीं दिया था। महाराजा ने सब रुपया माँगा। नवाब ने अपनी असमर्थता प्रकट की। शेर पंजाब को वास्तव में मुलतान विजय करने की धुन लग रही थी। और वह इस उद्देश से अवसर ढूँढ रहा था। अतएव उस ने यह उचित समझा कि पहले मुलतान के आस-पास का इलाक़ा उस के अपने अधिकार में होना चाहिए, जिस में कि मुलतान प्राप्त करने में सुगमता रहे। अतएव नवाब अहमद खां को उस की रियासत से अलग कर के झंग का पूरा इलाक़ा जिस की वार्षिक आय लगभग ४ लाख थी लाहौर सल्तनत में मिला लिया।

ऊच और दायरा दीनपनाह

जब रंजीतसिंह झंग के मामलों में फँसा हुआ था तो सरदार फ़तेह सिंह अहलूवालिया ने ऊच इलाक़े की विजय के लिए प्रस्थान किया। और नवाब रजब अली शाह को परास्त कर के उस ने कोट और आस-पास के इलाक़े पर अधिकार कर लिया। ऊच के सज्जादानशीन को उचित जागीर लगा दी गई और वहां फ़तेह सिंह ने महाराजा का थाना स्थापित कर दिया। महाराजा अभी इस इलाक़े के प्रबंध से छुट्टी पाकर लाहौर लौटा ही था कि दायरा दीनपनाह का सरदार अब्दुस्समद खां, नवाब मुज़फ़्फ़र खां के हस्तक्षेप से तंग आकर, दीवान राम दयाल के साथ महाराजा के पास आया और शरणागत हुआ। महाराजा ने बड़े उत्साह से उस का स्वागत किया और मुबारक हवेली में जहां शुजाउल्मुल्क रहा करता था ठहराया। महाराजा चाहता था कि नवाब अब्दुस्समद खां उस के साथ रहे, क्योंकि महाराजा का ख़्याल था कि शायद मुलतान दमन करने में यह उपयोगी सिद्ध हो।

युवराज खड़क सिंह और भैया राम सिंह का बुलाया जाना

भैया राम सिंह युवराज खड़क सिंह का बचपन से ही शिक्षक था। महाराजा ने शाहज़ादा को जागीर प्रदान कर दी थी। और वह ज्यों-ज्यों बड़ा होता गया, उस की जागीर में भी वृद्धि होती गई। भैया राम सिंह युवराज को जागीर की देख-भाल किया करता था और वही नाज़िम समझा जाता था। राम सिंह युवराज के साथ हर दम रहने वाला मुसाहिब था। उसी लिए उस का कुँवर के साथ बहुत व्यवहार था। महाराजा को संदेह हो गया कि भैया राम सिंह अपने पद का अनुचित लाभ उठा रहा है। अतएव युवराज और उस के शिक्षक को एक दिन दरबार में बुलवाया और भैया राम सिंह से आय-व्यय का पूरा हिसाब माँगा। महाराजा ने कुँवर को झिड़क कर दरबार से बिदा किया और भैया राम सिंह को नज़रबंद कर दिया। उस का सर्राफ़ उत्तम चंद अमृतसर से बुलाया गया जिस के हिसाब-किताब से मालूम हुआ कि राम सिंह के निजी खाते में कुल ४ लाख रुपया नगर में जमा है, और उस के अतिरिक्त एक जवाहिरों की थैली १ लाख रुपए की उसी सर्राफ़ के पास मौजूद है। यह सब रुपया ज़ब्त कर लिया गया और राम सिंह अपने पद से अलग कर दिया गया।

युवराज खड़क सिंह का राजतिलक

नवरात्र के दिनों में, अक्तूबर सन् १८१६ ई० में, महाराजा रंजीत-सिंह ने बड़ी धूम-धाम से अपने बड़े बेटे युवराज खड़क सिंह का राजतिलक किया। महाराजा बड़ा होशियार था। वह अभी-अभी युवराज पर क्रुद्ध हुआ था, और उस के दीवान भैया राम सिंह को अलग कर दिया था। अत-एव रंजीतसिंह उसे प्रसन्न करना चाहता था। इस के अतिरिक्त उस को

यह भी इच्छा थी कि जहां तक जल्दी संभव हो युवराज पर राज्य का भार डाला जाय। अतएव कर्तव्यों के पालन की आदत डालने के लिए उसे जागीरें प्रदान की गई थीं, लेकिन रंजीतसिंह अधिक महत्त्वपूर्ण विषयों में उस का योग आवश्यक समझता था। अतएव अपने इस उद्देश्य से उसे युवराज का पद प्रदान किया गया। अनारकली के गुंबद के निकट खुले विस्तृत मैदान में ख़ेमे लगाए गए।[1] सभी अधिकारी-गण खूब तड़क-भड़क की पोशाकें पहने दरबार में उपस्थित हुए। युवराज की सेवा में भेंटें प्रस्तुत कीं, और तीसरे पहर के दरबार के समय युवराज को नियम-पूर्वक आज्ञाएं प्रचारित करने की नियुक्ति हुई।[2]

रामगढ़िया मिस्ल के अधीनस्थ इलाक़ों की प्राप्ति

सरदार जोध सिंह रामगढ़िया सितंबर सन् १८१५ ई० में मर चुका था। उस के उत्तराधिकार के लिए उस के उत्तराधिकारियों—दीवान सिंह, वीर सिंह और कर्म सिंह इत्यादि—में झगड़ा आरंभ हो गया। एक ने दूसरे पर हस्तक्षेप आरंभ किया व सरदार जोध सिंह की विधवा को भी तंग करने लगे। इस मिस्ल का अंत करने के लिए रंजीतसिंह को यह स्वर्ण अवसर प्राप्त हुआ। सब प्रतिस्पर्द्धियों को बुला कर लाहौर में नज़रबंद कर दिया और रामगढ़िया मिस्ल के विस्तृत इलाक़े को लाहौर राज्य में मिला लिया। इस की वार्षिक आय लगभग ४ लाख रुपए थी, और इस इलाक़े में एक

---

[1] इस मैदान में बाद में महाराजा के फ़्रांसीसी-जनरल वितूरा की सेना के लिए बारिकें बनाई गईं और आजकल यहां पर गवर्नमेंट सेक्रेटेरियट के दफ़्तर बने हुए हैं। देखिए मुंशी सोहन लाल की 'उम्दतुल्तवारीख़', दफ़्तर २, पृष्ठ १९२

[2] सैयद मुहम्मद लतीफ़ इस दरबार की तारीख़ ५ माघ लिखते हैं, और भाई प्रेम सिंह ने अपनी पुस्तक में इस की तारीख़ १ वैशाख अंकित की है।

सौ से अधिक क़िले थे। रामगढ़िया सेना लाहौरी सेना में मिला ली गई। जोध सिंह के उत्तराधिकारियों को ३० हज़ार की जागीर मिली।

सिख मिस्लों का अंत

पंजाब के शेर के असाधारण व्यक्तित्व का यह छोटा-सा उदाहरण है। महाराजा का उद्देश्य प्रथम सिख मिस्लों का अंत कर के सिख साम्राज्य स्थापित करने का था। इस में वह पूर्ण-रूप से सफल हुआ। सतलज पार हस्तक्षेप करने में वह विवश था लेकिन नदी के इस ओर अब कोई मिस्ल स्वतंत्र स्थिति न रखती थी। अहलूवालिया मिस्ल की सामर्थ्य से, सरदार फ़तेह सिंह को मैत्री के कारण वह पूर्ण रूप से लाभ उठा रहा था। कन्हैया मिस्ल की एक शाखा उस के अधिकार में आ चुकी थी। दूसरी शाखा उस की सास सदाकुँवर के अधिकार में थी परंतु व्यवहारिक दृष्टि से उस मिस्ल के संपूर्ण साधन महाराजा के अधिकार में थे। वह ख़ूब जानता था कि सदाकुँवर की मृत्यु के बाद वही उस इलाक़े का स्वामी होगा। अतएव वह वृद्धा रानी को उस के जीवन के अंतिम दिनों में तंग करना उचित न समझता था, और उसे ऐसा करने की कोई आवश्यकता भी न थी। क्योंकि वह उस मिस्ल के साधनों का जब चाहता व्यवहार कर सकता था। नकई मिस्ल के इलाक़े पहले ही प्राप्त हो चुके थे। इस के अतिरिक्त स्यालकोट, डस्का, शेख़ूपूरा, वज़ीराबाद, अकालगढ़ इत्यादि के सरदारों को वह पहले ही दमन कर चुका था, और उन्हें उचित जागीरें देकर उन की स्वतंत्रता नष्ट कर चुका था।

मठ टिवाना का आक्रमण

मिश्र दीवान चंद और सरदार दल सिंह को सन् १८१७ ई० में मठ

टिवाना के आक्रमण की आज्ञा हुई। अतएव सेना ने कुछ तोपख़ाने के साथ उधर को कूच किया परंतु टिवाना के सरदार अहमद यार ख़ां ने अपने आप को नूरपूर के सुदृढ़ क़िले में बंद कर लिया और मुक़ाबले के लिए तैयार हो गया। ख़ालसा सेना ने क़िले को घेर लिया। अहमद यार ख़ां वहां से बच निकला और मनकीरा इलाक़े में शरण ली। सरदार जोंद सिंह मोकल क़िले का थानेदार नियुक्त हुआ। अहमद यार ख़ां ने क़िला वापस लेने का प्रयत्न किया परंतु असफल रहा। महाराजा ने अहमद यार ख़ां को जागीरदार सरदार का पद प्रदान किया और साठ टिवाना सवार रखने के लिए उसे दस हज़ार रुपए की जागीर प्रदान की।

सरदार निहाल सिंह अटारीवाले का त्याग

सन् १८१७ ई० के ग्रीष्म ऋतु में एक बार महाराजा मौज़ा वनेकी में शिकार खेलने गया और वहां पर कुछ थोड़ी सी लापरवाही की वजह से बीमार हो गया। लाहौर में आकर बीमारी बढ़ गई। एक रोज़ अचानक महाराजा के जीवन के लिए अमीरों और सचिवों को भय उत्पन्न हो गया। सर लैपेल ग्रिफ़िन अपनी पुस्तक 'पंजाब चीफ़्स' में लिखते हैं कि अटारी-वाले वंश में यह कहावत प्रसिद्ध है कि जिस समय महाराजा की हालत चिंताजनक थी और अमीर लोग भयभीत हो रहे थे तो सरदार निहाल सिंह अटारीवाले ने वफ़ादारी और नमकहलाली की एक अनुपम मिसाल दिखाई। महाराजा के पलंग के चारों ओर तीन बार फिरा, सच्चे दिल से प्रार्थना की और ऊँचे स्वर से कहा कि मेरी शेष उम्र सिख राज की उन्नति के लिए महाराजा को मिले और उस का रोग मुझे मिल जाय। अतएव उस की प्रार्थना स्वीकृत हुई। महाराजा का रोग घटना आरंभ हुआ और सरदार

निहाल सिंह बीमार पड़ गया। कुछ दिन में रंजीतसिंह बिल्कुल अच्छा हो गया और सरदार निहाल सिंह इस संसार से बिदा हुआ।[1]

नवाब मनकीरा से संधि—सितंबर सन् १८१७ ई०

उस ज़माने में रंजीतसिंह का यह नियम था कि पड़ोसी सरदार या नवाब पर फ़ौज ले जाकर उन से भेंट वसूल करता और बाद में प्रति वर्ष उतने ही भेंट की आशा रखता। सरदार या नवाब यह ख़याल करता कि यह बला सिर से सदा के लिए टली। वह दूसरी बार भेंट भेजने का ध्यान भी मन में न लाता। उधर महाराजा दूसरी बार आक्रमण कर के अवसर मिलने पर उस के इलाक़े पर अधिकार कर लेने में भी संकोच न करता और सरदार या नवाब को उचित जागीर प्रदान कर देता। अतएव यह बात लिखी जा चुकी है कि नवाब मनकीरा से पिछले वर्ष पचास हज़ार रुपए भेंट में वसूल हुए थे। इस वर्ष फिर यह रक़म माँगी गई। नवाब के लिए इन शर्तों को स्वीकार करने के सिवा कोई उपाय न रहा। सत्तर हज़ार रुपए वार्षिक, दो अच्छे घोड़ों और ऊँटों सहित, देना स्वीकार किया।

भैया राम सिंह की क़ैद से मुक्ति

शाहज़ादा खड़क सिंह के शिक्षक भैया राम सिंह जो पिछले साल शाह-

---

[1] यह कहानी पढ़ कर हमें बाबर और हुमायूं वाला क़िस्सा याद आता है। जिस से हमारा तात्पर्य यह है कि ऐसी बातों में लोगों का विश्वास अवश्य था। हम नहीं कह सकते कि यह घटना कहां तक ठीक है क्योंकि 'उम्दतुल्तवारीख़' और 'ज़फ़र नामा रंजीतसिंह' में इस की कोई चर्चा नहीं आती। मुंशी सोहन लाल और दीवान अमर नाथ दोनों महाराजा की इस बीमारी का हाल लिखते हैं और दूसरी जगह सरदार निहाल सिंह की मृत्यु का हाल भी लिखते हैं। बलिदान के ऐसे ऊँचे उदाहरण का उन से छिपा रहना संभव न था।

ज़ादा का रुपया उड़ा देने के दंड में क़ैद किया गया था, इस वर्ष मुक्त कर दिया गया। ऐसे बीसों उदाहरण हैं कि महाराजा ने अपने अफ़सरों और अधिकारियों को दंड देकर बाद में क्षमा प्रदान किया। उस के दंड का उद्देश सुधार होता न कि कीना। महाराजा हाथ आए योग्य व्यक्ति को खोना न चाहता था पर उस की बुरी आदतें दूर कर के उस की सेवा से लाभ उठाना चाहता था। अतएव २७ अगस्त सन् १८२७ ई० को भैया राम सिंह को दर-बार में बुलाया, उसे मूल्यवान खिलअतें दीं। उस के मकान से चौकी और पहरा हटा लिया और उसे रामगढ़िया इलाक़े का नाज़िम नियुक्त किया।

हज़ारा का युद्ध

जिस दिन से महाराजा का अधिकार अटक और उस के आस-पास के इलाक़े पर हुआ था उसी दिन से हज़ारा का शासक मुहम्मद ख़ां पाँच हज़ार रुपए वार्षिक महाराजा को देता था, परंतु इस साल सरदार हुकमा सिंह चमनी क़िलेदार अटक ने मुहम्मद ख़ां से पाँच हज़ार के स्थान पर पचीस हज़ार रुपए माँगे। मुहम्मद ख़ां ने यह रक़म देने से इन्कार कर दिया, इस कारण मुहम्मद ख़ां से युद्ध आरंभ हो गया। लाहौर से सेना भेजी गई, जिस में फूला सिंह अकाली का प्रसिद्ध निहंग दस्ता भी सम्मिलित था। इस युद्ध में फूला सिंह ने बड़ी वीरता दिखाई। मुहम्मद ख़ां युद्ध में मारा गया। हज़ारा की सरदारी उस के पुत्र सैयद अहमद ख़ां को प्रदान की गई। वार्षिक भेंट की रक़म बढ़ा दी गई।

मुल्तान पर आक्रमण—सन् १८१७ ई०

सन् १८१७ ई० के आरंभ में महाराजा ने एक टुकड़ा सेना का मुल्तान नवाब से नज़राने का रुपया वसूल करने के उद्देश से भेजा। महाराजा यह

जानता था कि नवाब नज़राना अदा करने में होला-हवाला करेगा और बाद में सेना भेजी जायगी। महाराजा इस वर्ष मुल्तान विजय करने पर तुला हुआ था। अतएव ऐसा ही हुआ। पीछे से बहुत बड़ी सेना मुल्तान भेजी गई। और रसद व शस्त्र भेजने का पूरा इंतिज़ाम कर दिया गया। इस सेना ने मुल्तान शहर का घेरा डाल दिया, और नगर की रक्षा की दीवार पर गोलाबारी आरंभ कर दी। दीवार के दो-तीन बुर्ज भी गिरा डाले और उस में कई स्थलों पर दराज़ कर दिए। बराबर घेरा बना रहता तो मुल्तान जीता जाता। फ़ौज के नायकों की असावधानी से असफलता रही।[1]

सेना का प्रस्थान

परंतु महाराजा जिसे प्रकृति ने इतना बलशाली हृदय और दृढ़ निश्चय प्रदान किया था कब इन सरदारों के कारण हार मानने वाला था। वह इस बार मुल्तान विजय करने का निश्चय कर चुका था और कठिन से कठिन स्थितियों को सहन करने के लिए तैयार था। तुरंत उसने अपना सारा ध्यान मुल्तान की ओर देना आरंभ किया। २५ हज़ार नौजवानों की बलशाली सेना युवराज खड़क सिंह के नेतृत्व में भेजी। वास्तव में मिश्र दीवान चंद सेना के नेतृत्व में था। क्योंकि यह व्यक्ति फ़ौज-संबंधी सूक्ष्म बातों को भली भाँति समझता था। परंतु महाराजा को संदेह था कि कहीं उस के सिख सरदार दीवान चंद की अधीनता में काम करने में आपत्ति न करें। इसी लिए नेतृत्व प्रकट रूप से युवराज खड़क सिंह को दिया था।

[1] दीवान अमर नाथ 'ज़फ़रनामा रंजीतसिंह' में लिखते हैं कि दीवान भवानी दास ने, जो घेरे का नेता था, नवाब मुज़फ़्फ़र ख़ां से दस हज़ार रुपए घूस लेकर काम ख़राब कर दिया था।

महाराजा की तैयारियां

महाराजा स्वयं युद्ध की तैयारियों में उत्साह के साथ लगा हुआ था। अस्त्रादि तथा रसद युद्ध के लिए भेजने के हेतु रावी, चेनाब और झेलम नदियों के विभिन्न घाटों पर तमाम नावें विशेष कार्य के लिए सुरक्षित कर ली गईं थीं। उन पर सरकारी पहरेदार नियुक्त किए गए। इलाक़ों के कारिंदों के नाम ग़ल्ला और बारूद के लिए आवश्यकीय परवाने जारी कर दिए गए। बड़े-बड़े अफ़सर इस कार्य पर नियुक्त किए गए कि वह स्वयं युद्ध के सामान इकट्ठा कर के अपने निरीक्षण में नावों में भरवा कर मुल्तान भेजें। बड़ी अर्थात् भंगियों की तोप जिस में एक मन पक्के वज़न का गोला पड़ता था अमृतसर से मँगवा कर मुल्तान भेजी गई। फ़ौज के अपने बेलदारों के अतिरिक्त पाँच सौ अतिरिक्त बेलदार मोर्चा सजाने और सुरंगें खोदने के लिए मुल्तान भेजे गए। डाक भेजने का पक्का प्रबंध किया गया। सैकड़ों हरकारे थोड़ी-थोड़ी दूरी पर नियुक्त किए गए, जो मुल्तान की डाक दिन में कई बार लाहौर पहुँचाते थे। महाराजा स्वयं सेना-नायकों के लाभ के लिए विस्तृत आज्ञाएं भेजता रहता था। इस प्रकार महाराजा को प्रतिक्षण यह मालूम रहता था, कि मुल्तान के घेरे का क्या हाल है, और वहां किस प्रकार सहायता पहुँचाई जा सकती है।

मुल्तान का घेरा

महाराजा के निर्देश के अनुसार ख़ालसा सेना ने छोटी-सी लड़ाई के अनंतर नवाब के दो क़िलों, ख़ानगढ़ और मुज़फ़्फ़रगढ़, पर अपना अधिकार कर लिया और वहां से मुल्तान नगर की ओर मुँह किया, और शहर का घेरा डालने का प्रयत्न किया। मुल्तान का नवाब भी इस बार सामना करने

के लिए पूरी तरह से तैयार था। उस ने आस-पास के इलाक़े में अपने आदमी भेज कर ख़ूब धार्मिक जोश फैलाया और बीस हज़ार से अधिक ग़ाज़ी नवाब के झंडे के नीचे आकर जमा हो गए। इस के अतिरिक्त उस ने मुल्तान का दुर्ग भी ख़ूब दृढ़ कर लिया था। जब सिख सेना मुल्तान के निकट पहुँची तो नवाब सामना करने के लिए आया। बड़ा घमासान युद्ध हुआ। दिन भर की लड़ाई के बाद मैदान ख़ालसा के हाथ आया और नवाब अपने दल सहित शहर की चहारदीवारी के भीतर शरणागत हुआ।

दूसरे दिन दीवान मोती राम ने अपनी सेना के साथ शहर का घेरा डाल दिया। नवाब अपने बेटों सहित एक भारी सेना लिए हुए नगर को हर तरफ़ से बचाने के लिए तत्पर था। कई दिन तक दोनों फ़ौजों का सामना बना रहा। ख़ालसा ने शहर के चारों तरफ़ भिन्न स्थलों पर बारह मोर्चे गाड़ दिए और वहां से तोप, रहकलों, और गुब्बारों से शहर की दीवार पर गोलाबारी आरंभ की, जिस का परिणाम यह हुआ कि दीवार में दो स्थलों पर छोटे-छोटे दरारे हो गए। सिख जोश के साथ भीतर प्रवेश करने लगे, परंतु अफ़ग़ानों की गोलियों के सामने उन की कुछ न चली और उन्हें पीछे हटना पड़ा। इस के बाद दीवार के नीचे गड्ढे खुदवा कर उन में बारूद भर दी गई, जिस के धमाके से दीवार के एक-दो बुर्ज और ऊपर का भाग गिर गया। परंतु नवाब की सेना बड़े साहस से सामना करने पर डटी रही और किसी सिख को भीतर न प्रवेश करने दिया। अंत में कई दिनों के बाद एक दिन शहर पर गोलाबारी की गई और बड़ी रक्तपात की लड़ाई हुई जिस में नवाब को हारना पड़ा और उस ने क़िले में शरण ली।[1]

---

[1] गनेश दास पिंगल नामक तत्कालीन कवि ने हिंदी भाषा में मुल्तान के युद्ध का

क़िले का घेरा

सिखों ने अब क़िले के सामने मोर्चे लगा दिए, और क़िले की दीवार पर गोलाबारी आरंभ की। मुल्तान का क़िला अपनी दृढ़ता के लिए सुप्रसिद्ध था, और उस का पतन असंभव समझा जाता था। यह एक ऊँचे पुश्ते पर स्थित था और उस के नीचे गहरी और चौड़ी खाई थी, अतएव सिख तोपों का क़िले पर असर न हुआ। खालसा ने एक-दो बार धावा करने का यत्न किया। परंतु वह भी व्यर्थ सिद्ध हुआ। मार्च का सारा महीना इसी प्रकार व्यतीत हो गया परंतु अप्रैल के आरंभ में भंगियों वाली बड़ी तोप पहुँच गई, जिस से क़िले की दीवार में दो जगहों पर दरारे हो गए।

संधि की बातचीत

नवाब कुछ घबराया और संधि की बातचीत करने के लिए अपने वकील खड़क सिंह के पास भेजे। दो लाख रुपया नक़द भेंट करना चाहा और अपने बेटे के नेतृत्व में तीन सौ सवार महाराजा की सेवा में प्रस्तुत करने का वचन दिया। अतएव यह प्रस्ताव महाराजा के कानों तक पहुँचाया गया। रंजीतसिंह ने उत्तर में लिखा कि हमें तो क़िला लेना ही मंज़ूर है।

वर्णन विस्तार से किया है। इस की एक प्रति लेखक के निजी पुस्तकालय में है। वह लिखता है—

(१) सब सिंहनि मन कोप करि मुरचे लाये चौफेर।
छियापट ऊटाकरी, मुल्तान लियो बिच घेर।

(२) मोरचे लगाए, लड़े अति ही रिसाए, बड़े जोर सो उलाए, कहे तुर्क धियो मार के।
सरहिंगान सो चलावे, ताँ में दारू बहुत पावे, धूर कोट के उड़ावे, करें जुद्ध बल धार के।
तोपां सो चलाये, बड़े भीरे तह पाये, मारे तुर्क अरराय, कहे रहे लोहा सार के।

(३) साधू सिंह जो निहंग, तिन कीनो बड़ो जंग मारे तीर सो तोफ़ंग, करे ऐसे ही जुझार के।

यदि नवाब क़िला ख़ाली कर दे तो उसे उचित जागीर प्रदान की जायगी और उस के रहने के लिए उस का क़िला कोट शुजाआबाद दिया जायगा। अतएव यही समाचार नवाब को भेजा गया। नवाब ने अपनी स्वीकृत प्रकट की और जमीयत राय, सैयद मुहसन शाह, गुरु बख़्श राय, और अमीन ख़ां नामो वकीलों को नियमानुसार संधि के लिए शाहज़ादा के पास भेजा और प्रार्थना की कि कोट शुजाआबाद और क़िला ख़ानगढ़ उन के साथ के इलाक़ों सहित नवाब को गुज़ारे के लिए प्रदान किए जावें, तो क़िला मुल्तान और मुज़फ़्फ़रगढ़ महाराजा के अधीन कर दिए जायँगे। अतएव खड़क सिंह ने दीवान भवानी दास, पंजाब सिंह, क़ुतुबुद्दीन ख़ां और चौधरी क़ादिर बख़्श को नवाब मुज़फ़्फ़र ख़ां के साथ समझौता करने के लिए भेजा।

समझौते में अचानक परिवर्तन

जब इन सब बातों का समाचार महाराजा को लाहौर भेजा गया तो उस की ख़ुशी की कोई सीमा न रही। शहर में तोपों की सलामी सर हुई। रात को जगह-जगह पर रोशनी की गई।[1] परंतु जब समझौते का समय आया तो नवाब के सलाहकारों और भाई बंदों ने उस कायरता के कर्म पर उसे बुरा भला कहा। और कहा कि ऐसी दासता के जीवन से मृत्यु अच्छी है। साथ ही उस का हौसला बढ़ाया कि हम लड़ने मरने को तैयार हैं, और कहा कि सिखों की क्या मजाल है जो हमारे जीते जी क़िले पर अधिकार करें। अतएव नवाब ने क़िला ख़ाली करने से इन्कार कर दिया और महाराजा के

---

[1] भाग २, पृ० २१७, क़ादिर बख़्श और दीवान भवानी दास के नवाब के पास समझौते के लिए जाने के संबंध में गनेश दास अपने छंदों में लिखता है—

भवानी दास को भेजिए बड़ो सुजान वकील।
क़ादिर बख़्श भी साथ लेइं, पठइय कीन दलील।

वकील असफल वापस आए।[1]

क़िले की विजय

जब महाराजा को यह समाचार मिला तो उस ने तुरंत जमादार खुशहाल सिंह को मुल्तान भेजा और सेना के सरदारों से यह कहलाया कि यदि इतनी बड़ी सेना, युद्ध के सामान, और पूरी तैयारियों के होते हुए भी क़िला विजय न हो सका तो यह बात उन की प्रतिष्ठा के बिल्कुल विपरीत होगी और मेरे लिए लज्जा का कारण होगी। इस के अतिरिक्त ख़ालसा साम्राज्य पर बड़ा कलंक लगेगा। रंजीतसिंह का यह निर्देश पहुँचते ही खालसा सेना को बहुत जोश आया, और उस ने फिर घेरा डाल दिया। सिख सेना के दलों ने भिन्न-भिन्न ओर से आगे बढ़ना आरंभ किया और शत्रु की बरसती हुई आग को चीरते हुए क़िले की खाई के निकट जा पहुँचे, और वहां मोर्चे गाड़ दिए। इस जगह बहुत से सिख जवान मारे गए। अंत में तोपों और गुब्बारों की लगातार गोलाबारी के कारण क़िले के बाहरी दरवाज़े के साथ की दीवार में दो भारी दरारें हो गए। मगर बहादुर नवाब यहां शीघ्र ही आ पहुँचा और रेत से भरी हुई बोरियां चुनवा कर दरारों को भरवा दिया। परंतु बड़ी तोप के एक-दो गोलों के पड़ने पर यह बोरियां गिर गईं। ख़ालसा ने इस अवसर को हाथ से न जाने दिया। अकालियों का एक छोटा-सा दल अपने बहादुर सरदार साधो सिंह के नेतृत्व में आगे बढ़ा और खाई के

---

[1] लगभग सभी इतिहासकारों ने इस घटना को छिपाया है। देखिए 'उम्दतुत्तवारीख़' पृ० २१७। गनेश दास इस घटना की ओर संकेत करता है—

नहिं तो सुन भाई, युद्ध करायेंगे मचाई, सीना जोर चढ़ आई, सूर मारेंगे बटोर के।
मेरी तलवार धार, लागै जब एक बार, मरेंगे हज़ार सिंह, देखिए सजोर के।

पार हो कर दरार के निकट पहुँच गया।[१] साधो सिंह की ऐसी वीरता देख सेना के दल में बड़ा उत्साह उत्पन्न हुआ और सैकड़ों सिख नवयुवक दरार पर टूट पड़े। यह लोग क़िले के भीतर प्रवेश करने ही वाले थे कि बहादुर नवाब अपने बेटों और साथियों समेत मौक़े पर आ पहुँचा। तलवार नंगी कर के दरार पर खड़ा हो गया और ऐसी शूरता प्रदर्शित की कि वैरी भी चकित रह गए। युद्ध करता हुआ दो बेटों और एक भतीजे समेत वहीं मारा गया।

क़िले पर अधिकार

नवाब के हत होते ही ख़ालसा सेना क़िले के भीतर प्रविष्ट हुई, और उस ने क़िले पर अधिकार कर लिया। नवाब के छोटे बेटे सरफ़राज़ ख़ां और ज़ुल्फ़िक़ार ख़ां जीवित क़ैद कर के लाहौर लाए गए। महाराजा ने उन का आदर किया। उन्हें शरक़पूर की जागीर प्रदान की, जो बहुत दिनों तक उन के अधिकार में रही। इस विजय की ख़ुशी में महाराजा ने बहुत उत्सव मनाया। सरदार फ़तेह सिंह अहलूवालिया का दूत महाराजा के पास यह समाचार लाया था। महाराजा साहब ने उसे सोने के कड़ों की जोड़ी,

[१] भाई प्रेम सिंह ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि यह अकाली नेता साधो सिंह नहीं था वरन् प्रसिद्ध अकाली सरदार फूला सिंह था। साथ ही यह भी कहा है कि तमाम इतिहासकारों ने यह ग़लती की है। मेरी राय में भाई प्रेम सिंह ही भूल कर रहे हैं और दूसरे इतिहास-लेखक ठीक हैं। मुंशी सोहन लाल और दीवान अमर नाथ साधो सिंह का ही नाम लिखते हैं। हमें यह बात नितांत असंभव जान पड़ती है कि सोहन लाल और अमर नाथ जो दरबार के वाक़यानवीस थे किस प्रकार फूला सिंह जैसे प्रसिद्ध नेता के नाम के स्थान पर अपनी पुस्तक में साधो सिंह का नाम लिख देंगे। सच बात यह है कि इस बार फूला सिंह मुल्तान के युद्ध में सम्मिलित न था वरन् अटक की ओर नियुक्त था। हां, इस से पहले अवसर पर अवश्य फूला सिंह ने शूरता के चमत्कार दिखाए थे। गनेश दास भी इस संबंध में साधो सिंह के नाम की चर्चा करता है।

पाँच सौ रुपए नक़द और ख़िलअत प्रदान की, और साहब सिंह हरकारा को जो मुल्तान की डाक का प्रबंधक था छः सौ रुपए नक़द प्रदान किए। स्वयं हाथी पर सवार हो कर लाहौर के बाज़ार में चक्कर लगाया; रुपए-पैसे न्योछावर किए। नगर में रात के समय दीपमाला की गई।[1]

मुल्तान विजय की तिथि

मुल्तान विजय की तिथि मुंशी सोहन लाल ने इस प्रकार लिखी है—

दर हज़ार वहशत सद हिनहिताद व पंज।
फ़तेह शुद मुल्तान बाद अज़ सर्फ़ गंज।

गनेश दास ने अपने छंदों में इसे इस प्रकार समाप्त किया है—

जेठ सुदी एकादशी फ़तेह कियो मुल्तान।
समत आठ दस जानिए और पछत्तर मान।

क़िले की लूट

महाराजा जानता था कि क़िला मुल्तान में पठान बादशाहों के कई पीढ़ी के ख़ज़ाने गड़े हुए हैं, जिन में अगणित दुर्लभ वस्तुएं भी होंगी। वह नहीं चाहता था कि ऐसी अमूल्य वस्तुएं उस के सैनिक लूट कर नष्ट कर दें। उस की इच्छा थी कि मुल्तान की तमाम अमूल्य वस्तुएं रियासत के ख़ज़ाने में रक्खी जायँ। क्योंकि इन पर रियासत का ही अधिकार है। अतएव सेना के सरदारों के नाम कठोर आज्ञाएं प्रचारित कीं कि ख़ज़ाना और तोशाख़ाने की प्रत्येक वस्तु महाराजा या किसी सरदार या सिपाही की संपत्ति नहीं है, वरन् लाहौर साम्राज्य की निधि है, इस लिए कोई और व्यक्ति

---

[1] विस्तार के लिए देखिए 'उम्दतुल्तवारीख़', भाग २, पृ० २२०। गनेश दास भी इस सुख-संवाद को लगभग इसी प्रकार लिखता है।

किसी वस्तु को अपने निजी व्यवहार में न लावे। वरन् लूट का सब माल सुरक्षित रूप में लाहौर दरबार में पहुँचाया जावे। लेकिन फ़ौज के सिपाही अपने सरदारों की आज्ञा बिना क़िले में प्रविष्ट हो चुके थे और निर्द्वन्द्व होकर ख़ज़ाना और तोशाख़ाना पर लूट मार आरंभ कर दी थी। विजय के उल्लास में यह नौजवान किसी के वश में आने वाले न थे, और इसी कारण सिख सेना के सरदार कुछ परीशान थे। अंत में सब ने सलाह की कि तोशाख़ाने और ख़ज़ाने की रक्षा के लिए दीवान रामदयाल नियुक्त किया जाय।

दीवान राम दयाल २२ वर्ष का सुंदर जवान था। कश्मीर के आक्रमण में यही जवान वीर पठानों के सामने अकेला डटा रहा था। व्यक्तिगत योग्यता के अतिरिक्त दीवान मुहकम चंद का पोता होने के कारण प्रत्येक आदमी उस का आदर-सम्मान करता था। अतएव दीवान राम दयाल ने क़िले के सब दरवाज़े बंद करा कर उन पर कड़ा पहरा नियुक्त कर दिया और बड़े दरवाज़े पर स्वयं जा कर ठहरा। जो सिपाही बाहर निकलता उस की तलाशी ली जाती और समझा-बुझा कर लूट का सब माल वहीं रखवा लिया जाता। इसी प्रकार तमाम माल एकत्र हो गया जिसे लाहौर भेज दिया गया। इस लूट के माल में अगणित मुहरें, हीरे-जवाहरात, जड़ाऊ दस्तों वाली अमूल्य तलवारें, बंदूकें, क़ीमती दुशाले, शाल, क़ालीन और ग़लीचे महाराजा के तोशाख़ाने में आए। दीवान अमर नाथ के अनुमान के अनुसार इन का मूल्य लगभग दो लाख रुपए था। इस के अतिरिक्त बहुत से उत्तमोत्तम घोड़े, ऊँट, और पाँच बड़ी तोपें महाराजा के हाथ आईं। इसी प्रकार क़िला शुजाआबाद से भी लगभग २०,००० रुपए का माल हाथ आया।

मुल्तान का प्रबंध

तत्त्वण महाराजा ने मुल्तान में शांति स्थापित रखने के लिए छः सौ सिपाहियों का रिसाला क़िले में नियुक्त किया। उस की थानेदारी के लिए सरदार दल सिंह नहरीना सरदार जोध सिंह कलसिया और सरदार देवा सिंह दोआबिया नियुक्त किए गए। प्यादा फ़ौज की दो पलटनें क़िला शुजाआबाद में ठहराई गईं। तीस हज़ार रुपया क़िला और ख़ंदक़ की मरम्मत के लिए मंज़ूर हुआ।

यह प्रबंध कर के मिश्र दीवान चंद लाहौर आया। महाराजा ने उस की सेवाओं के उपलक्ष में ज़फ़रजंग बहादुर की उपाधि प्रदान की। मूल्यवान् सम्मानित ख़िलअतें दीं। अन्य सरदारों और अमीरों को, जिन्हों ने इस युद्ध में विशेष कार्य किए थे, महाराजा ने जी खोल कर इनाम इत्यादि दिए।



बारहवां अध्याय

कश्मीर और पश्चिमोत्तरी सूबों की विजय

(सन् १८१८–२२ ई०)

फ़ौजी दृष्टि-कोण से पेशावर का महत्व

इस से पूर्व इस की चर्चा की जा चुकी है कि क़िला अटक के आस-पास के इलाक़े पर महाराजा का थोड़ा बहुत अधिकार हो चुका था। परंतु यहां के पठान क़बीले अभी तक पूर्ण-रूप से दमन नहीं हुए थे। उन्हें काबुल और पेशावर के अफ़ग़ान शासकों से सदा सहायता की आशा रहती थी। महाराजा भी यह भली प्रकार जानता था कि जब तक पेशावर का इलाक़ा विजय न किया जायगा अमन-चैन से बैठना उस के भाग्य में नहीं है। क्योंकि पेशावर पश्चिमी आक्रमण-कारियों के लिए हिंद में प्रविष्ट होने का द्वार है। अतएव पेशावर पर सेना ले जाने के लिए वह अवसर की प्रतीक्षा में था, और यह महाराजा को शीघ्र हाथ आ गया।

पेशावर के लिए प्रस्थान

अमीर शाह महमूद के वज़ीर फ़तेह ख़ां बारकज़ई और शाह के बेटे कामरान में झगड़ा हो गया। कामरान ने कठोर यातना देकर वज़ीर को क़त्ल करवा दिया, जिस से अफ़ग़ानिस्तान में हलचल मच गई। महाराजा ने इस अवसर को उचित जान कर एक भारी सेना साथ ले कर अक्तूबर सन् १८१८ ई० में अटक की ओर प्रस्थान किया। रोहतास, रावलपिंडी और

हसन अब्दाल ठहरता हुआ हज़ारों के विस्तृत मैदान में ख़ेमा डाला। यहां से एक छोटा सा दल रास्ते की देख-भाल के लिए अटक पार रवाना किया। ख़तक क़बीले के पठानों को जब यह सारा हाल मालूम हुआ तो उन्हें बड़ा जोश आया। सरदार फ़ीरोज़ खां ख़तक के नेतृत्व में तुरंत सात हज़ार का दल इकट्ठा हो गया और यह लोग ख़ैराबाद की पहाड़ियों में मोर्चे लगा कर घाट में बैठ गए। जब ख़ालसा सेना का बेख़बर दल यहां से निकला तो आनन-फ़ानन पठान पहाड़ियों से निकल कर बिजली की तरह उन पर टूट पड़े और लगभग सारे दल को तलवार की घाट उतारा।

ख़तक की हार

जब शेर पंजाब को यह भयानक समाचार मिला तो क्रोध के मारे उस की आखों में खून उतर आया। फ़ौरन अटक का दमन करने की तैयारियां आरंभ कर दीं। महाराजा रावी, चेनाब और झेलम नदियों के अनुभवी मल्लाह अपने साथ लाया था। उन्हें तेज़ चाल वाली अटक नदी में पार लगने वाली जगह ढूंढने पर नियुक्त किया। मल्लाह शीघ्र ही सफल हो गए। फ़ौज का उत्साह बढ़ाने के उद्देश्य से महाराजा सब से पहले स्वयं जंगी हाथी पर सवार हो कर नदी की मँझधार में खड़ा हो गया।[1] और ख़ालसा सेना नदी के पार पहुँच गई। इसी बीच में पठान भी मौक़े पर आ पहुँचे और

---

[1] देखिए 'उम्दतुत्तवारीख़', भाग २, पृष्ठ २३६ और २३७। पंजाब में अभी तक यह कहावत प्रचलित है कि महाराजा ने अटक पार करते समय पहले अपनी ऊँची आवाज़ से यह पद पढ़ा—"जां के मन में अटक है, तां को अटक रहे।" और बाद में सोने की मुहरों का थाल नदी में भेंट किया। फिर अपना हाथी नदी में डाल दिया। नदी का पानी कई फ़ीट नीचे उतर गया और महाराजा की सेना नदी के पार हो गई। दीवान अमर नाथ ने भी 'ज़फ़रनामा रंजीतसिंह' में पृष्ठ ११९ पर इस की चर्चा की है।

घमासान युद्ध आरंभ हो गया। पठानों ने पहली बार जाना कि ख़ालसा वास्तव में बहादुरी में उन से बाज़ी ले जा सकते हैं। अतएव हज़ारों पठान खेत रहे शेष सिखों के घेरे में फँस गए। उन्हों ने जब देखा कि अब जान बचा कर भागना भी असंभव है तो तुरंत संधि का सफ़ेद झंडा ऊँचा किया, और महाराजा की अधीनता स्वीकार की। इस बार फिर सरदार फूला सिंह अकाली ने बड़ी वीरता दिखाई।

पेशावर की विजय

महाराजा ने क़िला ख़ैराबाद और क़िला जहाँगीरा में अपने थाने स्थापित करके आगे प्रस्थान किया। इसी बीच में दीवान शाम सिंह ने, जिसे महाराजा ने पेशावर की तरफ़ भेज रक्खा था, महाराजा के क़िला जहाँगीरा पर अधिकार होने का हाल सुन कर पेशावर ख़ाली करके हश्त नगर की तरफ़ चला गया। महाराजा ने सेना के आगे बढ़ने की आज्ञा दी, और शीघ्रता से कूच कर के पेशावर शहर में प्रविष्ट हो गया। शहर का उचित प्रबंध किया गया। मनादी कर के शहर में शांति स्थापित की। सरदार जहाँदाद ख़ां, जिस से महाराजा ने क़िला अटक लिया था, और जो उस समय जागीरदार के रूप में महाराजा के पास रहता था, पेशावर का गवर्नर नियुक्त किया गया। दो-चार दिन ठहर कर महाराजा अटक वापस आया।

दोस्त मुहम्मद ख़ां की धूर्तता

ज्यों ही शेर पंजाब पेशावर से अटक पहुँचा, दोस्त मुहम्मद ख़ां ने हश्त नगर से वापस आकर पेशावर पर अपना अधिकार जमा लिया। जहाँदाद ख़ां और दीवान शाम सिंह को वहां से निकाल दिया। मगर साथ ही अपने वकील दीवान दामोदर मल और हाफ़िज़ रूहुल्ला ख़ां को महाराजा

के पास अटक भेजे और प्रार्थना की कि यदि पेशावर का शासन आप की ओर से मुझे प्रदान किया जाय तो मैं आप का करद होकर रहूँगा और एक लाख रुपया साल लाहौर भेजता रहूँगा, व लाहौर दरबार की प्रत्येक आज्ञा का प्रसन्नता से पालन करूँगा। महाराजा ने समय का विचार कर यह शर्तें स्वीकार कर लीं, और दोस्त मुहम्मद खां करद शासक के रूप में पेशावर में रहने लगा। पेशावर के युद्ध में चौदह बड़ी तोपें, बहुत से घोड़े, मूल्यवान् वस्तुएं, और नक़द रुपए महाराजा के हाथ आए थे, जिसे साथ लेकर रंजीतसिंह बड़े समारोह के साथ, विजय-दुंदुभी बजाता हुआ लाहौर वापस आया।

पेशावर से युद्ध का महत्व

यद्यपि पेशावर-विजय यथार्थ में पेशावर-विजय नहीं कही जा सकती तो भी इस में तनिक संदेह नहीं कि यह सिख इतिहास का बड़ा महत्वपूर्ण युद्ध था। यदि हम पंजाब के पूर्व-इतिहास पर एक चलती दृष्टि डालें तो हमें इस विजय का महत्व तुरंत मालूम पड़ जायगा। इतिहास पढ़ने वालों को ज्ञात है कि ग्यारहवीं सदी के आरंभ में महमूद ग़ज़नवी ने राज जयपाल और उस के बेटे अनंगपाल को परास्त करके पेशावर और पंजाब पर अपना अधिकार जमा लिया था। तब से लेकर ८०० वर्ष तक बराबर पश्चिमोत्तर से आक्रमण-कारियों की बाढ़-सी हिंदुस्तान पर आती रही। शहाबुद्दीन ग़ोरी, अमीर तैमूर, नादिर शाह, और अहमद शाह अब्दाली इत्यादि ने हिंदुस्तान को जी खोल कर लूटा और लोगों पर वह अत्याचार किए जिन्हें याद कर के बदन के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इतने लंबे काल के अनंतर ख़ालसा की बलशाली सेना ने न केवल इस बाढ़ को रोक दिया

बल्कि उसे उतना पीछे हटा दिया जहां से आज तक यह वापस नहीं आया। निस्संदेह शेर पंजाब की इस महान विजय ने पंजाब का इतिहास ही बदल डाला। सरहद के बलिष्ट, दृढ़ और लड़ाके पठानों को पहली बार यह मालूम हुआ कि अब पंजाब में एक ऐसी जाति पैदा हो चुकी है जिस के हाथों उन का परास्त होना असंभव न होगा। जिस प्रकार अहमद शाह अब्दाली के नाम से पंजाबी भयभीत होते थे, उसी प्रकार ख़ालसा के बहादुर जनरल हरीसिंह नलुवा के नाम से अब पेशावर की गलियों में पठान थर्राने लगे। वहां अब तक हरीसिंह का नाम हव्वा खयाल किया जाता है।

पंडित बीरदर का आगमन

यह बताया जा चुका है कि वज़ीर फ़तेह खां के क़त्ल किए जाने पर पर दुर्रानी राज्य में अव्यवस्था फैल रही थी। अतएव उस से लाभ उठाने के उद्देश्य से कश्मीर के शासक मुहम्मद अज़ीम खां ने एक बड़ी सेना ले कर काबुल के लिए प्रस्थान किया। और अपने छोटे भाई जब्बार खां को कश्मीर का गवर्नर नियुक्त कर के छोड़ दिया। जब्बार खां बड़ा अत्याचारी मनुष्य था। विशेष कर अपनी हिंदू प्रजा को बड़ा दुःख पहुँचाता। इसी वजह से उस के माल-विभाग का वज़ीर पंडित बीरदर अवसर पा कर जान बचाने की इच्छा से कश्मीर छोड़ कर भाग निकला और महाराजा के यहां लाहौर में शरणागत हुआ। रंजीतसिंह ने पंडित बीरदर का बहुत आदर-सत्कार किया और पंडित ने महाराजा को कश्मीर के संबंध में हर प्रकार की जानकारी प्राप्त कराई विशेष कर रक्षा के स्थलों पर फ़ौजी बल की सूचना दी और कश्मीर विजय करने में महाराजा को सहायता देने का वचन दिया।

कश्मीर पर चढ़ाई की तैयारियां

महाराजा बहुत समय से कश्मीर विजय करने का इच्छुक था। अतएव, १८१६ ई० के आरंभ में कश्मीर पर चढ़ाई की तैयारियां आरंभ हुईं। मई महीने के आरंभ में एक बड़ी सेना वज़ीराबाद में एकत्र हुई जो तीन बड़े भागों में विभक्त की गई। एक दल मिश्र दीवान चंद, जफ़र जंग और सरदार शाम सिंह अटारीवाले के नेतृत्व में, दूसरा जत्था युवराज खड़क सिंह के अधीन भेजा गया। तीसरा भाग स्वयं महाराजा की सरदारी में परिशिष्ट सेना के रूप में वज़ीराबाद ठहरा, जिस में आवश्यकता पड़ने पर ताज़ा दम सेना प्रस्तुत की जा सके। रसद भेजने और युद्ध के सामान के ढेर वज़ीराबाद में जमा किए गए, और उन को पहुँचाने का प्रबंध महाराजा ने स्वयं अपने हाथों में लिया।

कश्मीर की यात्रा

पूरी सेना का नेतृत्व शहज़ादा खड़क सिंह को दिया गया। इस अवसर पर महाराजा ने सुल्तान ख़ां, भंबर-नरेश को, जो सात साल से महाराजा के पास नज़रबंद था मुक्त कर दिया और अपनी सेना के साथ कश्मीर के युद्ध पर भेजा। इस ने महाराजा की बहुत लाभप्रद सेवाएं कीं। यह दोनों दल भंबर के इलाक़े से हो कर राजोरी पहुँचे। मिश्र दीवान चंद ने अपना भारी तोपख़ाना भंबर में छोड़ा। केवल हल्की तोपें अपने साथ रक्खीं। राजौरी का हाकिम राजा उगर ख़ां[1] कुछ समय से अपने पुराने संधि-पत्र के विरुद्ध कई अनुपयुक्त कार्य कर चुका था। इस कारण उस के इलाक़े को घेर लिया गया। जब उगर ख़ां ने ख़ालसा सेना का इतना बल देखा तो

[1] सैयद मुहम्मद लतीफ़ ने भूल से उस का नाम अज़ीज़ ख़ां लिखा है।

वह रात्रि के अंधकार में अवसर पाकर भाग निकला। दूसरे दिन उस का भाई रहीमुल्ला ख़ां अपने अहलकारों सहित सिख सेना में उपस्थित हुआ।[1] और ख़ालसा सेना के पथ-प्रदर्शन के लिए अपनी सेवा प्रस्तुत की। युवराज खड़क सिंह ने रहीमुल्ला ख़ां को महाराजा के पास वज़ीराबाद भेज दिया। रंजीतसिंह ने उस का उत्साह-पूर्वक स्वागत किया। एक हाथी सुनहरी हौदा सहित और एक घोड़ा सोने के साज़ सहित और मूल्यवान् ख़िलअत प्रदान की, और राजोरी का हाकिम नियुक्त कर के उसे मित्र बना लिया।

अब राजोरी से दोनों दल मिल कर आगे की तरफ़ बढ़े। बाढ़ इत्यादि के कारण रास्ते बहुत ख़राब थे, इस लिए भारी बोझ और फ़ालतू सामान यहां छोड़ना पड़ा। घुड़सवारों ने घोड़े भी छोड़ दिए और पैदल कूच आरंभ की। सीधी सड़क छोड़ कर पहाड़ी पगडंडियों की राह प्रस्थान किया। शहज़ादा खड़क सिंह वाला दल पोशाना से होता हुआ बहरामगल्ला पहुँच गया। यहां पर भंबर-नरेश सुल्तान ख़ां के समझाने पर क़िला सपीन के थानेदार ने ख़ालसा की अधीनता स्वीकार कर ली। युवराज ने उसे ख़िल-अत प्रदान कर के उस का आदर किया। यहां युवराज को मालूम हुआ कि ज़बर्दस्त ख़ां, पोंछ का हाकिम, बहुत सी सेना एकत्र करके युद्ध की तैया-रियां कर रहा है। अतएव उसे सीधा रास्ता छोड़ कर पेचीदा मार्ग ग्रहण करने की आवश्यकता हुई। ज़बर्दस्त ख़ां ने आस-पास के समस्त दर्रों और रास्तों में वृक्ष और पत्थर भरवा कर उन्हें दुर्गम बना दिया था। परंतु युव-राज के दल ने उस पर धावा बोल दिया और एक छोटी-सी लड़ाई के

---

[1] सैयद मुहम्मद लतीफ़ ने रूहुल्ला ख़ां को अज़ीज़ ख़ां का बेटा लिखा है। हम ने इस विषय में मुंशी सोहन लाल और दीवान अमर नाथ का समर्थन किया है।

अनंतर सब दर्रे अपने अधिकार में कर लिए। ज़बर्दस्त खां ने आधीनता स्वीकार की। इस युद्ध में भंबर वाले सुल्तान खां ने ख़ालसा को बहुत सहायता पहुँचाई और रंजीतसिंह की नीति अपना फल लाई।[1]

रंजीतसिंह की उपस्थिति

इस बीच में महाराजा स्वयं अपने दल सहित गुजरात, भंबर और राजौरी होता हुआ शाहाबाद आ पहुँचा। रास्ते में विभिन्न स्थलों पर ढेर जमा करने के लिए गोदामघर स्थापित करता गया। थोड़ी-थोड़ी दूरी पर हरकारे नियुक्त किए, जो प्रतिदिन के समाचार महाराजा को पहुँचाते थे। अब दो दस्ते पीर पंजाल की पहाड़ियों को अधिकार में रखने के लिए भिन्न-भिन्न मार्गों से चले, और दस हज़ार सिपाहियों का एक दल महाराजा ने पीछे से सहायता के रूप में भेजा जो मिश्र दीवानचंद को पीर पंजाल पर आ मिला[2]। यहां सिखों और पठानों के बीच एक घोर युद्ध हुआ जिस में खालसा जीते। अब यह दोनों दल इन कठिन घाटियों को पार करते हुए सराय आलियाबाद में आ मिले।

जब्बार खां की हार

यहां उन्हें समाचार मिला कि जब्बार खां बारह हज़ार अफ़ग़ानी फ़ौज के साथ रास्ता रोके पड़ा है। अतएव यहां डेरे डाल दिए गए। कुछ दिन आराम करने के अनंतर २१ हाड़, अर्थात् ३ जूलाई के सवेरे ख़ालसा ने अचानक वैरियों पर धावा बोल दिया। जब अफ़ग़ानी सेना ख़ालसा की

---

[1] यह वही सुल्तान खां है जो सात वर्ष की क़ैद के बाद मुक्त किया गया था।

[2] मिश्र दीवानचंद कोहधराल के रास्ते गया था—जिस राह से जाकर युवराज ने कश्मीर विजय किया था। देखिए 'उम्दतुलतवारीख़', भाग २, पृ० २५६

तोपों के मार में आ गई तो सिखों ने ऐसी गोलाबारी की कि मानों प्रलय आ गया। परंतु जब्बार खां की अफ़ग़ान सेना ने भी जान तोड़ कर सामना किया। अतएव एक बार ख़ालसा सेना को थोड़ी दूर पीछे हटना पड़ा और उन की एक दो तोपें वैरी के हाथ लगीं। इतने में अकाली फूलासिंह का साहसी निहंग दल मौक़े पर आ उपस्थित हुआ। जो 'अकाल! अकाल!' का घोष करता हुआ एक दम वैरी पर टूट पड़ा और तलवार के वह दाँव चले कि आन की आन में सैकड़ों अफ़ग़ान मौत के घाट उतारे गए। ख़ालसा तोपचियों के दूसरी बार पैर जम गए और जब्बार ख़ां को मैदान छोड़ कर भागना पड़ा। अफ़ग़ान अपना सारा जंगी सामान रसद के ढेर और अगणित घोड़े मैदान में छोड़ गए जो सब ख़ालसा के हाथ आए।

श्रीनगर की विजय

इस युद्ध में अफ़ग़ानों की बड़ी भारी क्षति हुई। जब्बार ख़ां बुरी तरह घायल हुआ। बड़ी कठिनाई से जान बचा कर भागा, और भंबर की पहाड़ियों से होता हुआ अफ़ग़ानिस्तान चला गया। ख़ालसा ने क़िला शेरगढ़ और दूसरी चौकियों पर अधिकार कर लिया। २२ हाड़, तदनुसार ४ जुलाई १८१९ ई० को ख़ालसा सेना बड़ी धूम-धाम के साथ श्रीनगर में प्रविष्ट हुई। मिश्र दीवानचंद की सलाह के अनुसार युवराज खड़क सिंह ने अपनी फ़ौज को आज्ञा दी कि शहर में किसी को त्रास न दिया जाय और लोगों के आश्वासन के लिए इस बात का ढिंढोरा भी पिटवा दिया।[1]

शेर पंजाब का वापस आना

इस विशाल विजय का समाचार महाराजा को शाहाबाद में मिला।

[1] 'ज़फ़रनामा रंजीतसिंह', पृ० १३२

संपूर्ण ख़ालसा सेना में 'बाह गुरू जी की फ़तेह' का घोष होने लगा जिसे सुन कर महाराजा बहुत प्रसन्न हुआ। स्वयं हाथी पर सवार हो कर सेना के पड़ाव पर चक्कर लगाया और धन लुटाया। फिर लाहौर की ओर कूच किया। यहां से होकर अमृतसर पहुँचा। असंख्य सोना-चाँदी दर्बार साहब की सेवा में भेंट किया और विजय के आनंद में बड़ा उत्साह और समारोह मनाया गया। तीन दिन तक सारे शहर में दीपमाला होती रही। बाज़ार सजाए गए और महाराजा की ख़ुशी में रियाया ने भी जी खोल कर भाग लिया। लाहौर से वापस आने पर लोगों ने भी ख़ुशी मनाई। महाराजा ने भी बहुत जी खोल कर हज़ारों रुपए ग़रीबों में बाँटे।

कश्मीर का शासन-प्रबंध

यद्यपि कश्मीर की राजधानी श्रीनगर पर महाराजा का अधिकार स्थापित हो गया था परंतु पहाड़ी इलाक़े में कई दुर्गम स्थलों पर अभी तक ऐसे क़िले मौजूद थे जहां अफ़ग़ानों के थाने स्थापित थे। अतएव उन्हें विजय करने के लिए लाहौर वापस आने से पूर्व ही महाराजा आज्ञाएं प्रचारित कर चुका था, और राजौरी के निकट क़िला अज़ीमगढ़ को स्वयं विजय कर चुका था। अतएव दीवान राम दयाल को अपनी सेना सहित भंबर में ठहरने की आज्ञा मिली। भैया रामसिंह दर्रा थना के निकट नियुक्त हुआ जिस में वह माद व अन्य स्थलों को अपनी अधीनता में ला सके। मिश्र दीवान चंद, सरदार शामसिंह अटारीवाला और सरदार ज्वाला सिंह भड़ानिया बारहमूला और श्रीनगर में नियुक्त किए गए। फ़क़ीर अज़ीज़ुद्दीन विशेष कार्य पर नियुक्त कर के कश्मीर भेजा गया कि वह स्वयं देखे हुए हाल महाराजा की सेवा में भेजे। दीवान मोती राम कश्मीर का गवर्नर

नियुक्त हुआ और उस की अधीनता में लगभग २०,००० सेना सूबा कश्मीर की रक्षा के लिए नियुक्त हुई। पंडित बीरदर को उस की मूल्य-वान् सेवा के उपलक्ष में बड़ी जागीर प्रदान हुई। और ९३ लाख रुपए (कश्मीरी सिक्का) के बराबर का इजारा उसे दिया गया।[1] मिश्र दीवान चंद को मुल्तान की जंग में ज़फ़रजंग की उपाधि मिल चुकी थी। अब फ़तह व नसरत नसीब की उच्च उपाधि भी प्रदान की गई और पचास हज़ार की जागीर प्रदान की गई।[2]

मुल्तान और बहावलपूर का दौरा

कश्मीर की लड़ाई से छुट्टी पाकर महाराजा ने अपना ध्यान पश्चिमी पंजाब की ओर फेरा और सेना का एक दल लेकर उधर का दौरा आरंभ किया। पहले पिंडी भटियां में पड़ाव किया और वहां के उद्दंड ज़मीदारों को यथोचित दंड दिया। वहां से चेनाब नदी के रास्ते, नाव पर सवार हो कर चंधीवट पहुँचा। फिर मुल्तान में डेरा डाला। यह बात याद रखने योग्य है कि ऐसे दौरे में महाराजा बड़े-बड़े क़स्बों में सदा दरबार किया करता था, जिस में इलाक़े के प्रमुख ज़मीदार, मुक़द्दम और क़स्बों के चौधरी, पंच और धनी लोग सम्मिलित होते थे। स्थानीय प्रश्नों के संबंध में महाराजा उन की रायों को ध्यान-पूर्वक सुनता था। और उस का आदर करता था

[1] मुंशी सोहन लाल ने कश्मीर की कुल आय का अंदाजा ६९ लाख रुपए किया है। दीवान अमर नाथ का अंदाज़ा भी लगभग इतना ही है। ५३ लाख के अतिरिक्त १० लाख शालदाग़ की आमदनी थी जिस का इजारा जवाहरमल को दिया गया। दीवान अमर नाथ भिन्न द्वारों से कुछ लाख रुपए की और आय का वर्णन करता है।

[2] विस्तार के लिए देखिए 'उम्दतुत्तवारीख़' भाग २, पृ० २६१ और 'ज़फ़रनामा-रंजीतसिंह', पृ० १३२

अतएव इस बार मुल्तान के दौरे में महाराजा को मालूम हुआ कि वहां के शासक शाम सिंह पेशावरी से प्रजा बहुत दुखी है और उस ने, कुछ सरकारी रुपया भी अनुचित प्रकार से हज़म कर लिया है। अतएव महाराजा ने उसे पदच्युत कर के कुछ काल के लिए नज़रबंद कर दिया।

कश्मीरा सिंह व मुल्ताना सिंह का जन्म

महाराजा को इस दौरे में ही यह समाचार प्राप्त हुआ कि उस की दो रानियों रतन कुँवर और दया कुँवर के यहां स्यालकोट में दो बेटे उत्पन्न हुए हैं। अतएव इस ख़ुशी में बड़े जलसे किए गए। चूँकि हाल ही में महाराजा ने कश्मीर और मुल्तान के दो बड़े सूबे विजय किए थे इस लिए इस की स्मृति में राजकुमारों के नाम कश्मीरा सिंह और मुल्ताना सिंह रक्खे और उन के जन्म-स्थान स्यालकोट में दीपावली की गई।

क़दम जमाने वाली नीति

रंजीतसिंह की यह प्रबल इच्छा थी कि पश्चिमोत्तर के सीमांत सूबे को विजय करे, अतएव दुर्रानी साम्राज्य की कमज़ोरी से लाभ उठा कर महाराजा रंजीतसिंह ने पेशावर विजय करने का प्रयत्न किया, परंतु अंत में सरदार दोस्त मुहम्मद ख़ां को अपना करद सूबेदार बना कर वह लौट आया था। इसी खलबली के बीच शाह शुजा ने भी काबुल की गद्दी प्राप्त करने के लिए अपना भाग्य-निर्णय करना चाहा। लुधियाने से चल कर पेशावर पहुँचा, और उसे अपने अधिकार में लाना चाहा। परंतु दोस्त मुहम्मद ख़ां और मुहम्मद अज़ीम खां ने मिल कर उसे हराया। यह वहां से भाग कर डेरा ग़ाज़ी ख़ां पहुँचा, जहां के हाकिम ज़मा ख़ां ने उसे बहुत मदद पहुँचाई। परंतु शाह शुजा के भाग्य में दूसरी बार ताज नहीं लिखा

था। उसे कोई सफलता न प्राप्त हुई, और वह डेरा ग़ाज़ी ख़ां छोड़ कर सिंध के अमीरों के यहां शरणागत हुआ।

अब महाराजा ने यह आवश्यक समझा कि डेरा ग़ाज़ी ख़ां को अपने साम्राज्य में मिला लिया जाय। क्योंकि यहां का सूबेदार अभी तक अपने आप को काबुल का मातहत समझता था। अतएव मुलतान से जमादार ख़ुशहाल सिंह के नेतृत्व में फ़ौज का एक दल उस ओर भेजा। इस ने एक साधारण युद्ध के अनंतर ज़मा ख़ां को निकाल दिया और स्वयं डेरा ग़ाज़ी ख़ां पर अधिकारी हो गया। चूँकि यह सूबा लाहौर की राजधानी से दूर था और महाराजा सरहदी सूबे में केवल क़दम जमाना चाहता था, इस लिए तीन लाख रुपए साल पर सूबा भावलपूर के नवाब के सिपुर्द कर दिया।

हज़ारों का विद्रोह

हज़ारा का बहुत-सा भाग सूबा कश्मीर में सम्मिलित था। जब सिखों ने कश्मीर की घाटी विजय की तो यहां के सरदारों और जागीरदारों को भय हुआ कि उन्हें भी सिख गवर्नर की अधीनता करनी पड़ेगी। अतएव उन्हों ने शोर करना आरंभ किया। महाराजा कश्मीर की घाटी में अपना राज्य सुदृढ़ करने में लगा हुआ था, इस लिए कुछ काल तक समय व्यतीत करता रहा, परंतु जब विद्रोह ने ज़ोर पकड़ा तो विद्रोही सरदारों के दमन के लिए बड़ी सेना हज़ारा की तरफ़ भेजी, जिस का नेतृत्व राजकुमार शेर सिंह के हाथों में था। उस की सहायता तथा नेतृत्व के लिए सरदार फ़तेह सिंह अहलूवालिया, सरदार शाम सिंह अटारीवाला और दीवान राम दयाल जैसे बहादुर, सचेत और प्रतिष्ठित अफ़सर नियुक्त किए। शहज़ादा शेर सिंह की नानी अर्थात रानी सदा कुँवर भी अपने दल के साथ उन के साथ चलो।

विद्रोहियों का दमन

यह बात वर्णन करने योग्य है कि विद्रोह किसी विशेष जगह तक सीमित न था, परंतु सारे इलाक़े में फैला हुआ था। पखली, धमतोड़, तरबेला इत्यादि इलाकों के सब ज़मींदार युद्ध के लिए प्रस्तुत थे। इस लिए ख़ालसा सेना ने एक जगह न कर के कई जगह युद्ध जारी रखना उचित समझा। एक स्थान पर दिन भर घमासान लड़ाई होती रही। जब शाम हुई तो दीवान राम दयाल और सरदार शाम सिंह के दल जो सवेरे से वैरी का सामना करने में लगे हुए थे, तनिक पीछे हटे और इस ज़ोर से धावा किया कि वैरी की सेना भाग निकली।

दीवान राम दयाल की मृत्यु

दीवान राम दयाल, जो उस समय पूरा नौजवान था और जवानी के जोश में मतवाला था, वैरी का पीछा करने निकला, और अफ़ग़ानों को मारता भगाता हुआ एक पहाड़ी नाले तक जा पहुँचा। अचानक उस समय ज़ोर की आँधी आ गई, और दीवान राम दयाल बेबस हो गया। यकायक पास की पहाड़ियों से पठानों ने गोलाबारी आरंभ कर दी, जिस की मार से बहुत से ख़ालसा नौजवान काम आए। एक गोली दीवान राम दयाल के भी लगी और वह वहीं मर गया। यह जान कर ख़ालसा सेना सन्नाटे में आ गई, और वैरी से बदला लेने के लिए बढ़ी। पठानों पर ऐसे उत्साह से आक्रमण किया गया कि हज़ारों को मिट्टी में मिला कर दिल का ग़ुबार निकाला।

हज़ारा का इलाक़ा तो विजय हो गया और वहां के विद्रोही सरदारों ने अधीनता भी स्वीकार कर ली, परंतु महाराजा को दीवान राम दयाल जैसे होनहार जनरल के वध होने का बड़ा रंज हुआ। महाराजा को

आशा थी कि यह युवक समय पाकर अपने दादा दीवान मुहकम चंद की तरह नाम पैदा करेगा। राम दयाल के पिता दीवान मोती राम को भी अपने होनहार और युवक पुत्र की मृत्यु का इतना भारी आघात पहुँचा कि वह संसार से विरक्त हो गया। कश्मीर की सूबेदारी से मुक्त किए जाने की प्रार्थना-की जिसे महाराजा ने अस्वीकार किया। परंतु उस की निरंतर और प्रबल कोशिश के बाद एक लंबी छुट्टी दे दी। दीवान मोती राम काशी अर्थात् बनारस पहुँचा और साधुओं का जीवन व्यतीत करने लगा। उस के स्थान पर सरदार हरी सिंह नलुआ कश्मीर का सूबेदार नियुक्त हुआ। हज़ारा के इलाक़े का यथोचित प्रबंध करने के लिए महाराजा ने दीवान कृपा राम और सरदार फ़तेह सिंह अहलूवालिया के नेतृत्व में चार दृढ़ क़िले ग़ाज़ीगढ़, तरबेला, दरबंद और गंदगढ़ में बनवाने आरंभ किए।

विलयम मोरक्राफ्ट

इसी वर्ष अर्थात् मई १८२० ई० में प्रसिद्ध यात्री मोरक्राफ़्ट लाहौर आया। यह ईस्ट इंडिया कंपनी के घोड़ों का दारोग़ा था और कंपनी के वास्ते घोड़े ख़रीदने के लिए तुर्किस्तान जा रहा था। महाराजा ने उसे शालामार की बारहदरी में ठहराया।[1] उस का बड़ा आवभगत किया। एक सौ रुपया रोज़ाना उस के आतिथ्य के लिए नियत कर दिया। विलियम मोरक्राफ़्ट महाराजा से भेंट करने का सौभाग्य प्राप्त करने के लिए बहुधा दरबार में

[1] इस बारादरी की दीवार में एक पत्थर लगा हुआ है, जो इस घटना की स्मृति दिलाता है। उस पर अंग्रेज़ी भाषा में यह शब्द अंकित है—"इस बारादरी में, जो महाराजा रंजीतसिंह ने बनवाई प्रसिद्ध यात्री मोरक्राफ़्ट मई सन् १८२० ई० में ठहरा, जब वह तुर्किस्तान (जहां वह सन् १८२५ ई० में मर गया) जाता हुआ महाराजा का अतिथि रहा।"

जाता। उस ने महाराजा के अस्तबल का भी निरीक्षण किया और अप यात्रा-विवरण में वह लिखता है कि महाराजा के अस्तबल में बहुत से बढ़िया और अलभ्य घोड़े थे।

रानी सदा कुँवर की नज़रबंदी—अक्तूबर सन् १८२१ ई०

रानी सदा कुँवर का नाती कुँवर शेर सिंह आयु में अच्छा बड़ा हो चुका था, और महाराजा यह चाहता था कि रानी उस के लिए अपने कन्हैया मिस्ल के इलाक़ों में से पर्याप्त जागीर दे, परंतु इस के लिए वह कदापि तैयार न थी। अतएव रंजीतसिंह और उस की सास में अनबन हो गई। मामला बढ़ते-बढ़ते बहुत बढ़ गया, और रानी सदा कुँवर सतलज पार जा कर अंग्रेज़ों से शरण प्राप्त करने के प्रयत्न में लगी, क्योंकि रानी सदा कुँवर के कुछ इलाक़े, जैसे फ़ीरोज़पूर, वधनी इत्यादि सतलज पार स्थित थे।[1] महाराजा बड़ा बुद्धिमान और नेक था। अतएव रानी को प्रसन्न करने वाले तथा शांति चाहने वाले पत्र लिख कर उसे लाहौर बुला लिया और नज़रबंद कर दिया। रानी एक बार अवसर पाकर फिर भाग निकली। परंतु अभी लाहौर से थोड़ी दूर ही गई थी कि गिरफ़्तार होकर वापस आई।

कन्हैया मिस्ल के इलाक़े पर अधिकार

अब महाराजा को यह संदेह हो गया कि रानी फिर अवसर पाकर अंग्रेज़ों की शरण में चली जायगी। अतएव उस ने इस भय को तत्काल नष्ट करना आवश्यक जान कर मिश्र दीवान चंद और अटारीवाले सरदारों के नेतृत्व में सेना भेजी और रानी सदा कुँवर के संपूर्ण इलाक़ों पर जो सतलज के इस ओर स्थित थे अधिकार कर लिया। सरदार जय सिंह कन्हैया

[1] 'ज़फ़रनामा रंजीतसिंह', पृ० १४८

के समय की जमा की हुई सारी दौलत, तोशाख़ाना और शस्त्रागार महा-राजा के हाथ आए। बटाला क़स्बा कुँवर शेर सिंह को जागीर रूप में प्रदान किया गया, और शेष इलाक़ा सरदार वीसा सिंह की सूबेदारी में सूबा काँगड़ा में सम्मिलित किया गया। रानी सदा कुँवर शेष आयु के लिए ला-हौर के क़िले में नज़रबंद कर दी गई।

रानी सदा कुँवर

हिंदुस्तान की गर्ववृद्धि करने वाली स्त्रियों में रानी सदा कुँवर का स्थान ऊँचा है। उस का अस्तित्व ख़ालसा इतिहास में प्रायः, और विशेष कर रंजीतसिंह के उदय में, स्मृतियोग्य है। इस महिला ने लगातार तीस साल तक पंजाब देश के इतिहास में विशेष भाग लिया। इसी की सहायता से रंजीतसिंह ने अपने पिता के समय के दीवान से अपनी मिस्ल का प्रबंध अपने हाथों में लिया। उस की सहायता से रंजीतसिंह ने लाहौर पर अधि-कार किया। बाद में भी यह बुद्धिमती महिला रंजीतसिंह को सब तरह से सहायता देती रही। बड़े-बड़े नामवर जनरलों के साथ-साथ युद्ध स्थल में लड़ना इस के लिए साधारण काम था। अपनी रियासत का प्रबंध ऐसी पटुता से करती कि साम्राज्य के प्रतिष्ठित लोग ईर्षा करते। रंजीतसिंह के उदय के निमित्त तो रानी सदा कुँवर ज़ीने की पहली सीढ़ी की भाँति थी जिस के द्वारा वह अंतिम चोटी पर पहुँच कर पंजाब में ख़ालसा साम्राज्य स्थापित करने में सफल हुआ।

मनकीरा तथा डेरा इस्माइल खां की विजय—सन् १८२१ ई०

जब ख़ालसा सेना के कुछ दस्ते रानी सदा कुँवर के इलाक़ों पर अधि-कार जमाने के लिए भेजे गए, तभी महाराजा स्वयं एक दल ले कर मनकीरा

का इलाक़ा विजय करने की इच्छा से उस ओर रवाना हुआ। एक-एक मंज़िल आराम से पार करता हुआ अक्तूबर महीने के आरंभ में झेलम नदी पार कर के महाराजा ख़ुशाब पहुँचा और वहां से उस ने सीधे मौज़ा कुंदयाल की तरफ़ कूच किया। इस बीच में मिश्र दीवान चंद भी रानी सदा कुँवर वाले युद्ध से निवृत्त हो कर अपनी सेना समेत महाराजा से आ मिला, व सरदार हरी सिंह नलुआ जो दीवान मोती राम के छुट्टी से वापस आने पर कश्मीर की सूबेदारी से छुट्टी पा चुका था महाराजा से आ मिला। सारी सेना कुंदयाल से चल कर नवाब हाफ़िज़ अहमद ख़ां के इलाक़े में प्रविष्ट हुई, और भक्कर के क़िले का घेरा डाल दिया। यहां रंजीतसिंह ने अपना स्थायी थाना बना लिया। यहां से रंजीतसिंह ने सेना का एक दल, सरदार दल सिंह और जमादार खुशहाल सिंह के नेतृत्व में डेरा इस्माइल ख़ां की ओर रवाना किया। नवाब के गवर्नर दीवान मानिक राय ने सामना किया परंतु हार गया, और क़िला महाराजा को सौंप दिया। दूसरे दस्ते ने इलाक़ा ख़ानगढ़ और मौंजगढ़ इत्यादि के क़िले शीघ्र ही विजय कर लिए। अब तमाम सेना नवाब की राजधानी मनकीरा की तरफ़ बढ़ी। यह क़िला रेगिस्तानी इलाक़े में स्थित था जहां पानी की कमी थी। इस लिए खालसा सेना बहुत तंग हुई। परंतु रंजीतसिंह ने हज़ारों बेलदार लगा कर दो-तीन दिन में ही पानी प्राप्त कर लिया।[1]

क़िले का घेरा डाल दिया गया और मोर्चे लगा कर ख़ालसा सेना ने गोलाबारी आरंभ कर दी। नवाब भी युद्ध के लिए तैयार था। पंद्रह रोज़ तक सामना करता रहा, परंतु जब उस के कई अफ़सर महाराजा से आ

[1] 'ज़फ़रनामा रंजीतसिंह', पृ० १५०

मिले तो उस का हौसला टूट गया और अधीनता स्वीकार करने के लिए तैयार हो गया।[1] महाराजा ने नवाब की शर्तें स्वीकार कर लीं। डेरा इस्माइल ख़ां उसे जागीर रूप में और रहने के लिए प्रदान किया और उसे अपने साथियों और माल-असबाब सहित बिना हस्तक्षेप के मनक़ीरा क़िले से बाहर आने की आज्ञा दे दी। महाराजा ने बड़े आदर का व्यवहार किया। अपने ख़ेमे में उस से भेंट की। असबाब ढोने का सामान एकत्र कर के नवाब को सिंध नदी के पार भेज दिया और नवाब का इलाक़ा जिस की मालियत १० लाख के क़रीब थी लाहौर के साम्राज्य में सम्मिलित किया।

कुँवर नौनिहाल सिंह का जन्म—१४ फागुन, सं० १८७८ वि०

२३ फ़रवरी सन् १८२२ को युवराज खड़क सिंह के यहां पुत्र उत्पन्न हुआ जिस का नाम नौनिहाल सिंह रक्खा गया। उस समय महाराजा की ओर से बड़ी ख़ुशी मनाई गई, और हज़ारों रुपए दीन-दुखियों को ख़ैरात किए गए।

जनरल विंटुरा और एलार्ड लाहौर में—सन् १८२२ ई०

जनरल विंटुरा और एलार्ड १८२२ के मई महीने में लाहौर में आए। विंटुरा इटली का और एलार्ड फ्रांस का निवासी था। यह दोनों व्यक्ति जगत्प्रसिद्ध जनरल नैपोलियन बोनापार्ट की सेना में अच्छे पदों पर नियुक्त थे। वाटरलू की लड़ाई में यूरोप की सम्मिलित शक्तियों ने नैपोलियन को परास्त कर के क़ैद कर लिया था, जिस के कारण फ्रांस के सैकड़ों नवयुवकों को जीविका की खोज में जगह-जगह मारा-मारा फिरना पड़ा था। अतएव यह अफ़सर भी पठानों के वेष में ईरान और अफ़ग़ानिस्तान होते हुए लाहौर

[1] 'उम्दतुत्तवारीख़', दफ़्तर २, पृ० २९१

पहुँचे। कुछ टूटी-फूटी फ़ारसी भाषा बोल सकते थे। यह फ़क़ीर अजीज़ुद्दीन द्वारा दरबार में पहुँचे। महाराजा ने इन की ख़ूब आव-भगत की और अनार-कली के प्रसिद्ध बुर्ज में उन के निवास का प्रबंध किया।[1] कुछ दिनों के बाद उन्हों ने महाराजा की सेवा में नौकरी के लिए प्रार्थना की। महाराजा ने इस प्रश्न को विचारणीय जान कर विचाराधीन रक्खा। उसे संदेह था कि केवल नौकरी की खोज में यह नौजवान इतनी दूर की भयावह यात्रा, क्यों कर सकते थे। परंतु जब उसे विश्वास हो गया तो उन्हें पचीस सौ रुपए महीने पर नौकर रख लिया। विंटूरा पैदल सेना में और एलार्ड सवार सेना में जनरल नियुक्त हुआ। उन का कर्तव्य सिख सेना को यूरोपीय रीति पर क़वायद सिखाना था।

नौकरी की शर्तें

इन दोनों अफ़सरों और बाद में जितने अंग्रेज़ या फ़्रांसीसी अफ़सर महाराज की नौकरी में आए उन सब के लिए निम्नलिखित शर्तें स्वीकार करना और उन पर अमल करने के लिए हस्ताक्षर करना आवश्यक था। (१) यदि कभी सिख सेना को यूरोप की किसी शक्ति का सामना करने की आवश्यकता उपस्थित हो तो उन्हें सिख शासन का राजभक्त अधि-कारी रह कर लड़ना पड़ेगा। (२) लाहौर दरबार की आज्ञा के बिना उन्हें किसी यूरोपीय शासन से सीधे पत्र-व्यवहार करने का कोई अधिकार न रहे-गा। (३) उन्हें दाढ़ी रखनी पड़ेगी और उसे मुँडवाने की मनाही होगी। (४) किसी को गाय का मांस खाने की आज्ञा न होगी। (५) तंबाकू पीना बिलकुल मना होगा। यदि संभव हो तो हिंदुस्तानी औरत के साथ विवाह

[1] यहां आज कल पंजाब गवर्नमेंट का रेकार्ड आफ़िस है।

करना होगा।

मियां किशोर सिंह की गद्दी

मियां किशोर सिंह जम्मू-नरेश राजा रंजीतदेव के वंश में था, जो सन् १८१२ ई० में रियासत जम्मू के विजय होने पर महाराजा की सेवा में प्रविष्ट हुआ। उस के दो सुंदर और युवक बेटे, गुलाब सिंह और ध्यान सिंह, कुछ काल पूर्व महाराजा की सवारी फ़ौज में भरती हो चुके थे। इन राजपूत सिपाहियों ने महाराजा के दरबार में धीरे-धीरे वह आदर प्राप्त किया जिस का वर्णन अब जगह-जगह पर आएगा। सन् १८२० ई० में महाराजा ने उन की सेवाओं के उपलक्ष में जम्मू का प्रदेश जो उन का खानदानी अधिकार था उन्हें जागीर में प्रदान कर दिया। उन के पिता मियां किशोर सिंह को राजा की पदवी दे कर जम्मू के प्रबंध के लिए नियुक्त कर दिया, और वहां के शासन तथा प्रबंध के लिए उसे बहुत विस्तृत अधिकार प्रदान किया।[1]

[1] विशेष हाल जानने के लिए देखिए—'उम्दतुल्तवारीख़', पृ० १८२



तेरहवां अध्याय

पेशावर विजय की पूर्ति

(सन् १८२३–१८३१ ई० तक)

बदले की इच्छा

इस से पूर्व इस बात का वर्णन हो चुका है कि सरदार यार मुहम्मद ख़ां, पेशावर के शासक ने महाराजा रंजीतसिंह की अधीनता स्वीकार कर ली थी, और प्रतिवर्ष लाहौर दरबार में भारी कर भेजने का वादा कर लिया था। यार मुहम्मद का भाई मुहम्मद अज़ीम ख़ां, काबुल का वज़ीर था और बारकज़ई क़बीले का नेता समझा जाता था। उसे यह बात कदापि सह्य न थी कि उस के वंश का कोई आदमी सिखों के आधीन हो। अतएव पेशावर-विजय का ध्यान उस के दिल में काँटे की तरह खटक रहा था। इस के अतिरिक्त उन्हीं दिनों महाराजा रंजीतसिंह ने उस के दूसरे भाई जब्बार ख़ां से कश्मीर का उर्बर और स्वर्गतुल्य सूबा छीन लिया था, और उस के तीसरे भाई जहाँदार ख़ां से कुछ समय पूर्व महाराजा क़िला अटक ले चुका था। अतएव बदले की प्रबल इच्छा स्वाभाविक रूप से अज़ीम ख़ां के हृदय में उठ रही थी, और रंजीतसिंह के साथ एक बार युद्ध में निपट लेने के अवसर की प्रतीक्षा में था।

पेशावर की कूच

यह अवसर उसे शीघ्र ही मिल गया। दिसंबर सन् १८२३ ई० में

महाराजा ने यार मुहम्मद ख़ां से कर माँगा। पेशावर के सूबेदार ने कुछ उत्तम घोड़े लाहौर दरबार में भेज दिए, यद्यपि इन में वह ख़ास घोड़ा न था जिस के प्राप्त करने के लिए महाराजा ने इच्छा प्रकट की थी।[1] मुहम्मद अज़ीम ख़ां को अपने भाई का यह आचरण पसंद न आया। अतएव उस ने एक बलशाली सेना लेकर काबुल से पेशावर की तरफ़ कूच किया। यार मुहम्मद ख़ां ने अपने भाई के संकेत पर बहाना बना कर कि वह अफ़ग़ानी सेना रोकने की सामर्थ्य नहीं रखता पेशावर ख़ाली कर दिया और यूसुफ़ज़ई के पहाड़ों में जा छिपा।[2]

धर्मयुद्ध या जिहाद की विज्ञप्ति

मुहम्मद अज़ीम ख़ां ने बिना किसी रोक-टोक के पेशावर पर अधिकार कर लिया और सिखों के विरुद्ध धर्म-युद्ध की विज्ञप्ति कर के जिहाद की आज्ञा दे दी। सैकड़ों मौलवी, मुल्ला, और वायज़ इस की घोषणा करने के लिए आस-पास के इलाक़ों में भेजे गए जिस का परिणाम यह हुआ कि पठानों के झुंड के झुंड मुहम्मद अज़ीम ख़ां के झंडे तले जमा होने लगे और कुछ ही दिनों में २५ हज़ार के क़रीब ग़ाज़ी इकट्ठे हो गए, जिस से मुहम्मद अज़ीम ख़ां का उत्साह दूना बढ़ गया।

रंजीतसिंह की तैयारी

इधर रंजीतसिंह भी अचेत न था। उसे यह सारे समाचार प्रति क्षण मिल रहे थे, अतएव उस ने तुरंत दो हज़ार सवारों का दल शहज़ादा शेर

---

[1] इस घोड़े के विषय में, 'ज़फ़रनामा रंजीतसिंह' में 'अस्प ईरानी सद कर्दा दफ़्तार' लिखा है—पृष्ठ १५३

[2] यार मुहम्मह ख़ां महाराजा रंजीतसिंह की ओर से पेशावर का सूबेदार था।

सिंह और दीवान कृपा राम के नेतृत्व में अफ़ग़ानों की रोक-थाम के लिए भेजा। उस के बाद फ़ौज का एक और दल सरदार हरी सिंह नलुवा के नेतृत्व में शहज़ादा की सहायता के लिए भेजा। फिर स्वयं अकाली फूला सिंह, सरदार दीसा सिंह मजीठिया, सरदार फ़तेह सिंह अहलूवालिया इत्यादि के साथ ख़ालसा सेना का एक प्रबल दल लेकर एक-एक मंज़िल पड़ाव करता हुआ अटक के निकट पहुँच गया।

क़िला जहाँगीरा पर अधिकार

महाराजा के पहुँचने से पहले ही राजकुमार शेर सिंह और सरदार हरी सिंह नलुवा नावों का पुल बना कर अटक नदी पार कर चुके थे। उन्हों ने जहाँगीरा क़िले का घेरा डाल दिया, और छोटी सी लड़ाई के बाद क़िले पर अधिकार कर लिया और अपना थाना स्थापित कर लिया। अफ़ग़ान क़िलेदार वहां से भाग निकला।

मुहम्मद अज़ीम ख़ां जो अभी तक पेशावर में ठहरा था जहाँगीरा क़िले पर महाराजा का अधिकार हो जाने का समाचार सुन कर तुरंत चौंक उठा। वहां से कूच करके नौशेरा के निकट पहुँच गया और दोस्त मुहम्मद ख़ां और जब्बार ख़ां के नेतृत्व में ग़ाज़ियों का एक दल सिक्खों के मुक़ाबले के लिए भेजा। क़िला जहाँगीरा के निकट दोनों पक्ष में ज़ोर शोर की लड़ाई आरंभ हुई। मुहम्मद ज़मां ख़ां ने अवसर पाकर अटक का पुल नदी में बहा दिया जिस में नदी पार से महाराजा की सेना न पहुँच जाय।

महाराजा का नदी पार करना

पंजाब का शेर ऐसी कठिनाइयों पर कहां ध्यान करने वाला था? अतएव नदी के किनारे डेरे डाल दिए और नए सिरे से पुल बनाना आरंभ

हुआ। उसी समय एक जासूस नदी पार से समाचार लाया कि ख़ालसा सेना ग़ाज़ियों की टिड्डी दल सेना के कारण उन के वश में आ चुकी है। यदि इस समय सेना न पहुँची तो हानि पहुँचने का भय है। यह समाचार सुनते ही ख़ालसा सेना में हलचल मच गई। उसी समय नावों का पुल बनाना असंभव था, इस लिए रंजीतसिंह ने अपनी सेना को तैर कर नदी पार करने की आज्ञा दी। स्वयं एक घोड़े पर सवार हो कर चुने हुए सरदारों के सहित द्रुतगामिनी अटक नदी में कूद पड़ा। ख़ालसा सेना जीवन तथा माल की थोड़ी सी हानि उठा कर नदी पार हो गई। ख़ालसा सेना के नदी पार पहुँचने का समाचार सुन पठान बहुत घबराए और मैदान छोड़ कर भाग गए। नौशेरा में जा कर पड़ाव किया और घोर युद्ध की तैयारियों में लग गए। महाराजा ने जहाँगीरा के क़िले में अपने डेरे डाल दिए। फिर इसे और क़िला ख़ैराबाद को सुदृढ़ कर के शेर पंजाब ने अकोड़ा के मैदान में ख़ेमे लगाए, और कई जासूस नौशेरा तथा पेशावर की तरफ़ भेजे जिस में वह वैरी की तैयारियों का समाचार लावें।

सरदार जय सिंह अटारीवाले का पछतावा

उसी रात सरदार जय सिंह अटारीवाला महाराजा से मिला। उक्त सरदार सन् १८२१ ई० में एक षड्यंत्र के संदेह में अपराधी ठहराया गया था। इस लिए वह पंजाब से भाग कर काबुल में बारकज़ाइयों से आ मिला था, और उन दिनों अज़ीम ख़ां के साथ, अपने सवारों सहित पेशावर आया हुआ था। धार्मिक युद्ध होते देख कर पंथ के प्रेम ने उस के हृदय में जोश मारा, और ख़ालसा सेना में आ मिला। महाराजा ने उसे क्षमा प्रदान की

और उस के पूर्व पद पर उसे नियुक्त कर दिया।[1]

पठानों से युद्ध

महाराजा अभी अकोड़ा के मैदान में ठहरा हुआ था कि जासूस ग़ाज़ियों की बड़ी वेग से बढ़ती संख्या का समाचार लाए। अगले दिन मुहम्मद अज़ीम ख़ां भी अपनी सेना लेकर लंडा नदी पार कर के उन से मिलने वाला था। महाराजा यह जानता था कि अज़ीम ख़ां के आने पर सामना करना अधिक कठिन हो जायगा। अतएव महाराजा ने अपने सरदारों से परामर्श किया। संध्या हो चुकी थी इस लिए सरदारों ने दूसरे दिन युद्ध करने की राय दी। परंतु जनरल विंटुरा ने महाराजा को स्पष्ट रूप से विश्वास दिलाया कि तत्क्षण युद्ध आरंभ कर देना ही उचित होगा।[2] अतएव युद्ध की तैयारियां आरंभ हुईं, और सिख सेना तीन दलों में विभक्त की गई। पहला दल जिस में आठ सौ सवार और सात सौ पैदल सिख थे अकाली फूला सिंह के नेतृत्व में वैरियों पर एक विशेष ओर से आक्रमण करने के लिए नियुक्त हुआ। दूसरा दल जिस में जागीरदारों के एक हज़ार सवार और पैदल पलटनें थीं सरदार दीसा सिंह मजीठिया और सरदार फ़तेह सिंह अहलूवालिया के नेतृत्व में दूसरी ओर से धावा करने के लिए तैयार किया गया। तीसरा दल दो हज़ार सवारों और आठ पैदल पलटनों का था। उस

---

[1] पंडित गनेश दास जिस ने मुल्तान-विजय का पद्य में वर्णन किया है और जिस का वर्णन पहले आ चुका है पेशावर-विजय का भी वर्णन सरल हिंदी पद्यों में करता है। इस संबंध में वह लिखता है—

म्लेछन का संग त्याग के आइयों सिंहन ज्वान।

[2] विस्तार के लिए देखिए—'उम्दतुल्तवारीख़', भाग २, पृष्ट २०४

का नेतृत्व कुँवर खड़क सिंह, सरदार हरी सिंह नलुवा, जनरल एलार्ड और जनरल विंटूरा के हाथ में था। यह दल इस कार्य पर नियुक्त हुआ कि मुहम्मद अज़ीम खां को लंडा नदी पार कर के ग़ाज़ियों के साथ सम्मिलित होने से रोके। शेष सब सवार और प्यादे महाराजा साहब के साथ रहे, जिस में जिधर भी सहायता की आवश्यकता हो ताज़ा दम सेना पहुँचाई जाय।

महाराजा की तत्परता

यदि पठान इस युद्ध को धार्मिक रंग देकर जिहादी लड़ाई बना बैठे थे तो महाराजा भी इसे धर्मयुद्ध से कम नहीं समझता था। वह दुनिया के सब कामों को भुला कर केवल युद्ध में जी-जान से तत्पर था, और वह पूर्ण रीति से यह सिद्ध करना चाहता था कि शेर पंजाब और उस की सेना धार्मिक जोश और सैनिक योग्यता में पठानों से तनिक भी कम नहीं थी। जिस समय कूच का बिगुल बजा महाराजा स्वयं घोड़े पर सवार और नंगी चमकती हुई तलवार लेकर ऊँची जगह पर खड़ा हो गया। फ़ौज के दल एक-एक कर के उस के सामने से 'सत श्री अकाल' के उत्साह भरे घोष करते हुए निकलते थे। महाराजा भी उन का उत्साह बढ़ाने के लिए गरजती हुई आवाज़ से उत्तर देता था।

अकाली फूला सिंह का काम आना

यकायक दोनों सेनाएं आमने-सामने हुईं। पठान और सिख जंगली शेरों की तरह से एक दूसरे पर बफर कर आ पड़े। बड़ा घमासान युद्ध रहा। सदा की भाँति अकाली फूला सिंह का अकाली जत्था पहले-पहल ग़ाज़ियों के सामने हुआ था। अचानक सरदार फूला सिंह और उस के घोड़े को दो गोलियां लगीं, जिस से घोड़ा तो तुरंत मर गया परंतु बहादुर फूला

सिंह घावों की परवा न कर के हाथी पर सवार हो कर आगे बढ़ता गया। अपने अंतिम समय में उस ने शूरता के वह हाथ दिखाए कि पठान भय से काँप उठे। ग़ाज़ियों ने फूला सिंह को अपना निशाना बना रक्खा था। हर एक पठान उसे ही मारना चाहता था। अतएव वैरी की संपूर्ण सेना ने एक ओर से सरदार फूला सिंह के हाथी पर चाँदमारी आरंभ कर दी। एक-एक करके कई गोलियां इस बहादुर अकाली को लगीं जिस से वह तुरंत युद्ध-स्थल में मारा गया। महाराजा को सरदार फूला सिंह के मरने का बड़ा ही रंज हुआ।[1]

ग़ाज़ियों की घोर हार

इस वीर की मृत्यु पर ख़ालसा सेना को बड़ा जोश आया। ग़ाज़ियों पर उस ने बड़े ज़ोर से आक्रमण किया, परंतु पठानों ने भी सामना करने में कोई कसर उठा न रक्खा। सैकड़ों बहादुर सिख नौजवान और अफ़सर इस जंग में काम आए। अंत में पठानों के पैर उखड़ गए, और वह मैदान छोड़ कर भागने लगे। मुहम्मद अज़ीम खां नदी के पार यह सब कुछ देख रहा था, परंतु उस के लिए नदी पार करना बड़ा कठिन था, क्योंकि उस के ठीक सामने के किनारे पर महाराजा का भारी तोपख़ाना और सेना जनरल

---

[1] गनेश दास लिखता है—

फूला सिंह को मार के, भये प्रसन्न पठान।
सब सिंहन के जियत ही, मर्यो बड़ो बलवान॥
फूला सिंह जब मार्यो, सुनी खबर सरकार।
ऐसो सिंह महाबली, बिरला हम दरबार॥

अकाली फूला सिंह का शव बड़े आदर-पूर्वक जलाया गया और इस बहादुर सरदार की स्मृति बनाए रखने के लिए महाराजा ने वहां ही उस की समाधि बनवाई।

विंटूरा और सरदार हरी सिंह नलुवा के नेतृत्व में डटी हुई थी, और वह अपनी भारी तोपों से गोलों की ऐसी मूसलाधार वर्षा कर रही थी कि मुहम्मद अज़ीम खां के लिए एक पग आगे बढ़ना कठिन था। जब मुहम्मद अज़ीम खां को ग़ाजियों के भागने की खबर मिली तो उस की रही-सही उम्मीदों पर भी पानी फिर गया। वहां से भाग कर मोचनी में दम लिया और आगे के लिए पेशावर पर शासन पाने से ऐसा हताश हुआ कि काबुल पहुँचने से पहले ही रास्ते में मर गया।

विजय का प्रभाव

सिख सेना ने भागते हुए पठानों का पीछा किया और उन के ख़ेमें, तोपें, घोड़े और ऊँट सब के सब उन के हाथ आए। यद्यपि इस युद्ध[1] में खालसा सेना की बहुत हानि हुई परंतु इस शानदार विजय का सरहद पर ऐसा प्रभाव हुआ कि जमरूद से मालाकंद और बनीर से खटक तक का संपूर्ण इलाक़ा खालसा के अधिकार में आ गया, और पठानों के हृदयों पर उन का ऐसा रोब-दाब पहुँचा कि वह अब तक नहीं गया।

महाराजा का पेशावर में प्रवेश

महाराजा ने हश्तनगर के क़िले पर अधिकार कर लिया। १७ मार्च को धूमधाम के साथ पेशावर में प्रविष्ट हुआ[1]। महाराजा की आज्ञा से नगर में ढिँढोरा पिटा कि किसी प्रकार की लूट मार न की जायगी। प्रजा ने महाराजा का सोत्साह स्वागत किया, और अमीरों ने भेंटें प्रस्तुत कीं।

---

[1] गनेश दास यह तिथि इस प्रकार वर्णित करता है—

समत आठ दस जानिए और उनासी मान।
चैत मास सुभ दिन भयो, पेशोर जीत हठ ठान॥

इस के कुछ दिनों बाद यार मुहम्मद खां और दोस्त मुहम्मद खां दोनों भाई महाराजा के पास पेशावर में आए और स्पष्ट रूप से अधीनता स्वीकार कर के उन्हों ने पचास घोड़े, जिन में प्रसिद्ध घोड़ा गौहरबार भी था, अन्य मूल्यवान् भेंटों सहित प्रस्तुत किए और अपनी ग़लती के लिए क्षमा माँगी, पेशावर का शासन पाने की प्रार्थना की, और महाराजा की मुँहमाँगी रक़म कर-रूप में देने का वचन दिया। शेर पंजाब ने यह शर्तें स्वीकार कर लीं और एक लाख दस हज़ार रुपया वार्षिक कर नियत कर के यार मुहम्मद खां को पेशावर का हाकिम नियुक्त कर दिया। उस के पद के अनुसार एक मूल्यवान् खिलअत, एक हाथी और एक उत्तम घोड़ा उसे प्रदान किया, और समस्त आवश्यक प्रबंध कर के स्वयं २७ अप्रैल सन् १८२४ को लाहौर पहुँच गया जहां बड़ी दीपमाला हुई और आनंद के उत्सव हुए।[1]

रामानंद सर्राफ़—सितंबर सन् १८२३ ई०

सितंबर सन् १८२३ ई० में महाराजा को समाचार मिला कि अमृतसर के प्रसिद्ध सर्राफ़ लाला रामानंद की मृत्यु हो गई है। यह वही व्यक्ति था जिस के पास सरकारी खज़ाना और दफ़्तर इत्यादि स्थापित होने से पूर्व महाराजा रंजीतसिंह की आमदनी और खर्च का कुल हिसाब रहा करता था। उस का महाराजा के दरबार में बड़ा आदर था। यह व्यक्ति बहुत मितव्ययी था और उस ने अपने जीवन-काल में बहुत-सा धन एकत्र कर लिया था।[2] यह बिना संतान मर गया। इस लिए महाराजा ने इस के

[1] विस्तृत हाल के लिए देखिए 'ज़फ़रनामा रंजीतसिंह', पृष्ट १५४ १५५। गनेश दास भी अपने छंदों में प्रसिद्ध घोड़े अर्थात् गौहरबार की चर्चा करता है।

[2] रामानंद का मितव्यय एक कहावत हो गया था। दीवान अमरनाथ 'ज़फ़रनामा

माल और असबाब का कुछ भाग तो उस के भतीजे शिव दयाल के पास रहने दिया; शेष २० लाख के क़रीब नक़द रुपया सरकारी ख़ज़ाने में जमा कर लिया गया जो बाद में लाहौर की शहर पनाह की मरम्मत में व्यय हुआ।

डेरा ग़ाज़ी खां में विद्रोह—अक्तूबर सन् १८२३ ई०

दशहरा के समाप्त होने पर महाराजा ने अपना ध्यान डेरा ग़ाज़ी ख़ां की ओर दिया। यहां का ज़मींदार सरदार असद ख़ां कुछ उद्दंड होता जा रहा था, और नवाब बहावलपूर के वश में नहीं आता था। अतएव महाराजा ने एक दल सेना के साथ सिंध नदी पार किया और उद्दंड ज़मींदारों से तीन लाख रुपए दंड-रूप में वसूल किए, और सरदार असद ख़ां ने अपना बेटा वचन-पूर्ति के रूप में महाराजा के साथ लाहौर भेजा।

राजा संसार चंद की मृत्यु

दिसंबर सन् १८२३ ई० में राजा संसार चंद की मृत्यु हो गई। महाराजा ने उस के बेटे अनिरुद्ध चंद को राज्य की ख़िलअत प्रदान की और एक लाख रुपया भेंट में वसूल किया। परंतु बाप की गद्दी पर अधिक काल तक बैठना उस के भाग्य में न था। जम्मू के राजा ध्यान सिंह के प्रारब्ध का सितारा उन दिनों उन्नति पर था। उस ने इच्छा प्रकट की कि उस के बेटे हीरा सिंह का विवाह राजा संसार चंद की बेटी से हो जाय। महाराजा ने अनिरुद्ध चंद को इस पर विवश किया, परंतु वह अपना वंश जम्मू के राजपूतों से उच्चतर समझता था। इस लिए वह और उस की माता इस संबंध पर राज़ी न हुए। अतएव अनिरुद्ध चंद अवसर पाकर अपने कुटुंब समेत

रंजीतसिंह' (पृष्ठ ५९) में लिखते हैं कि लोग सवेरे के समय उस का नाम मुँह से नहीं निकालते थे कि कहीं उन्हें दिन भर भोजन न प्राप्त हो।

सतलज पार भाग गया और अपनी दोनों बहिनों का विवाह गढ़वाल के राजा से कर दिया। महाराजा ने उस के इलाक़े पर अधिकार कर लिया, और राजा संसार चंद की दूसरी दो बेटियों के साथ जो एक गुलाब दासी की कोख से थीं, महाराजा ने आप विवाह कर लिया और संसार चंद के दूसरे बेटे फ़तेह चंद को एक लाख की जागीर प्रदान कर दी।

मिस्र दीवान चंद की मृत्यु

मिस्र दीवान चंद महाराजा के दरबार का एक उच्च व्यक्ति था, जिस ने मुल्तान, कश्मीर और मनकीरा की विजयों में बड़ा भाग लिया था। अचानक क़ोलंज (शूल) का दर्द हुआ और ५ सावन संवत् १८८२ वि० तदनुसार १९ जूलाई १८२५ ई० को इस असार संसार से चल बसा। महाराजा को इस बहादुर जनरल के मरने का बड़ा रंज हुआ। दीवान केशव का, फ़ौजी नियमों के अनुसार बड़े आदर व प्रतिष्ठा के साथ दाह किया गया। महाराजा मिस्र दीवान चंद के संबंध में ऊँची राय रखता था, और उसे हर प्रकार से प्रसन्न रखता था।[1]

जनरल विंटूरा का विवाह—सन् १८२४ ई०

इसी वर्ष जनरल विंटूरा का विवाह एक अंग्रेज़ स्त्री से हुआ जिस का प्रबंध कप्तान वेड ने लुधियाना में किया था। महाराजा ने इस अवसर पर विंटूरा को दस हज़ार रुपया तंबूल में दिया और तीस हज़ार रुपया अमीरों

---

[1]दीवान अमरनाथ 'ज़फ़रनामा रंजीतसिंह' के पृ० १३३ पर लिखते हैं कि किसी हिंदुस्तानी सौदागर के पास एक मूल्यवान् हुक़ा था, जिसे उदारमना महाराजा ने २००००) में ख़रीद लिया था, और इसे मिस्र दीवानचंद को प्रदान कर दिया था, व उसे हुक़ा पीने की भी आज्ञा दे दी। इस विशेष आचरण के कारण मिस्र दीवानचंद का पद औरों की दृष्टि में और भी ऊँचा हो गया था।

और रईसों ने दिया ।

सरदार फ़तेह सिंह अहलूवालिया की अप्रसन्नता और संधि—सन् १८२६ से १८२८ ई० तक

सरदार फ़तेह सिंह अहलूवालिया का वकील चौधरी क़ादिर बख़्श जो महाराजा के दरबार में रहा करता था अत्यंत षड्यंत्री मनुष्य था । उस ने कुछ समय से उपर्युक्त सरदार के विशेष परामर्शकारी दीवान शेर अली ख़ां के साथ मिल कर सरदार साहब को लाहौर दरबार से ग़लत ख़बरें भेजनी आरंभ की थीं । सरदार फ़तेह सिंह शेर अली पर पूरा भरोसा रखता था और सदा उस के परामर्श पर चलता था । अब दोनों ही द्वारा उसे यह बतलाया गया कि महाराजा शीघ्र ही उस के इलाक़े पर हाथ साफ़ करना चाहता है, और उस की जान व माल का भय है । अतएव उसे सतलज पार के इलाक़े में भेज दिया—यद्यपि इस में कोई सचाई न थी और न सरदार के पास ही ऐसा मान लेने का कोई कारण था । परंतु महाराजा कई एक सरदारों से ऐसा व्यवहार कर चुका था और हाल ही में रानी सदा कुँवर के इलाक़ों पर अपना अधिकार जमा चुका था, इस लिए सरदार फ़तेह सिंह के दिल में भी संदेह हो गया, और क़ादिर बख़्श और शेर अली के दाब में आकर अपने कुटुंब समेत कपूरथला से भाग कर जगराँव में शरण ली, जो अंग्रेज़ी राज्य के अंतर्गत था, अंग्रेज़ी एजेंट ने उसे अपने इलाक़े में रखने से साफ़ इन्कार कर दिया और साथ ही यह कह दिया कि हम महाराजा और आप के संबंध में कोई हस्तक्षेप नहीं करना चाहते । अतएव सरदार फ़तेह सिंह बड़ी असमंजस की अवस्था में था । उधर महाराजा के जी में भी कोई पाप न था इस लिए वह भी चिंतत और दुखी था । अतएव महा-

राजा ने पत्र-व्यवहार आरंभ किया और सरदार को विश्वास दिलाया कि यदि वह वापस आ जाय तो उस का बाल भी बाँका न होगा। अतएव वह लाहौर चल दिया। महाराजा ने अपने पोते कुँवर नौनिहाल सिंह को सरदार का स्वागत करने के लिए भेजा। जब सरदार दरबार में प्रस्तुत हुआ तो बड़ा करुण दृश्य दिखाई दिया। सरदार फ़तेह सिंह ने अपनी तलवार निकाल कर महाराजा के चरणों पर डाल दी और प्रेम भरी रुकती हुई ज़बान से प्रार्थना की कि इस ग़लती के दंड-स्वरूप मुझे मेरी तलवार से दंड दिया जाय। उस समय तमाम दरबार में सन्नाटा छा गया। यह देख कर महाराजा रंजीतसिंह का दिल भी भर आया और उस की आँख से टप-टप आँसू गिरने लगे। गद्दी से उठ कर सरदार को बग़ल में ले लिया, उस की तलवार म्यान में डाल कर उसे दे दी, और गद्दी पर अपने साथ बैठा लिया। क्रोध या शिकायत करने के स्थान पर मूल्यवान् ख़िलअत और सजा हुआ हाथी सरदार साहब को प्रदान किया और पहले की भाँति उस के इलाक़े की हकूमत प्रदान की।[1]

अंग्रेज़ी डाक्टर का आगमन—जूलाई १८२६ ई०

जूलाई १८२६ ई० में महाराजा अधिक बीमार पड़ गया। अतएव अंग्रेज़ी सरकार की ओर से डाक्टर मरे की सेवा प्रस्तुत की गई। महाराजा की ओर से डाक्टर मरे का ख़ूब आदर-पूर्वक स्वागत हुआ। एक सौ रुपया रोज़ डाक्टर साहब की दावत के लिए दरबार से मंज़ूर हुआ। इस के अतिरिक्त अपने विश्वास तथा प्रथा के अनुसार हज़ारों ब्राह्मणों को पूजा पर बैठाया गया। जब महाराजा को स्वास्थ्य-लाभ हुआ तो हज़ारों रुपए दान

---

[1] विस्तृत वर्णन के लिए देखिए, 'उम्दतुत्तवारीख़' भाग २, पृष्ठ ३४३

किए गए।

कश्मीर का भूचाल—सन् १८२७ ई०

सन् १८२७ में कश्मीर में भारी भूचाल आया जिस से हज़ारों जानें नष्ट हुईं, मकान गिर गए और हज़ारों की संख्या में लोग बेघर तथा निर्धन हो गए। दीवान कृपाराम, कश्मीर के शासक, ने महाराजा की सेवा में प्रजा की बुरी दशा का समाचार भेजा और उस की सिफ़ारिश से मालगुज़ारी में कमी कर दी गई।[1]

लाहौर में हैज़े का प्रकोप

इसी वर्ष लाहौर में हैज़े का प्रकोप भी हुआ। सैकड़ों आदमी नित्य मरने लगे। उस समय महाराजा ने सरकारी औषधालयों से मुफ़्त औषध दिए जाने की आज्ञा प्रचारित की और हर प्रकार से प्रजा की सहायता की। सरदार बुध सिंह सिंधानवाला भी इसी बीमारी में आनन-फ़ानन मर गया।

शिमले में सिख मिशन—सन् १८२७ ई०

लार्ड एमहर्स्ट इस वर्ष ग्रीष्म ऋतु बिताने के लिए कलकत्ते से चल कर शिमला आया। अतएव महाराजा रंजीतसिंह ने उस का स्वागत करने के लिए दीवान मोतीराम और फ़क़ीर अज़ीज़ुद्दीन को मूल्यवान भेंटें देकर शिमला भेजा, जिन में कश्मीरी पशमीने का विशाल शामियाना, कुछ उत्तम घोड़े, एक बड़ा हाथी और शाल का एक अत्यंत सुंदर ख़ेमा, जो कि इंग्लैंड के शाह के लिए था, सम्मिलित थे। शिमले में आदर व समारोह के साथ

---

[1] दीवान अमरनाथ के अनुमान के अनुसार नौ हज़ार मकान गिर गए, चालीस हज़ार मनुष्य मृत्यु के ग्रास बने और एक लाख रुपए का माल नष्ट हुआ। देखिए 'ज़फ़रनामा रंजीतसिंह', पृष्ठ १७९ और 'उम्दतुल्तवारीख़' भाग २, पृष्ठ ३५०

इन का स्वागत हुआ। कप्तान वेड जो लुधियाने में अंग्रेज़ी सरकार का एजंट था इन का मेज़बान नियत हुआ। इन को विदा करने के लिए गवर्नमेंट हाउस में विशाल दरबार किया गया। इस के बाद अंग्रेज़ी सरकार के उच्च अफ़सरों का एक गुट्ट महाराजा से भेंट करने के लिए चला, और मूल्यवान भेंट, जिन में दो अच्छे विलायती घोड़े, चाँदी के हौदे से सजा हाथी, रत्नों से जड़ी हुई तलवार, दोनाली बदूक़, नई रीति का तमंचा, हीरे से जड़े हुए दो भाले, कमख़ाब के कुछ थान संमिलित थे, अपने साथ लाए, और दीवान जी और फ़क़ीर साहब को उत्तम ख़िलअतें मिलीं।

ध्यान सिंह और हीरा सिंह

इस से पूर्व इस बात का संकेत किया जा चुका है कि राजा गुलाब सिंह, ध्यान सिंह और सुचित सिंह का भाग्य-नक्षत्र दिन-दूनी रात-चौगुनी उन्नति पर था। महाराजा इन तीनों भाइयों पर मुग्ध था। विशेष कर ध्यान सिंह दरबार में बहुत प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका था, और इस समय वह प्रधान सचिव के पद पर आसीन था। उस के पद को और भी उच्च करने के लिए महाराजा ने वैसाखी के दिन दरबार आम किया। राजा ध्यान सिंह का मूल्यवान् ख़िलअत प्रदान कर के राजतिलक दिया गया और 'राजए-राजगान राजए-हिंदपत राजा ध्यान सिंह बहादुर" की उपाधि प्रदान की।[1]

राजा ध्यान सिंह का बेटा हीरा सिंह जो बड़ा सुंदर और सचेत युवक था, उन दिनों महाराजा का कृपापत्र बन रहा था। अतएव महाराजा ने उसे भी राजा की उपाधि दी और स्वयं अपने हाथ से उस के माथे पर राजतिलक लगाया। उस वंश का सामाजिक सम्मान बढ़ाने के लिए महाराजा

[1] 'ज़फ़रनामा रंजीतसिंह', पृ० १८४

ने यह प्रयत्न भी किया कि हीरा सिंह का विवाह राजा संसार चंद की बेटी से हो जाय। इस की चर्चा पहले हो चुकी है।

ख़लीफ़ा सैयद अहमद का विद्रोह—सन् १८२७-३१ ई०

इसी वर्ष पेशावर से समाचार आए कि यूसुफ़ज़ई के इलाक़े में सैयद अहमद ने बड़ा विद्रोह मचा रक्खा है। सैयद अहमद का वास्तविक नाम मीर अहमद था। वह ज़िला बरेली के निवासी थे। आरंभ में यह अमीर ख़ां रुहेला की सेना में नौकर थे। बाद में उन की हैसियत एक धार्मिक नेता की हो गई। यह भी कहा जाता है कि इन्हें इलहाम होता था। पहले वह मक्का व मदीना की तीर्थयात्रा को गए थे, फिर हिंदुस्तान में जब वापस आए तो उन के सैकड़ों चेले हो गए और हज़ारों रुपया उन के अधिकार में आ गया। दिल्ली के दो-तीन योग्य और प्रसिद्ध विद्वान्, मौलवी अब्दुलहई और मौलवी इस्माइल इत्यादि उन के चेले हो गए। यह सिंध द्वारा शिकारपुर होते हुए काबुल पहुँचे। वहां अपने धार्मिक मंतव्यों की शिक्षा आरंभ कर दी। मुहम्मदी झंडा ऊँचा किया, जिस के नीचे पखली, धमातूर, सवात और बुनेर इत्यादि इलाक़ों के अफ़ग़ान क़बीलों ने एकत्रित होना आरंभ कर दिया। उन्हों ने सिक्खों के विरुद्ध जिहाद (धर्म-युद्ध) का फ़तवा दिया।[1] जिस पर संपूर्ण सरहदी सूबे में विद्रोह फैल गया। इस को दंड देने के लिए महाराजा ने मार्च १८२७ में सिंधानवालिया सरदारों के नेतृत्व में फ़ौज का एक दल लाहौर से भेजा, और पेशावर के शासक यार मुहम्मद ख़ां को आज्ञा दी कि वह अपनी सेना उन की सहायता के लिए भेजे। सैयद अहमद की अनियमित सेना महाराजा की क़वायद सीखी हुई सेना

[1] 'ज़फ़रनामा रंजीतसिंह', पृ० १७५

का सामना न कर सकी। अतएव वह हार कर सेवात के पहाड़ों में भाग गई। कुछ दिनों बाद उन्हों ने अपनी सेना दूसरी बार सजा कर यूसुफ़ज़ई के पहाड़ी इलाक़े की तरफ़ भेजी और वहां से ख़लील और महमंद जाति के लोगों की बहुसंख्य सेना एकत्र कर के अटक के इलाक़े में युद्ध आरंभ कर दिया। अतएव अक्तूबर १८२७ ई० में युवराज खड़क सिंह, जनरल इलार्ड और विंटूरा के नेतृत्व में एक बड़ी सेना भेजी गई। पठानों और सिखों में घोर युद्ध हुआ। अंत में ख़लीफ़ा सैयद अहमद की हार हुई और उन के छः हज़ार आदमी मारे गए।[1]

सरदार यार मुहम्मद का वध

उस के अगले वर्ष ख़लीफ़ा सैयद अहमद ने एक और प्रस्ताव किया और अपने चेलों को सरदार यार मुहम्मद ख़ां के विरुद्ध उभाड़ा कि यह व्यक्ति सिखों की अधीनता स्वीकार करता है, अतएव इसे ठीक करना चाहिए। अतएव चालीस हज़ार ग़ाज़ियों की सेना एकत्र कर के ख़लीफ़ा ने पेशावर पर आक्रमण कर दिया और बारकज़ई सरदार को परास्त कर के स्वयं पेशावर पर अधिकारी हो गया। सरदार यार मुहम्मद इस युद्ध में मारा गया और उस का तोपख़ाना सैयद मुहम्मद के हाथ आया।

सुल्तान मुहम्मद ख़ां की नियुक्ति—सन् १८३० ई०

पेशावर पर सैयद अहमद का अधिकार हो जाने के कारण महाराजा कुछ घबराया। तुरंत राजकुमार शेर सिंह और जनरल विंटूरा को, जो उस समय अटक के आस-पास दौरा कर रहे थे, यह आज्ञा मिली कि वह पेशावर पहुँचें। उन्हों ने जाते ही सैयद अहमद की लश्कर को घेर लिया और घमा-

[1] 'ज़फ़रनामा रंजीतसिंह', पृ० १८१

सान युद्ध के उपरांत पेशावर पर अधिकार कर लिया। सैयद अहमद ख़ां वहां से भाग गया। महाराजा ने यार मुहम्मद के भाई सुलतान मुहम्मद ख़ां को वापस बुला लिया और पेशावर के शासन-पद पर नियुक्त किया।

लैला नामी घोड़ा

लैला नामी घोड़ा अपने समय का प्रसिद्ध और असामान्य जानवर था, जो बारकज़ई सरदारों के अधिकार में था। दीवान अमरनाथ के लेख से मालूम होता है कि इस घोड़े के लिए रूम के बादशाह और शाह ईरान की तरफ़ से बारकज़ई सरदारों के पास माँगें आई थीं, जिस के बदले वह बहुत धन देने को तैयार थे। पिछले वर्ष महाराजा रंजीतसिंह ने भी उस के लिए प्रयत्न किया था, परंतु यार मुहम्मद ने यह कह कर टाल दिया था कि वह घोड़ा मर चुका है, और उस के बदले अन्य सुंदर और अच्छी चाल के घोड़े महाराजा को भेंट कर के अपना पीछा छुटा लिया था। अतएव इस बार पेशावर की सरदारी प्रदान करने से पूर्व महाराजा ने लैला को माँगा और सुल्तान मुहम्मद ख़ां ने यह अद्वितीय घोड़ा महाराजा को भेंट कर दिया। इस ख़ुशी में महाराजा ने विंदुरा को जो घोड़े को अपने साथ लाया था दो हज़ार रुपए मूल्य की ख़िलअत प्रदान की।

सैयद अहमद की मृत्यु—मई सन् १८३१ ई०

महाराजा की सेना ज्योंही पेशावर से वापस आई ख़लीफ़ा सैयद अहमद ने फिर विद्रोह खड़ा किया। एक साल से अधिक यही क्रम जारी रहा। सुल्तान मुहम्मद ख़ां उन्हें परास्त करता परंतु कभी-कभी वह सुल्तान की अपेक्षा प्रबल सिद्ध होते। अंत में कई कारणों से अफ़ग़ान उन से विमुख हो गए और उन की हत्या पर तुल गए। अतएव वह यूसुफ़ज़ई इलाक़े से

निकल कर मुज़फ्फ़राबाद ज़िले में चले आए, क्योंकि यहां अभी तक उन में विश्वास करने वाले शेष थे। इस लिए उन की सहायता से अप्रैल १८३१ ई० में उन्हों ने क़िला मुज़फ़्फ़राबाद में मोर्चा लगा दिया। कुछ समय तक ख़ालसा सेना के साथ युद्ध चलता रहा। अंत में एक मुठभेड़ में ख़लीफ़ा और उन के सलाहकार मौलवी इस्माइल, दोनों शहीद हो गए, और यह विद्रोह समाप्त हुआ।[1]

---

[1] दीवान अमरनाथ इस संबंध में लिखते हैं कि कुंवर शेर सिंह ने जो इस समय ख़ालसा सेना का नायक था ख़लीफ़ा की लाश को अपने सामने मंगवाया और एक कुशल चित्रकार से उस का चित्र बनवाया। जो बाद में राजकुमार ने महाराजा की सेवा में पेश किया। महाराजा ने चित्र को देख कर अपने वीर वैरी की बड़ी प्रशंसा की। ('ज़फ़रनामा-रंजीतसिंह' पृ० १९५)। सैयद मुहम्मद लतीफ़ का यह लिखना कि कुंवर शेर सिंह ने ख़लीफ़ा का सिर कटवा कर महाराजा के पास लाहौर भेजा था, नितांत मिथ्या और निराधार है।

चौदहवां अध्याय

अंग्रेज़ी सरकार से संबंध और महाराजा की मृत्यु—(सन् १८२८–१८३९ ई०)

सिख शासन की परम उन्नति

इन दिनों सिख शासन अपनी उन्नति की पराकाष्ठा को प्राप्त कर चुका था। शेर पंजाब की ख्याति का सूर्य दोपहर की भाँति अपना पूरा पराक्रम दिखा रहा था। वह मुल्तान, कश्मीर, और पेशावर के मुसल्मानी सूबे विजय कर के सिख साम्राज्य में सम्मिलित कर चुका था। वह पंजाब के पर्वत-प्रदेशों और मैदानी रियासतों का पूर्ण-रूप से स्वामी समझा जाता था। लद्दाख और सिंध विजय करने के प्रस्ताव उस के सामने थे। दूर देशों के बादशाह उस के साथ मैत्री के संबंध स्थापित करना गर्व की बात समझते थे।

हैदराबाद के निज़ाम का वकील

सन् १८२९ ई० में, हैदराबाद के निज़ाम का वकील दरवेश मुहम्मद लाहौर दरबार में उपस्थित हुआ और निज़ाम की ओर से चार मूल्यवान् घोड़े, एक अद्वितीय चाँदनी,[1] एक दो-धारी तलवार, एक तोप और कई बंदूक़ें भेंट-स्वरूप महाराजा के लिए लाया। इन के अतिरिक्त कई मूल्यवान्

[1] यह चांदनी रंजीतसिंह को बहुत ही पसंद आई। उस ने उसी समय यह दरबार साहब अमृतसर में भेज दी, जहां यह अब तक मौजूद है—भाई प्रेम सिंह।

वस्तुएं युवराज खड़क सिंह के लिए भी थीं।

हेरात और बलूचिस्तान के एजेंट

इसी साल हेरात के शासक शहज़ादा कामरान का प्रतिनिधि सैफ़ ख़ां भेंट लेकर प्रस्तुत हुआ। सन् १८२९ ई० में, बलूचिस्तान से वकील आए और बहुत से घोड़े और जंगी सामान साथ लाए। महाराजा की सेवा में भेंट प्रस्तुत करने के अनंतर यह प्रार्थना की कि उन के दो क़िले जो इलाक़ा डेरा ग़ाज़ी ख़ां की सरहद पर सिंध नदी के पश्चिम में स्थित हैं नवाब बहावलपुर ने छीन लिए हैं, और उन्हें वापस लेने में वह महाराजा की सहायता के इच्छुक हैं।

अंग्रेज़ी सरकार की भेंट

सन् १८२८ ई० में, लार्ड एमहर्स्ट, गवर्नर-जनरल इंग्लिस्तान वापस गया और उस ने रंजीतसिंह की दी हुई मूल्यवान् भेंटें इंग्लिस्तान के शाह को भेंट कीं। अब शाह ने भी विलायत के अमूल्य उपहार -- जिन में पाँच अद्वितीय विलायती नस्ल के बड़े घोड़े और एक अत्यंत सुंदर गाड़ी थी— महाराजा के लिए भेजे। लफ़्टनैंट अलेग्ज़ैंडर बर्नज़ जो कच्छ इलाक़े का पोलिटिकल एजेंट था इस सामान को सिंध नदी द्वारा नावों में लाहौर पहुँचाने के लिए नियुक्त हुआ।[1]

यह दूत २१ जनवरी १८३१ ई० को सवेरे ५ देशी नावों के साथ माँडवी, इलाक़ा कच्छ, से लाहौर के लिए चला। सिंध के अमीरों ने उन्हें अपने इलाक़े में से यात्रा करने में रोका। परंतु रंजीतसिंह ने मुल्तान

---

[1] सरकार अंग्रेज़ी का उद्देश यह था कि महाराजा को उपहार भी पहुँच जाएं और यह भी मालूम हो जाय कि सिंध नदी कहां तक जहाज़ की यात्रा के लिए ठीक है।

के सूबेदार सावन मल द्वारा अमीरों पर दबाव डाला, व अंग्रेज़ी सरकार ने भी प्रयत्न किया। अतएव दूतों के मार्ग में कोई रुकावट उपस्थित न हुई और २७ मई की रात को यह मालपूर पहुँच गए, जहां इन का आदर-पूर्वक स्वागत और कई दिन तक आतिथ्य-सत्कार किया गया।

महाराजा से भेंट

इस के बाद लफ़्टनैंट बर्नज़ महाराजा के इलाक़े में प्रविष्ट हुआ। रंजीत-सिंह ने सरदार लहना सिंह मजीठिया को उस के स्वागत के लिए भेजा, जो अपने साथ एक सजा हुआ हाथी बर्नज़ की यात्रा के लिए लाया। १७ जूलाई १८३१ ई० को यह दूत लाहौर पहुँचे जहां इन का विशाल स्वागत हुआ। तीन दिन के बाद महाराजा ने बर्नज़ से क़िले में भेंट की। इस अव-सर पर शेर पंजाब ने एक विशाल दरबार किया। महाराजा के अमीर तथा मंत्रीगण पूरी-पूरी तैयारी से सजे हुए अपने-अपने पद के अनुसार बैठे थे। लफ़्टनैंट बर्नज़ ने इंग्लिस्तान के शाह के उपहार और उस का प्रेम-पत्र महा-राजा की सेवा में प्रस्तुत किया। यह पत्र एक सुंदर थैली में बंद था और इस पर शाही मुहर लगी हुई थी। पत्र खोलते ही क़िले की पनाह दीवार से सलामी उतारी गई।

दूतों का आतिथ्य

महाराजा ने दूतों को कई दिन तक अपने यहां अतिथि रक्खा और उन की ख़ूब ख़ातिर की। उन्हें अपनी सेना की क़वायद दिखाई और कई प्रकार से उन्हें सत्कृत किया।[1] प्रस्थान के समय दूतों को मूल्यवान् भेंटें दीं जिन

[1] बर्नज़ की प्रार्थना पर महाराजा ने उसे अपने रत्न दिखाए। इस ने एक लाल भी देखा जिस पर कई बादशाहों के नाम अंकित थे। जिन में औरंगज़ेब और अहमद शाह अब्दाली के नाम स्पष्ट रूप से पढ़े जाते थे। देखिए बर्नज़ का यात्राविवरण।

में जड़ाऊ कमान तरकश सहित, कश्मीरी शाल से सजा हुआ घोड़ा भी थे, दिया। इस के अतिरिक्त आदर-सूचक मूल्यवान् ख़िलअतें भी प्रदान कीं।

दूतों का प्रस्थान

२१ अगस्त को सवेरे, यह दूत लाहौर से शिमला को रवाना हुए जिस में गर्वनर-जनरल को, जो अभी तक शिमले में ठहरा हुआ था, महाराजा से भेंट तथा सिंध नदी के मार्ग के विषय में पूरा हाल सुनाएं। यह दूत रास्ते में अमृतसर में भी ठहरे, जहां इन्हों ने दरबार साहब के दर्शन किए।

डेरा ग़ाज़ी ख़ां पर अधिकार—सन् १८३१ ई०

यह बताया जा चुका है कि महाराजा ने सिंध नदी के पार का इलाक़ा विजय कर लिया था परंतु उन सूबों के शासन के लिए पठान सूबेदारों को ही बना रहने दिया था। अतएव पेशावर पर सुलतान मुहम्मद शासन करता था। डेरा इस्माइल ख़ां का इलाक़ा नवाब मनकीरा की जागीर था, डेरा ग़ाज़ी ख़ां का प्रबंध नवाब बहावलपूर के अधीन था जो इस के बदले ३ लाख रुपया वार्षिक लाहौर दरबार को अदा करता था। बहावलपूर की रियासत सतलज नदी के पार तक फैली हुई थी इस लिए यहां का नवाब अंग्रेज़ी सरकार से शरण की प्रार्थना कर सकता था। जब अंग्रेज़ी दूत सिंध नदी के द्वारा लाहौर आ रहे थे, तब महाराजा को उन के वास्तविक उद्देश्य का हाल मालूम हो गया था। अतएव उसे संदेह हो गया कि कहीं उसे डेरा ग़ाज़ी ख़ां के इलाक़े से हाथ न धोना पड़े। अतएव जब कि लफ़्टनैंट बर्नज़ अपने उपहारों सहित अभी मार्ग ही में था, महाराजा ने जरनल विंटूरा को एक दल सेना का देकर डेरा ग़ाज़ी ख़ां की ओर भेज दिया था। नवाब बहावलपूर के साथ समझौता तोड़ दिया गया, और डेरा ग़ाज़ी ख़ां सीधा सिख

साम्राज्य में आ गया।

रूपड़ की भेंट की तैयारियां—अक्तूबर सन् १८३१ ई०

जब लफ़टनैंट बर्नज़ ने अपने भेंट का समाचार गवर्नर-जनरल को सुनाया तो उस के हृदय में महाराजा से मिलने की इच्छा हुई। अतएव लार्ड विलियम बेंटिंग ने कप्तान वेड को लाहौर भेजा जिस ने बड़ी कुशलता और बुद्धिमत्ता से लाहौर दरबार से गवर्नर-जनरल की भेंट के लिए निमंत्रण भिजवाया। भेंट करने का स्थल सतलज नदी के किनारे रूपड़ नियुक्त हुआ और भेंट की तिथि २५ अक्तूबर निश्चित हुई। दोनों पक्ष से तैयारियां आरंभ हुईं। रूपड़ में अगणित ख़ेमे, क़नातें, शामियाने इत्यादि लगाए गए। दोनों पक्ष की थोड़ी-थोड़ी सेना शरीर-रक्षक (बाडीगार्ड) के रूप में पहुँच गई। महाराजा के रूपड़ पहुँचने पर तोपों द्वारा सलामी ली गई और इसी समय मेजर-जनरल स्वागत और चीफ़ सेक्रेटरी कुशल-क्षेम पूछने के लिए महाराजा के ख़ेमे में आए। उस के बाद महाराजा की ओर से शहज़ादा खड़क सिंह, सरदार हरी सिंह नलुवा, राजा संगत सिंह, सरदार अतर सिंह सिंधियानवाला, सरदार शाम सिंह अटारीवाला, और राजा गुलाब सिंह गवर्नर-जनरल का कुशल-क्षेम जाँचने के लिए पहुँचे। लार्ड विलियम बेंटिंग ने अपने ख़ेमे के द्वार पर उन का स्वागत किया। बड़े आदर के साथ युवराज को अपने दाहिने तरफ़ बैठाया। २६ अक्तूबर का दिन दोनों शासकों की भेंट के लिए निर्दिष्ट हुआ।

महाराजा गवर्नर-जनरल के कैंप में

अगले दिन महाराजा के दरबार के अमीर और मंत्रिगण अहलकार और ख़ालसा फ़ौज अपनी-अपनी ज़रदोज़ वर्दियां पहन कर सजे हुए हाथियों

और घोड़ों पर सवार होकर गवर्नर-जनरल के ख़ेमे की तरफ़ चले। गवर्नर-जनरल, कमांडर-इन-चीफ़ और सेक्रेटरी लोग हाथियों पर सवार महाराजा के स्वागत को बढ़े। जब दोनों शासकों के हाथी बराबर हुए तो दोनों ने बड़े आदर से सलाम किया। महाराजा अपने हाथी से उतर कर गवर्नर-जनरल के हौदे में आ गया[1]। उस के बाद दोनों हाथी से उतरे और हाथ में हाथ डाले कैंप में प्रविष्ट हुए। बिदा होने के समय विलियम बेंटिंग ने दो सुंदर घोड़े और बर्मा का एक हाथी और बहुत से रत्न महाराजा को भेंट किए।

गवर्नर-जनरल महाराजा के कैंप में

दूसरे दिन महाराजा ने कश्मीरी पश्मीने का शामियाना लगवाया, और उसे सोने-चाँदी की चोबों और मूल्यवान् क़ालीनों से सजाया। युवराज खड़क सिंह और राजकुमार शेर सिंह नियत समय पर गवर्नर-जनरल के स्वागत के लिए उपस्थित हुए। महाराजा अपने सर्वोत्तम हाथी पर सवार उपस्थित था। ज्योंही गवर्नर-जनरल और महाराजा के हाथी बराबर पहुँचे दोनों ने प्रेम से अभिनंदन किया। गवर्नर-जनरल महाराजा के हौदे में आ बैठा। तोपख़ाने ने सलामी उतारी। सोने के जड़ाऊ तख़्त पर दो कुर्सियां सजी थीं जिन पर महाराजा और गवर्नर-जनरल बैठ गए। दरबारियों ने

[1] कहा जाता है महाराजा अपने साथ दो सेब ले गया था, क्योंकि महाराजा के दिल में गवर्नर-जनरल की ओर से कुछ संदेह हो गया था। उस के ज्योतिषियों ने उसे बताया कि गवर्नर-जनरल को दो सेब भेंट करे। यदि वह प्रसन्नता-पूर्वक स्वीकार कर ले तो कोई भय न होगा। अतएव वह दोनों सेब गवर्नर-जनरल ने बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार कर लिए। दीवान अमरनाथ भी इस की ओर संकेत करता है। देखिए 'ज़फ़र-नामा', पृष्ठ २०८

अपनी-अपनी भेंटें गवर्नर-जनरल की सेवा में पेश कीं जिन्हें नियम के अनुसार उस ने केवल छू कर वापस कर दिया। बिदाई के समय उत्तम शाल के १०१ थान, चार सजे घोड़े, चाँदी के हौदे वाले दो हाथी, गवर्नर-जनरल को भेंट किए गए, जिन्हें उस ने प्रसन्नता-पूर्वक स्वीकार किया।

दावत के दिन

तीसरे दिन महाराजा ने गवर्नर-जनरल की दावत की। सैकड़ों प्रकार के स्वादिष्ठ भोजन तैयार कराए, जिन्हें अंग्रेज़ अतिथियों ने बड़ी प्रसन्नता-पूर्वक खाया। उस से अगले दिन गवर्नर-जनरल ने महाराजा को निमंत्रण दिया। आतिथ्य का पूरा प्रबंध किया गया था। दावत के ख़ेमे में सैकड़ों अंग्रेज़ महिलाओं ने महाराजा का स्वागत किया। उस अवसर पर गवर्नर-जनरल की इच्छानुसार बाजे वालों ने अपने वह-वह करतब दिखाए कि महाराजा 'वाह-वाह' करने लगा।

फ़ौजी क़वायद

अगले दिन महाराजा ने अंग्रेज़ी सेना की क़वायद देखी। पहले तोपख़ाना ने अपने करतब दिखाए। फिर पलटनों ने अपने-अपने कुशल कार्य प्रदर्शित किए, जिन्हें देख कर महाराजा बहुत प्रसन्न हुआ। बाद में अंग्रेज़ी फ़ौज़ी अफ़सर मैदान में आए और अपने कमाल दिखाने आरंभ किए। यह देख कर महाराजा के बहादुर सरदार भी बाहर निकले। सरदार हरी सिंह नलुवा, जनरल विंटूरा, राजा सुचेत सिंह और जनरल इलाही बख़्श इत्यादि ने युद्ध के ऐसे हाथ दिखाए कि संपूर्ण अंग्रेज़ हैरान और आश्चर्य से चकित रह गए। अब महाराजा साहब के सैनिक उत्साह ने भी ज़ोर पकड़ा और हाथी से उतर कर वह अपने प्रसिद्ध घोड़े लैला पर सवार हो गया। मैदान में

एक पीतल का लोटा रखवाया गया। महाराजा तलवार हाथ में ले कर घोड़ा दौड़ाता हुआ पास से निकला। घोड़े को ठहराये बिना तलवार की नोक से लोटे पर ऐसे निशान लगाए जो एक सुंदर फूल का चित्र प्रदर्शित करते थे। गवर्नर-जनरल तथा अन्य अंग्रेज़ी अफ़सर महाराजा को सैनिक कुशलता को देख कर मुँह में अँगुली दबा कर रह गए। फिर गवर्नर-जनरल ने महाराजा के फ़ौज की क़वायद देखी। ख़ालसा तोपख़ाना की गोला-अंदाज़ी और पैदल सेना की क़वायद देख कर गवर्नर-जनरल बहुत प्रसन्न हुआ।

लाहौर को वापसी

उसी संध्या को बिदाई का दरबार किया गया और १ नवंबर सन् १८३१ ई० को दोनों शासक अपने-अपने इलाक़े की तरफ़ चल दिए। महाराजा ऊँभ और कपूरथला से होता हुआ १६ नवंबर को लाहौर पहुँच गया।

गुल बेगम का क़िस्सा—सन् १८३२ ई०

सन् १८३२ ई० के बीच रंजीतसिंह ने गुल बहार नामक एक सुंदरी नर्तकी को अपने महल में रख लिया। कुछ समय तक उस के साथ आमोद-प्रमोद में बिताया। उसे गुल बेगम की उपाधि दी। और उस के भाई बंदों को पुरस्कार इत्यादि से मालामाल कर दिया।[1]

कश्मीर का कुप्रबंध—सन् १८३३ ई०

कुछ समय से कश्मीर का सूबा राजकुमार शेर सिंह के अधीन था।

---

[1] दीवान अमरनाथ और मुंशी सोहन लाल ने इस क़िस्से को अपनी पुस्तकों में विस्तार के साथ लिखा है। देखिए 'ज़फ़रनामा' पृष्ट २१५ से २१८; 'उम्दतुत्तारीख़' जिल्द ३, भाग २, पृ० १४९ से १५१

दीवान बिसाखा सिंह उस का माल का अफ़सर था परंतु दीवान ने ईमान-दारी के मंतव्यों का व्यवहार न किया और न राजकुमार ने ही रियासत के प्रबंध की ओर ध्यान दिया। अतएव महाराजा के पास कश्मीर के कुप्रबंध के समाचार एक-एक कर के आने लगे। रंजीतसिंह ने जमादार ख़ुशहाल सिंह, भाई गुरमुख सिंह और शेख़ गुलाम मुहीउद्दीन को प्रबंध के सुधारने के लिए भेजा। परंतु ऐसा जान पड़ता है कि इन्हों ने भी प्रायः प्रजा का ख़ून चूसना ही उचित समझा।

कश्मीर में अकाल

इसी वर्ष फ़स्ल न होने के कारण कश्मीर में अकाल पड़ गया। जो इतना प्रबल था कि हज़ारों घराने अपने देश से बिदा हो कर पंजाब और मैदान के अन्य भागों में जा बस गए। दीवान अमरनाथ के लेख से मालूम होता है कि ऐसा अकाल कश्मीर में पिछले दो सौ वर्षों में नहीं देखा गया था। महाराजा ने इस अवसर पर बड़ी उदारता से काम लिया। लाहौर और अमृतसर में असहायों की सहायता के लिए जगह-जगह ग़ल्लाख़ाने खोल दिए गए, जहां अकाल-पीड़ितों को भोजन का सामान मुफ़्त मिलता था, व सरकारी गोदामों से हज़ारों मन गेहूं कश्मीर भेजा गया। जो अनाज व्यापारी लोगों ने भी कश्मीर भेजा उस पर भी महाराजा ने महसूल छोड़ दिया।

दीवान बिसाखा सिंह और शेख़ गुलाम मुहीउद्दीन को दंड

महाराजा को संदेह था कि इन दो व्यक्तियों ने मिल कर सरकारी रुपया खा-पी लिया है। अतएव दोनों दंड के पात्र हुए। बिसाखा सिंह पैर में ज़ंजीर डाल कर लाहौर लाया गया और चार लाख रुपया उस से

प्राप्त किया गया। शेख़ गुलाम मुहीउद्दीन के संबंध में महाराजा को यह बताया गया कि उस ने अपने देश, होशियारपूर में अपने मकान में नक़द रुपया ज़मीन में गाड़ रक्खा है और संदेह को मिटाने के लिए अपने मुरशिद की क़ब्र बनवा ली है। महाराजा की आज्ञा से यह क़ब्र खुदवाई गई जिस में से नौ लाख रुपया मूल्य का सोना चाँदी और नक़द रुपया प्राप्त हुआ जिस पर महाराजा ने व्यंग में शेख़ से कहा कि तुम्हारे मुरशिद की पूजा व्यर्थ नहीं गई क्योंकि उस की हड्डियां सोने चाँदी में बदल गई हैं। शेख़ अपने पद से हटाया गया और यह तमाम रुपया सरकारी ख़ज़ाने में पहुँचाया।

सिंध नदी की राह अंग्रेज़ी व्यापार—सन् १८३२ ई०

इस से पूर्व इस की चर्चा हो चुकी है कि महाराजा के लिए सिंध नदी के रास्ते उपहार भेजने का उद्देश्य नदी के मार्ग से पूरा परिचय प्राप्त करना था। अंग्रेज़ी सरकार सिंध अफ़ग़ानिस्तान आदि देशों से अपना व्यापार स्थापित करना चाहती थी। इस के अतिरिक्त अंग्रेज़ों को यह भी ख़्याल था कि अगर कभी शाह रूस तथा शाह ईरान मिल कर हिंदुस्तान की ओर अपना ध्यान दें तो वह सिंध की राह शीघ्र ही अपनी सरहद पर पहुँच जायँ। यह उद्देश्य उन्हों ने महाराजा रंजीतसिंह से गुप्त रक्खा था। दूसरी ओर शेर पंजाब भी सिंध विजय करना चाहता था। उसे विश्वास था कि सिंध के बलूची सिपाही ख़ालसा सेना के सामने एक दम भी नहीं ठहर सकेंगे। महाराजा विशेष कर शिकारपुर का इलाक़ा लेना चाहता था।

समझौते का पत्र

वास्तव में इसी पेंच को सुलझाने के लिए ही गवर्नर-जनरल ने महाराजा से भेंट की थी। यद्यपि भेंट के समय जान-बूझ कर इस विषय के

प्रति किसी प्रकार का संकेत नहीं किया गया। ८ अक्तूबर सन् १८३१ ई० में कर्नल पोमेंखर सिंध के अमीरों के साथ व्यापारिक संबंध स्थापित करने के लिए चला जिस के लिए उसे परिश्रम और प्रयत्न करना पड़ा। परंतु अंत में उसे सफलता प्राप्त हुई, और अप्रैल सन् १८३२ ई० में सिंध के तीनों[1] शासकों के साथ अलग-अलग व्यापारिक संधियां की गईं, जिन के द्वारा यह निश्चित हुआ कि सिंध के अमीर अंग्रेज़ी तिजारती जहाज़ों से कोई रोक-टोक न करें और केवल नियत रक़म महसूल के रूप में लें।

लाहौर दरबार से संधि

सिंध के अमीरों से संधि हो जाने के अनंतर गवर्नर-जनरल ने रंजीत-सिंह के साथ भी इस के संबंध में समझौता करना चाहा और इसी उद्देश्य से पत्र-व्यवहार आरंभ किया। दिसंबर सन् १८३२ ई० में कप्तान वेड को लुधियाने से लाहौर जाने के लिए आज्ञा मिली। गवर्नर-जनरल का प्रस्ताव सुन कर महाराजा दुबिधे में पड़ गया। क्योंकि वह स्वयं सिंध का सूबा विजय करना चाहता था। परंतु बहुत हीले-हवाले के बाद उस ने भी इस बात को स्वीकार कर लिया और २६ दिसंबर सन् १८३२ ई० को संधि-पत्र लिख दिया।

शाह शुजा और काबुल की गद्दी—सन् १८३३-३५

इन दिनों दुर्रानी शासन के भाग्य का अंत हो चुका था। और उस के तीन टुकड़े हो चुके थे। काबुल ग़ज़नी और जलालाबाद के तीन सूबे सरदार दोस्त मुहम्मद ख़ां बारकज़ई के अधिकार में थे। कंधार में उस का

---

[1] सूबा सिंध में इन दिनों तीन शासक थे। पश्चिम में रियासत हैदराबाद थी; उत्तर में ख़ैरपूर और इन दोनों के बीच मीरपूर की रियासत थी।

दूसरा भाई शेर दिल ख़ां स्वतंत्र शासक था, और हेरात का सूबा शाह-ज़ादा कामरान के अधिकार में था। इस खलबली को देख कर शाह शुजा-उल्मुल्क के दिल में राज्य की आकांक्षा ने फिर ज़ोर किया, और एक बार भाग्य का फिर निर्णय करने के लिए वह तैयार हो गया। अतएव सन् १८३३ ई० में शाह ने लुधियाने से कूच किया। मालेरकोटला और जगरॉंव से होता हुआ नवाब बहावलपूर के पास पहुँचा। वहां से कुछ सहायता लेकर सिंध की ओर बढ़ा और शिकारपूर में जा डेरे लगाए। सिंध के हाकिमों और महाराजा रंजीतसिंह के साथ पत्र-व्यवहार आरंभ किया। महाराजा रंजीतसिंह ने इस शर्त पर शाह को सहायता देने का वचन दिया कि यदि वह काबुल की गद्दी प्राप्त करने में सफल हो जाय तो वह सिंध पार का संपूर्ण इलाक़ा अर्थात् पेशावर, बन्नू, डेरा इस्माइल ख़ां, डेरा ग़ाज़ी ख़ां इत्यादि सूबों पर अपना दावा सदा के लिए छोड़ देगा और रंजीतसिंह को क़ानूनन तथा यथार्थ में उस इलाक़े का शासक स्वीकार कर लेगा। शाह ने यह शर्तें स्वीकार कर लीं। महाराजा ने उसे एक तोप और एक लाख रुपया सहायतार्थ भेजा। उस के बाद शाह ने सिंध के अमीरों से कर की माँग किया, क्योंकि यह लोग दुर्रानी शाहों के सूबेदार थे। उन के अस्वीकार करने पर शाह शुजा और अमीर हैदराबाद के बीच युद्ध हुआ जिस में हैदराबाद के शासक की हार हुई और शाह ने सिंध के अमीरों से पाँच लाख रुपया वसूल किया। इस के बाद, क़ंधार का शाह पहुँचा और उस ने शहर का घेरा डाल दिया। काबुल का शासक सरदार दोस्त मुहम्मद ख़ां बड़े ज़ोर से शाह का सामना करने के लिए कंधार पहुँचा। जनवरी सन् १८३४ ई० में शाह की घोर हार हुई। वह सीस्तान की तरफ़

भागा और वहां से कष्ट झेलता हुआ हिंदुस्तान वापस लौटा।

पेशावर में सिख गवर्नर—मई सन् १८३४ ई०

इस से पूर्व इस की चर्चा हो चुकी है कि महाराजा ने पेशावर का इलाक़ा सुल्तान मुहम्मद ख़ां बारकज़ई को दे रक्खा था और उस से सालाना कर लिया करता था। महाराजा के मन में अफ़ग़ानों की ओर से सदा संदेह रहता था; इस लिए शाह शुजा और दोस्त मुहम्मद ख़ां के बीच युद्ध के समय महाराजा ने इसी को नीति-संगत समझा कि पेशावर देश को सीधे अपने अधिकार में कर ले। अप्रैल १८३४ ई० में सिखों के प्रसिद्ध जनरल सरदार हरी सिंह नलुआ के साथ एक बहुसंख्य सेना पेशावर भेजी, जिस का नेतृत्व कुँवर नौनिहाल सिंह को प्रदान किया। ख़ालसा सेना के पहुँचने पर सरदार सुल्तान मुहम्मद ख़ां और उस के भाई पीर मुहम्मद ख़ां ने शहर ख़ाली कर दिया और महाराजा के सरदारों ने उस पर अधिकार कर लिया। कुँवर नौनिहाल सिंह पेशावर का पहला सिख सूबेदार नियुक्त हुआ।

दोस्त मुहम्मद ख़ां का पेशावर पर आक्रमण

काबुल के शासक दोस्त मुहम्मद ख़ां को जब अपने भाइयों के पेशावर छोड़ देने का समाचार मिला तो वह आग बगूला हो गया, और उस ने एक बड़ी सेना के साथ काबुल से कूच किया। ख़ैबर का दर्रा पार कर के पेशावर के निकट मैदान में ख़ेमे डाल दिए, और अफ़ग़ानों को सिखों के विरुद्ध जिहाद पर अग्रसर करने में लगा। महाराजा को जब यह समाचार मिला तब वह तुरंत लाहौर से चल पड़ा, यद्यपि उस की अवस्था इस समय ५९ वर्ष की थी, और स्वास्थ्य भी अच्छा न था। डबल कूच करता हुआ वह

शीघ्र ही पेशावर पहुँच गया।[1] दोस्त मुहम्मद खां ने जब महाराजा की तैयारियों का हाल देखा तो घबरा गया। जब उस से कुछ न बन आया तो एक लज्जास्पद कार्य कर बैठा। महाराजा के दो एलची मिस्टर हार्लिन और फ़क़ीर अज़ीज़ुद्दीन उस के खेमे में थे। उस ने उन्हें नज़रबंद कर लिया और अपने साथ लेकर जलालाबाद वापस रवाना हुआ। फ़क़ीर अज़ीज़ुद्दीन बड़ा बुद्धिमान् और प्रतिष्ठित व्यक्ति था। उस ने उस अवसर पर बड़ी बुद्धिमानी से कार्य किया और दोस्त मुहम्मद को डरा-धमका कर, समझा-बुझा कर मुक्ति प्राप्त कर ली। संभव था कि यदि दोस्त मुहम्मद वापस न लौट जाता तो महाराजा, जिसे अपने दूतों का बड़ा भरोसा था, उसे अपने किए की सज़ा देता।[2]

पेशावर का प्रबंध

अब महाराजा ने पेशावर का पूर्ण रीति से प्रबंध करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। सीमा पर मुचनी और सिख डेरी जो आज शंकरगढ़ के नाम से प्रसिद्ध है दो नए क़िले बनवाने की आज्ञा दी[3] और सरदार हरी सिंह नलुवा को इस कार्य पर नियुक्त किया। उपरोक्त सरदार को पेशावर सूबे के फ़ौजी-विभाग का निरीक्षण सिपुर्द किया और राजा गुलाब सिंह माल

---

[1] 'ज़फ़रनामा-रंजीतसिंह' में नं० २३०

[2] अपने दूतों के बंदी होने का समाचार सुन कर महाराजा ने प्रतिज्ञा की थी जब तक एक अज़ीज़ुद्दीन के बदले हज़ार अफ़ग़ानों के खून से अपनी तलवार की प्यास न बुझा लूं लाहौर वापस न जाऊँगा। परंतु अज़ीज़ुद्दीन की प्रार्थना पर ध्यान देकर महाराजा ने अपना विचार त्याग दिया।

[3] ऐसा मालूम होता है कि महाराजा कुछ सिख वंशों को सरहद पर बसाना चाहता था। इसी उद्देश्य से कई नए गांव बसाए गए। जैसे शेरगढ़, सिखों की डेरी,

के काम पर नियुक्त हुआ।

दोस्त मुहम्मद खां के भाइयों को अपने हाथ में रखने के उद्देश्य से महाराजा ने सुल्तान मुहम्मद और पीर मुहम्मद खां को कोहाट और हश्त नगर के इलाक़े में तीन लाख रुपया वार्षिक आय की जागीर प्रदान की। इस के अतिरिक्त २५ हज़ार का इलाक़ा दोआबा में दिया। और भी बहुत से रईसों को जागीरें और पुरस्कार मिले।

लदाख़-विजय—सन् १८३४ ई०

जम्मू के आस-पास का पहाड़ी इलाक़ा राजा गुलाब सिंह के प्रबंध में था। गुलाब सिंह स्वभावतः बड़ा दूरदर्शी आदमी था। उस ने थोड़े ही समय में अपना अधिकार सुदृढ़ कर लिया और अवसर पा कर अपने योग्य सेनापति ज़ोरावर सिंह के नेतृत्व में बड़ी सेना लदाख़ की ओर भेजी। यह सरदार किश्तवार के रास्ते घाटियां पार करता हुआ सूरू की घाटी में जा पहुँचा, जहां लदाख़ के गवर्नर से उस की मुठभेड़ हुई। दो मास के युद्ध के अनंतर लदाख़ का हाकिम कर देने पर विवश हो गया। यह आज तक कश्मीर की रियासत का एक भाग है।

कुँवर नौनिहाल सिंह का विवाह—मार्च १८३७ ई०

कुँवर नौनिहाल सिंह का विवाह सरदार शाम सिंह अटारीवाले की बेटी से हुआ था। उन दिनों महाराजा का बल पूरे ज़ोरों पर था। इस कारण यह विवाह बड़े समारोह व उत्साह तथा धूम-धाम से किया गया।

चक खालसा इत्यादि जो आज तक इस इलाक़े में मौजूद हैं। परंतु महाराजा की मृत्यु के साथ ही यह प्रस्ताव समाप्त हो गया—देखिए भाई प्रेमसिंह लिखित 'महाराजा रंजीत-सिंह का इतिहास'।

दूर-दूर के राजों, महाराजों, गवर्नर-जनरल और बड़े-बड़े अंग्रेज़ी अफ़सरों को निमंत्रण दिया गया। अतएव अंग्रेज़ी सेना का कमांडर-इन-चीफ़ सर हेनरी फ़ीन और उस की स्त्री विवाह में सम्मिलित हुए। अभ्यागतों के सत्कार का प्रबंध बहुत उच्च कोटि का किया गया था। उन के आराम के लिए सब प्रकार के सामान किए गए। बारात के प्रस्थान के अवसर पर सभी प्रतिष्ठित अभ्यागत सजे हुए हाथियों पर सवार थे। दीन दुखियों में वितरण करने के लिए महाराजा ने हर हाथी पर दो-दो हज़ार रुपयों की थैलियां रखवा दी थीं। सिख शासन के साधारण सेवक से ले कर ऊँचे अधिकारी तक ज़र्क़-बर्क़ पोशाक में सजा हुआ था। देश के प्रत्येक कोने से लाखों की संख्या में भिखमंगे इकट्ठे हुए थे जो सड़क के दोनों ओर खड़े थे। इन पर अशर्फ़ियों और रुपयों की वर्षा हो रही थी। मैकग्रेगर लिखता है कि बारह लाख से अधिक रुपया ग़रीबों में बाँटा गया। अन्य इतिहास-कार इसी रक़म को बाईस लाख लिखते हैं। वास्तव में यह रक़म किसी दशा में भी २० लाख रुपए से कम न थी।[1]

सरदार शाम सिंह ने भी बारात के सत्कार में कोई कसर न उठा रक्खी प्रत्येक अतिथि के लिए उस के पद के अनुसार आवश्यक सामान प्रस्तुत किया गया। तीरबाज़ी, तलवार के खेल, तथा बाज़ीगरी के अच्छे-अच्छे करतब करने वालों ने बारातियों को प्रसन्न किया। दहेज़ में ११ हाथी, १०० घोड़े, १०० ऊँट, १०० गाय, १०० भैंस, ९०० कश्मीरी शालें, बहुत से रत्न और प्रचुर रुपए दिए। प्रतिष्ठित अतिथियों को मूल्यवान् ख़िलअतें

[1] इस विवाह के अवसर पर महाराजा को लगभग साढ़े ६ लाख रुपए तंबूल के के रूप में प्राप्त हुए। देखिए—'उम्दतुल्तवारीख़', दफ़्तर ३, भाग ३

दीं। इस विवाह पर सरदार शाम सिंह का पंद्रह लाख रुपया व्यय हुआ।[1] सारांश यह कि कुँवर नौनिहाल सिंह का विवाह क्या था मानो ज़माना निहाल हो गया। पंजाब के इतिहास में यह स्मृति योग्य घटना है।

जमरूद का युद्ध—अप्रैल सन् १८३७ ई०

सिख गवर्नर का पेशावर में नियुक्त होना काबुल के शासक दोस्त मुहम्मद खां के हृदय में काँटे की तरह खटक रहा था। सन् १८३५ ई० में उस ने पेशावर लेने का असफल प्रयास किया। फिर उस ने अंग्रेज़ों के साथ साज़-बाज़ आरंभ किया। जब उधर से भी निराशा हुई तो उस ने फिर एक बार रंजीतसिंह से दो-चार होने की ठानी। यह जान कर सरदार हरी सिंह नलुवा ने ख़ैबर के दर्रे के नाके पर अपने बल को और भी सुदृढ़ कर लिया। अप्रैल सन् १८३७ ई० में जमरूद में अफ़ग़ानों और सिखों में बड़ी विकट लड़ाई हुई। बहादुर सरदार हरी सिंह घोड़े पर सवार युद्ध स्थल में अपनी सेना को उत्साह दिलाने के लिए इधर से उधर भागा फिरता था कि इसी समय वैरी की गोलियों का शिकार हुआ। इस दुर्घटना से ख़ालसा सेना में सन्नाटा छा गया, और उन्हें विवश हो कर जमरूद के क़िले में शरण लेनी पड़ी। महाराजा यह समाचार सुनते ही भारी सेना लेकर पेशावर की ओर रवाना हुआ और उस ने रोहतास में पड़ाव किया। यहां से राजा ध्यान सिंह के नेतृत्व में ख़ालसा सेना डबल कूच करती हुई भारी तोपों के साथ छः दिन के थोड़े समय में, दो सौ मील से अधिक यात्रा तै कर के पेशावर पहुँच गई। सिख सेना को आते देख कर अफ़ग़ानों

---

[1] सर लैपेल ग्रिफ़िन, 'पंजाब चीफ़्स', भाग १, पृ० २४२ और 'उम्दतुल्तवारीख़,' दफ़्तर २, हिस्सा २, पृ० ३७७

का उत्साह जाता रहा और वह काबुल लौट गए।

सिखों और अंग्रेज़ों की काबुल पर चढ़ाई—सन् १८३८ ई०

तलवार के बल से पेशावर वापस लेने का दोस्त मुहम्मद का यह अंतिम प्रयत्न था। सन् १८३८ ई० में अंग्रेज़ों ने रूस की पेशबंदी करने के उद्देश्य से दोस्त मुहम्मद से मेल स्थापित करना चाहा। दोस्त मुहम्मद ने अपनी दोस्ती तथा सहायता के बदले में अंग्रेज़ों से यह चाहा कि वह उसे पेशावर वापस दिलाने में सहायता करें। अंग्रेज़ रंजीतसिंह से बिगाड़ करना न चाहते थे। अतएव दोस्त मुहम्मद खां के साथ मेल-मिलाप की बात-चीत समाप्त हुई। अंग्रेज़ों ने शाह शुजाउलमुल्क को काबुल की गद्दी पर फिर बिठाना चाहा। रंजीतसिंह भी इस शर्त पर शाह की सहायता करने पर राज़ी हो गया कि वह काबुल के बादशाह बनने पर सिंध पार के इलाक़े पर अपना अधिकार सदा के लिए छोड़ देगा। अतएव शाह शुजा और अंग्रेज़ी सेना ने बहावलपुर, सिंध और बोलान के दर्रे से होते हुए दोस्त मुहम्मद खां पर आक्रमण किया। यह युद्ध इतिहास में अफ़ग़ानिस्तान के युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है[1]।

महाराजा रंजीतसिंह की मृत्यु—२७ जून १८३९ ई०

अभी अफ़ग़ानिस्तान का युद्ध चल रहा था कि महाराजा रंजीतसिंह यकायक बीमार हो गया। वास्तव में महाराजा पाँच वर्ष से बीमारी का शिकार हो रहा था। परंतु उस के हृष्ट शरीर तथा हिम्मत ने उसे बचाए

[1] इस अवसर पर महाराजा रंजीतसिंह ने अंग्रेज़ी सेना को अपने देश से हो कर जाने की आज्ञा नहीं दी थी। इस लिए इस सेना को बोलान के दर्रे वाली लंबी यात्रा करनी पड़ी थी।

रक्खा। सन् १८३४ ई० में रंजीतसिंह पर लक़वे का पहला आक्रमण हुआ था, जिस समय वह कठिनता से मौत के मुँह से बचा था। बाद में महाराजा ने राज्य के प्रबंध का कुछ भाग अपने बुद्धिमान मंत्री राजा ध्यान सिंह को सौंप दिया था। परंतु फिर भी पंजाब के विस्तृत राज्य का भार इतना बड़ा था कि उस के बोझ से महाराजा का स्वास्थ नित्य-प्रति ख़राब होता जा रहा था। उस की तंदुरुस्ती बराबर बिगड़ती जा रही थी, यहां तक कि अप्रैल सन् १८३९ ई० में महाराजा बहुत बीमार पड़ा। इस बार महा-राजा भी अपने जीवन से निराश हो गया। मई मास के तीसरे सप्ताह में उस ने एक दरबार किया जिस में सभी राज्य के मुख्य व्यक्ति उपस्थित हुए। महाराजा ने अपने बड़े बेटे युवराज खड़क सिंह को राजतिलक दिया। दर-बार के उपस्थित सज्जनों ने उत्तराधिकारी को भेंटें प्रस्तुत कीं। राजा ध्यान सिंह उस का वज़ीर नियुक्त हुआ। इस बात की घोषणा करने के लिए सभी सूबेदारों तथा सेना के अफ़सरों के नाम आज्ञाएं प्रचारित की गईं। महाराजा के जीवनकाल का यह अंतिम दरबार था। उस के बाद महाराजा का रोग नित्य-प्रति बढ़ता गया और वह अंततः २७ जून बृहस्पतिवार के दिन इस असार संसार से उठ गया।

महाराजा का मृतक-संस्कार—२८ जून

अगले दिन महाराजा का मृतक-संस्कार बड़ी धूम-धाम के साथ किया गया। आस-पास के हज़ारों लोग अपने प्यारे महाराजा के अंतिम संस्कार में सम्मिलित हुए। महाराजा की रथी जहाज़ के आकार की बनाई गई, जिसे पूर्ण शाही ढंग से सजाया गया, और लाहौर के बड़े-बड़े बाज़ारों से निकाला गया। ज्यों-ज्यों यह जलूस चलता जाता था ऊपर से हज़ारों रुपए

निछावर किए जाते थे। मुंशी सोहन लाल लिखते हैं कि लोगों को महाराजा से इतना प्रेम था कि वह अर्थी के साथ जाते हुए फूट-फूट कर रो रहे थे। रावी नदी के किनारे महाराजा का शव अग्नि को भेंट किया गया। ठीक उसी समय क़िले से तोपख़ाने ने महाराजा की अंतिम सलामी उतारी। महाराजा के साथ उस की कई रानियां और दासियां सती हुईं।

ख़ालसा इतिहास का नया अध्याय

महाराजा रंजीतसिंह की मृत्यु के साथ ही ख़ालसा इतिहास का एक महत्वपूर्ण अध्याय समाप्त होता है। रंजीतसिंह ने पंजाब के एक छोटे से गाँव से उठ कर पंजाब भर में शानदार ख़ालसा साम्राज्य स्थापित किया। बल्कि पंजाब से बाहर के कई प्रांत, जैसे कश्मीर, लदाख़, पेशावर, जमरूद अपने राज्य में मिला लिए। अपने समय में रंजीतसिंह एक अद्वितीय व्यक्ति था। उस ने निर्धनता की अवस्था में अपनी जीवन-यात्रा आरंभ की, परंतु थोड़े ही काल में वह सामर्थ्य प्राप्त की, जिस से ख़ालसा का चारों तरफ़ डंका बजने लगा। मरते समय रंजीतसिंह एक विस्तृत राज्य, महती और सुव्यवस्थित सेना, और माल व रुपए से भरा-पूरा ख़ज़ाना अपने उत्तराधिकारी के लिए छोड़ गया। यह उसी के प्रयास का परिणाम था कि सिख अपने आप को आज एक संयुक्त जाति समझते हैं, और इसी सिख राज्य के आधार पर अपने राजनैतिक अधिकार सरकार से माँगते हैं। रंजीतसिंह के राज-प्रबंध तथा उस के व्यक्तिगत गुणों की चर्चा हम अगले अध्याय में करेंगे। यहां केवल यह बता देना पर्याप्त है कि उन्नीसवीं सदी में रंजीतसिंह के बराबर हमारे देश में कोई दूसरा व्यक्ति उत्पन्न न हुआ।

पंद्रहवां अध्याय

महाराजा का आर्थिक, राजनीतिक, तथा सैनिक प्रबंध

महाराजा का राज्य

महाराजा की मृत्यु के समय उस के विस्तृत राज्य का रक़्बा एक लाख चालीस हज़ार वर्ग मील से कुछ अधिक था, जिस की एक सीमा लदाख़ और इस्कर्दू की ओर तिब्बत तक फैली हुई थी। दूसरी सीमा ख़ैबर के दर्रे से चल कर सुलैमान की पहाड़ियों से टकराती हुई पश्चिम में शिकारपुर (सिंध, तक पहुँचती थी। पूर्व में अंग्रेज़ों के साथ सतलज नदी एक ओर की अंतिम सीमा निश्चित हो चुकी थी। यह राज्य चार बड़े-बड़े भागों में विभक्त था, जिन के नाम महाराजा के सरकारी पत्रों में इस प्रकार लिखे हैं—(१) सूबा लाहौर; (२) सूबा दारुलअमान मुल्तान; (३) सूबा जन्नत नज़ीर कश्मीर; (४) ओल्काय पेशावर।

ख़ालसा सरकार की आय—सन् १८३८-३९ ई०

महाराजा रंजीतसिंह के समय में सरकारी आय जो माल व अन्य द्वारों से थी नीचे दी गई है। यह अंक माल-विभाग के सं० १८६५ वि० के पत्र लेकर एकत्र किए गए हैं। कश्मीर और मुल्तान के सूबे की आय इजारे के रूप में वसूल की जाती थी। अतएव यह अंक हम ने माल-विभाग के सं० १६०१-२ वि० के पत्रों से लिए हैं, जहां इन सूबों का पंजसाला हिसाब एक जगह लिखा हुआ है। जागीरों के संबंध के अंक क़िसी एक स्थल



महाराजा रंजीतसिंह का दरबार

[पंजाब गवर्नमेंट रेकार्ड्स आफ़िस के अनुग्रह से]

पर लिखे नहीं मिलते। यह विभिन्न पत्रों से प्राप्त किए गए हैं। यह भी लगभग ठीक हैं।

(१) माल	(१) सूबा लाहौर	११,४६४,२२१	रुपए
	(२) सूबा मुल्तान	२,७२६,३००	,,
	(३) सूबा कश्मीर	२,११५,५६०	,,
	(४) सूबा पेशावर	१,२२१,६२०	,,
	कुल	१७,५५७,७४१	,,
(२) भेंट	(१) नियुक्त	२८१,५५७	रुपए
	(२) अनियुक्त	३२२,१००	,,
	कुल	६०३, ६५७	,,
(३) सायरात इत्यादि	(१) सायरात	६८०,३०३	रुपए
	(२) आबकारी	८,६६६	,,
	(३) रसूमात	७८,६६०	,,
	(४) कान नमक	४६३,९७५	,,
	कुल	१,५३१,६३४	,,
(४) जागीरों से		८,८००,०००	,,
	कुल जोड़, आय—	२८, ४९३,०३२	लगभग

महाराजा रंजीतसिंह के समय में चलनी रुपया अर्थात् स्टैंडर्ड सिक्के को टकसाल नानकशाही अमृतसरिया के नाम से निर्दिष्ट करते थे। इस में ग्यारह माशा दो रत्ती चाँदी होती थी।

खालसा सरकार के वार्षिक व्यय की तालिका

निम्न-लिखित अंक विभिन्न पत्रों से विभिन्न मदों के लिए एकत्र किए गए हैं। प्रायः यह सभी अंक ठीक हैं।

(१) हुज़ूर के व्यय में	४००,०००	रुपए
(२) सरकारान महल खास	४१,०००	,,
(३) दावत-सत्कार इत्यादि	१५०,०००	,,
(४) धर्मार्थ	१२०,०००	,,
(५) रोज़ीनादारों को[1]	७६०,०००	,,
(६) कारवारान	२५१,३००	,,
(७) अहल्कारों की जागीरें	३९६,०००	,,
(८) अमला	१२५,०००	,,
(९) शाहज़ादों को पेंशन[2]	१५५,०००	,,
(१०) पारितोषिक व खिलअत	३२०,०००	,,
(११) गुलाबखाना[3]	२,०००	,,
(१२) अस्तबल खास	५००,०००	,,
(१३) जखीराजात	१५०,०००	,,
कुल जोड़[4]—	३,३७०,३००	,,

[1] रोज़ीनादार से तात्पर्य ऐसे पेंशन पाने वाले या जागीरदार से है, जिसे रोज़ या नित्य के हिसाब से नक़द गुज़ारे के लिए मिलता था।

[2] यह पेंशन शाहज़ादा अयूब शाह अब्दाली और नवाब सरफ़राज़ खां मुल्तान वाले को मिलती थी।

[3] गुलाबखाने से तात्पर्य शफ़ाखाना या औषधालय से है।

[4] इस जोड़ में सेना का खर्च सम्मिलित नहीं है। वह फ़ौज के खर्च की तालिका में अंकित है और इस पुस्तक के अगले पृष्ठों में मिलेगा।

साम्राज्य का प्रबंध

महाराजा रंजीतसिंह अपने राज्य के माली व राजनीतिक प्रबंध की ओर अधिक ध्यान न दे सका। इस का कारण स्पष्ट प्रगट है। रंजीतसिंह पढ़ा-लिखा व्यक्ति न था। बचपन में ही बाप की छाया सिर से उठ जाने के कारण रियासत का भार उस के सिर पर आ पड़ा था। इस कारण वह अपनी शिक्षा की ओर ध्यान न दे सका। अपने पिता सरदार महान सिंह के जीवन-काल में भी उसे शिक्षा प्राप्त करने का अवसर न मिला क्योंकि सरदार महान सिंह अपनी छोटी-सी रियासत को सुदृढ़ करने में लगा था। रंजीतसिंह ने विरासत में कोई बड़ी भारी ज़मीन न पाई थी, जिस का प्रबंध करने में उसे किसी बड़े पैमाने पर विद्या का अनुभव प्राप्त हो जाता। इस के अतिरिक्त सिख सरदार पुश्तों से केवल मुल्क-गीरी से ही परिचित थे। माली तथा मुल्की प्रबंध से उन्हें न विशेष प्रेम था और न उस युद्ध के ज़माने में उन्हें इस ओर ध्यान देने का अवकाश ही था। इस कार्य को इन लोगों ने अपने हिंदू मुंशी व मुतसद्दियों को सौंप दिया था। रंजीतसिंह ने यही बातें उत्तराधिकार में प्राप्त कीं, और इन्हीं अवस्थाओं में वह पला तथा बड़ा हुआ। लड़कपन में ही उसे वैरियों से अपने रियासत की रक्षा के लिए युद्ध करना पड़ा। बीस वर्ष की अवस्था से पूर्व ही उस का लाहौर पर अधिकार हो गया। अब इस के दिल में यह शुभ और प्रबल इच्छा जागृत हुई कि सिक्खों की विच्छिन्न शक्ति को एकत्र करके लोहे के साँचे में ढाल दे। अतएव आरंभ से ही उस का ध्यान इस महत्वपूर्ण कार्य में लग गया और निरंतर २५ वर्षों तक वह विजय के कार्य में लगा रहा।

महाराजा के मार्ग में और भी कठिनाइयां थीं। प्रबंध का यह अंग

केवल उन व्यक्तियों की सहायता से पूरा हो सकता था जो रियासतों के माली व मुल्की बातों के मंतव्यों से पूरी जानकारी और योग्यता तथा अनुभव रखते हों। परंतु पंजाब में पिछले साठ-सत्तर वर्ष से नियम-पूर्ण शासन का क्रम टूट चुका था। इस लिए ऐसी योग्यता के आदमियों का मिलना कठिन था। फिर भी महाराजा ने साम्राज्य के उन विभागों को उन्नति देने में कोई कसर उठा नहीं रक्खी। वह सदा ऐसे व्यक्तियों की खोज में रहता था। अतएव सन् १८०९ ई० में जब काबुल सरकार का दीवान भवानी दास लाहौर में आया तो महाराजा ने उचित वेतन और जागीर का लालच देकर उसे अपने यहां नौकर रख लिया। दीवान भवानी दास ने एक नियमित दफ़्तर द्वारा शासन की नींव रक्खी; दफ़्तर चलाए, और ख़ज़ाने का प्रबंध किया। आय और व्यय के हिसाब रक्खे जाने लगे। इस के बाद महाराजा ने दिल्ली से दीवान गंगाराम और फिर दीवान दीनानाथ को बुलवाया, जिन्हों ने इस विभाग में मूल्यवान् सेवाएं कीं। जिस दिन से यह दफ़्तर जारी हुए उस दिन से लेकर खालसा शासन के अंत तक संपूर्ण विभागों के पत्र पंजाब सरकार के रेकार्ड दफ़्तर में उपस्थित हैं। उन के देखने से जान पड़ता है कि मुल्की प्रबंध अच्छी रीति से प्रचलित था।

देश का प्रबंध

मुलतान, कश्मीर और पेशावर के प्रबंध के लिए नाज़िम अर्थात् गवर्नर-नियुक्त थे। लाहौर सूबे में परगनेवार कारदार तैनात थे। बाद में बहुत से परगने मिला कर इस सूबे के भी बड़े-बड़े हिस्से बना दिए गए थे, जिन के प्रबंध के लिए कारदारों के ऊपर ऊँचे अधिकारी नियुक्त थे। जैसे जालंधर, काँगड़ा, वज़ीराबाद, और गुजरात—इन ज़िलों का पद छोटे-छोटे सूबों के

बराबर समझा जाता था। सूबे के संपूर्ण प्रबंध के लिए नाज़िम ज़िम्मेदार था। इन हाकिमों के दिलों पर महाराजा का भय इतना छाया हुआ था कि वह कुप्रबंध करने की हिम्मत नहीं कर सकते थे। महाराजा अकसर संपूर्ण इलाक़े का दौरा करता था। इलाक़े के चौधरियों और मुख्य व्यक्तियों से मिल कर सरकारी अफ़सरों के विषय में ज्ञान प्राप्त करता रहता था। महाराजा सब प्रकार से अपनी प्रजा की उन्नति और भलाई चाहता था, और प्रजा भी उसे जी-जान से चाहती थी।[1]

ज़मीन का प्रबंध

ज़मीन के लगान की रीति में महाराजा रंजीतसिंह ने कोई विशेष परिवर्तन न किया। उस काल की प्रथा के अनुसार एक तिहाई से लेकर पैदावार के आधे हिस्से तक राजा का अंश वसूल किया जाता था। किसान को कई प्रकार की सुविधाएं प्राप्त थीं। बहुधा सरकारी ख़ज़ाने से रुपया तक़ावी के रूप में दिया जाता था। ज़मीदारों के माल, मवेशी, हल इत्यादि को कोई महाजन क़र्ज़े के वसूली में क़ुर्क़ नहीं करा सकता था। नए कुएं खुदवाने में किसानों की आवश्यकतानुसार सहायता की जाती थी।[2]

अदालतें और दंड

उस समय में न्यायालयों का ढंग सीधा-सादा था। दीवानी के मुकद्दमे

---

[1] कितने ही 'दस्तूरुल-अमल' जिस में ज़िले के अफ़सर के कर्तव्य अंकित होते थे हमारी दृष्टि से गुज़रे हैं इन सब में अधिक महत्व का कर्तव्य यह बताया गया है कि प्रजा की उन्नति और भलाई प्रत्येक अधिकारी का प्रथम धर्म है।

[2] रंजीतसिंह की माल-व्यवस्था के विस्तृत वर्णन के लिए देखिए लेखक का अंग्रेज़ी लेख जो कि पंजाब हिस्टारिकल सोसायटी के सन् १९१८ ई० के 'जरनल' में प्रकाशित हुआ था।

गाँव की पंचायतें निर्णय करती थीं। अंग्रेज़ी अमलदारी के आरंभ होने तक पंचायती ढंग पंजाब में पूरे ज़ोरों से चलता था। डिग्री की पूर्ति होने पर सरकार पचीस फ़ी सदी डिग्रीदार से कोर्ट फ़ीस के रूप में ले लिया करती थी। फ़ौजदारी के मुक़द्दमे कारदारों की अदालतों में निर्णय होते थे और अपराधियों को दंड दिया जाता था। चोरी का पता लगाने में पैर के निशान का खोज लगाने वालों से काम लिया जाता था। जब पैर का चिह्न किसी गाँव तक पहुँचता तो चोर को प्रस्तुत करने की ज़िम्मेदारी संपूर्ण गाँव पर होती थी। गाँव की पंचायत उद्योग करके अपराधी को क़ैद करा देती थी। आधुनिक समय की भाँति नियम-पूर्वक जेलख़ाने न होते थे और न भिन्न-भिन्न अपराधी के लिए भिन्न-भिन्न दंड-विधान थे। साधारणतः जुरमाने का दंड दिया जाता था। बेंत या कोड़े भी लगाए जाते थे। कभी-कभी तो घोर अपराधों के दंड-रूप शरीर के अंग जैसे हाथ, नाक, कान, इत्यादि, भी कटवा लिए जाते थे। हमारे पढ़ने में कहीं भी ऐसी चर्चा नहीं आई कि महाराजा ने किसी को फाँसी या मृत्यु का दंड दिया हो। इस के प्रत्युत एक-दो अवसरों पर ऐसा अवश्य हुआ है कि महाराजा ने अपने नाज़िमों की भर्त्सना की और अप्रसन्नता प्रकट की, क्योंकि उन्हों ने एक दो अपराधियों को मृत्यु का दंड दे दिया था।[1] इसी संबंध में एक और अंग्रेज़ी लेखक लिखता है कि मैंने हाथ कटवाने के दंड पर जो कि महाराजा ने मेरी उपस्थित में एक व्यक्ति को दिया था, जब आश्चर्य प्रकट किया तो रंजीतसिंह ने मेरी ओर देख कर कहा कि "हम दंड अवश्य देते हैं परंतु जान किसी की नहीं निकालते।" कभी-कभी बड़े अद्भुत प्रकार के दंड दिए

---

१ विस्तार के लिए देखिए हांग बर्नर की पुस्तक—"थर्टीफ़ाइव इयर्स इन दि ईस्ट"।

जाते थे, जैसे लोहा गर्म करके अपराधी के माथे पर दाग़ दिया जाता था, या मुँह काला करके गदहे पर दुम की ओर सवार करके अपराधियों को शहर की गलियों में फिराया जाता था। फ़ौजी पत्रों में एक स्थान पर इस की चर्चा आती है, जब कि सन् १८४१ ई० में ला फ़ोंट फ़िरंगी पलटन के सिपाहियों ने विद्रोह किया तो उन में से कुछ को नौकरी से पृथक् कर दिया गया। कुछ सिपाहियों को जुरमाने का दंड दिया गया। काहन सिंह सिपाही का एक कान काट दिया गया और उस के माथे पर दाग़ दिया गया। जमीयत सिंह ने उबलते हुए तेल के कड़ाह में हाथ डाल कर अपने निरपराध होने का प्रमाण दिया। अतएव उसे न केवल क्षमा प्रदान की गई वरन् उसे सिपाही के पद से तरक़्क़ी देकर नायक पद पर नियुक्त किया गया।

महाराजा का ख़ज़ाना और तोशाख़ाना

'उम्दतुलतवारीख़' में मुंशी सोहन लाल ने एक-दो बार इस बात की चर्चा की है कि प्रारंभ में महाराजा के ख़ज़ाने में रुपए की इतनी तंगी थी कि वह अपनी सेना का वेतन न चुका सकता था। एक बार सेना को केवल दस हज़ार रुपए देना था परंतु वह भी मिलना कठिन हो गया। अंत में दीवान मुहकम चंद ने महाराजा से पाँच सौ रुपए लेकर थोड़ी-थोड़ी रक़म सेना में बाँट दी और फिर उन को साथ लेकर भेंट वसूल करने के लिए दौरे पर निकल गया, और छोटे-बड़े सर्दारों से रुपए जमा करके सेना का वेतन चुकाया, और इस प्रकार महाराजा की लाज रक्खी। चालीस वर्ष के शासन के अनंतर महाराजा अपने ख़ज़ाने में करोड़ों रुपए नक़द, सोने की मुहरें और लगभग २० लाख मूल्य के हीरे-जवाहिर छोड़ कर मरा। इन के अतिरिक्त संसार का सर्वोत्तम, अद्वितीय, और अनमोल हीरा कोह-

नूर महाराजा के तोशाख़ाने को सुशोभित कर रहा था। सन् १८४९ ई० में, पंजाब के मिलाए जाने के समय रंजीतसिंह का तोशाख़ाना अंग्रेज़ों के हाथों में आया। उस का प्रधान अधिकारी डाक्टर लोगन नियुक्त हुआ। उस ने उन तमाम वस्तुओं की जो तोशाख़ाना में थीं सूची बनाई थी। उन में नमूने के रूप में निम्नलिखित कुछ वस्तुओं के नाम अपनी स्त्री को विलायत लिखे थे। कोहनूर अमूल्य पत्थर और रत्न, नक़द और जिन्स, सोने चाँदी के प्याले, प्लेटें, गिलास, लोटे, खाना पकाने के बर्तन, कश्मीर के मूल्यवान् दुशाले, चोग़े और जामेदार इत्यादि, महाराजा की सुनहरी कुर्सी, चाँदी की बारादरी, कश्मीरी चाँदनी और शामियाना चाँदी के चोबों सहित, ज़िरह-बख़्तर, शाहशुजा का ख़ेमा, गुरु गोविंद सिंह की कलग़ी, हज़रत मुहम्मद की स्मृति की वस्तुएं, और महाराजा के पिता सरदार महान सिंह की वह पोशाक जो उस ने अपने विवाह के अवसर पर धारण की थी। यह मूल्यवान् तोशाख़ाना और माल और रुपए से भरा ख़ज़ाना रंजीतसिंह के बाहुबल का परिणाम था।

महाराजा का अस्तबल

रंजीतसिंह घोड़ों का बड़ा प्रेमी था। जहां कहीं उसे सुंदर और अच्छे चाल के घोड़े का पता चलता उसे प्राप्त किए बिना न रहता। पचीस हज़ार रुपए के घोड़े प्रति वर्ष ख़रीदे जाते थे। महाराजा के अस्तबल में एक हज़ार घोड़े रंजीतसिंह की सवारी के लिए अलग थे। इन में से कुछ ठेठ अरबी नस्ल के थे और कुछ ईरानी नस्ल के। अपने समय के चुने हुए और अद्वितीय घोड़े जैसे अस्प लैला, अस्प गौहरबार और अस्प सफ़ेद परी समय-समय पर महाराजा ने पेशावर के हाकिम सुल्तान मुहम्मद ख़ां से प्राप्त

किए थे। उन के लिए मूल्यवान् ज़ीन और साज़ तैयार कराए गए थे। महाराजा बड़े शौक़ से उन की सवारी करता था। रंजीतसिंह अपने समय का प्रसिद्ध शहसवार समझा जाता था।

घोड़ों के अतिरिक्त महाराजा के अस्तबल में सैकड़ों हाथी झूलते थे। हरगल अपनी 'कश्मीर-यात्रा-विवरण' में महाराजा के अस्तबल की चर्चा करते हुए लिखता है कि महाराजा की अपनी सवारी के लिए बड़ी-बड़ी डील-डौल के लगभग एक सौ हाथी थे। इन की सजावट और सोने-चाँदी के हौदे देख कर हरगल आश्चर्यान्वित रह गया था। वह लिखता है कि महाराजा हाथियों की सजावट पर प्रति वर्ष एक लाख से अधिक रुपए व्यय करता था और उन के रातिब इत्यादि पर चालीस हज़ार वर्षिक व्यय करता था।

महाराजा की सेना

महाराजा रंजीतसिंह की सेना का अधिकांश क़वायद सीखा हुआ था। सेना, यूरोपीय फ़ौजों की भाँति पलटनों और रिसालों में विभक्त थी और उन की तरह क़वायद सीखी हुई थी। इस सेना की वर्दी भी यूरोपियन फ़ौजों की भाँति जाकट और पतलूनों के ढंग की थी।

क़वायद जानने वाली सेना की आवश्यकता

ख़ालसा सेना को यूरोपीय साँचे में ढालने का विचार महाराजा रंजीतसिंह के हृदय में पहले-पहल संभवतः सन् १८०५ ई० में उत्पन्न हुआ। उन दिनों मरहठा राजा जसवंत राव होलकर अमृतसर में महाराजा के पास शरणागत हुआ। जसवंत राव की सेना यूरोपियन ढंग से सजी हुई थी। रंजीतसिंह ने इस सेना की क़वायद देखी। दूरदर्शी महाराजा तुरंत भाँप गया कि क़वायद सीखी सेना युद्ध-क्षेत्र में अशिक्षित सेना से अवश्य बाज़ी

ले जायगी। सन् १८०६ ई० में महाराजा ने अमृतसर में मेटकाफ़ के छोटे से क़वायद सीखे दल को बहादुर अकालियों से अपनी आँखों लड़ते देखा। इस से वह क़वायद सीखी हुई सेना की उपयोगिता और भी भली-भाँति समझ गया।

अतएव महाराजा ने अपने जी में इस बात का निश्चय कर लिया कि वह अपनी सेना को यूरोपीय ढंग की क़वायद सिखाएगा। उसे दृढ़ निश्चय था कि क़वायद सीखने से उस की सेना सब प्रकार से लाभ में रहेगी। ख़ालसा सैनिक साहसी, वीर, और युद्धप्रिय तो पहले ही था। क़वायद जानने पर उसे कोई हरा न सकेगा अर्थात् सोने पर सुहागे का काम होगा। फिर महाराजा की सेना के सामने कोई वैरी न ठहर सकेगा।

इस प्रस्ताव पर जल्दी अमल करने का एक कारण यह भी था कि सन् १८०६ ई० में, सतलज नदी तक अंग्रेज़ आ पहुँचे थे, जिन की सेना पश्चिमी फ़ौजी शिक्षा में निपुण थी। महाराजा स्वाभाविकतया बड़ा दूरदर्शी था इस लिए उस ने सोचा कि कभी यदि उसे अपने यूरोपियन पड़ोसियों से दो-चार होने का अवसर आ गया तो सफलता-पूर्वक उन का सामना करने के लिए उसे भी क़वायद सीखी हुई सेना रखनी चाहिए, जिस में वह किसी बात में अंग्रेज़ों से पीछे न रह जाय।

क्या-क्या ढंग ग्रहण किए ?

रंजीतसिंह ने आरंभ में अपने ख़ालसा सैनिकों को अंग्रेज़ी ढंग की शिक्षा देने के लिए ऐसे लोगों को नौकर रक्खा जो ब्रिटिश सेना में नायकी इत्यादि छोटे-छोटे पदों पर रह चुके थे, और अब या तो वहां से भाग आए थे या अलग हो चुके थे। इन में से बहुधा संयुक्त प्रांत आगरा व अवध

के निवासी थे जिन्हें पंजाब में पूरबिया या हिंदुस्तानी के नाम से पुकारते थे। अतएव आरंभ में महाराजा ने सिखों और पूरबियों की मिली-जुली पाँच पलटनें तैयार कीं।[1]

बाद में महाराजा ने बहुत उचित वेतन दे कर फ़्रांसीसी और अंग्रेज़ अफ़सर अपने यहां लिए, जिन्हों ने ख़ालसा सेना में बिल्कुल यूरोपीय ढंग पर शिक्षा दी।

परंतु रंजीतसिंह को अपने उद्देश्य की पूर्ति में बड़ी कठिनाइयां उठानी पड़ीं। सिख सैनिक घोड़े पर सवार हो कर युद्ध करने का अभ्यस्त था, और प्यादा सेना में भरती हो कर, और कंधे पर बंदूक़ रख कर लड़ने को घृणा की दृष्टि से देखता था, और न वह इसी बात पर राज़ी था कि उस पर किसी प्रकार का सैनिक बंधन डाला जाय। अतएव महाराजा की नए ढंग की पलटनों पर बहुधा लोग हँसी उड़ाते तथा बोलियां बोलते थे। परंतु महाराजा अपनी धुन का पक्का था और यह जानता था कि ख़ालसा सैनिक अभी तक यूरोपीय ढंग की क़वायद की श्रेष्ठता को नहीं समझे। इस लिए महाराजा ने नौजवान सिख लड़कों को जागीर, इनाम, और और क़िस्म के लालच देकर नए ढंग की प्यादा पलटन में भरती करना आरंभ किया। महाराजा उन के उत्साह को बढ़ाने के लिए स्वयं उन की क़वायद देखता, और उन के करतब देख कर प्रसन्न होता, अपने हाथों इनाम बाँटता जिस में सिख नवयुवक अपने आप भरती होना आरंभ कर दें और उन के

[1] चार्ल्स मेटकाफ़ ने यह पलटनें अपनी आँखों से लाहौर में देखी थीं। वह अपने पत्रों में इस बात की चर्चा करता है।

हृदयों में नई पैदल सेना का आदर और प्रभाव बढ़ जाय।

अतएव ऐसा ही हुआ और आठ दस वर्ष के भीतर ही महाराजा के निरंतर प्रयत्न सफल हुए और सेना का यह भाग सिखों में जन-स्वीकृत हुआ[1]। महाराजा रंजीतसिंह की मृत्यु के समय सिखों की क़वायद सीखी हुई पैदल सेना की संख्या सत्ताईस हज़ार तक पहुँच गई थी, जो ३१ पलटनों में विभक्त थी, और जिस का मासिक वेतन दो लाख सत्ताईस हज़ार के लगभग था[2]।

महाराजा का तोपख़ाना

पैदल सेना की भाँति महाराजा रंजीतसिंह ने अपने तोपख़ाने को भी उन्नत करने के लिए विशेष प्रयत्न किया। सच तो यह है कि यूरोपीय जातियों के हिंद में आने से पूर्व हमारे देश में तोपंदाज़ी की विद्या को ठीक प्रकार से जानने वाले बहुत कम आदमी थे। मुग़लों के तोपख़ाने और गोलंदाज़ हमारी दृष्टि में चाहे कितने ही अच्छे रहे हों, परंतु यूरोपीय तोपों के सामने इन की तोपें किसी योग्य न थीं। यही हाल मुग़लों के बाद भी रहा। सिख मिस्लदारों के पास न तो बहुत सी तोपें थीं और न उन्हें तोपख़ाने के विज्ञान से अधिक परिचय था। महाराजा यह हाल अच्छी तरह समझता था कि युद्ध-क्षेत्र में तोपख़ाने से बरसती हुई आग के मुक़ाबले में सवारी सेना अधिक समय तक नहीं ठहर सकती थी। उस ने इस नए

१ महाराजा रंजीतसिंह के दफ़्तर के फ़ौज के पत्र देखने से इस बात की पुष्टि होती है। इन नई पलटनों में, सन् १८१३ ई० से पूर्व के पत्रों में बहुधा पूरबिए, हिंदुस्तानी, गोरखे, और पठान सिपाहियों के नाम आते हैं। इन के बाद सिखों के नाम अधिक हैं।

२ पैदल सेना के विस्तृत हाल के लिए देखिए लेखक का वह लेख जो 'जर्नल अव् इंडियन हिस्ट्री', में फ़रवरी सन् १९२२ ई० में प्रकाशित हुआ था।

तथा प्रभावशाली अस्त्र को ख़ालसा सेना में प्रचलित करने के लिए शासन के आरंभकाल में ही दृढ़ निश्चय कर लिया था। अतएव बहुत रुपया व्यय कर के कई स्थलों पर तोपें ढालने के कारख़ाने स्थापित किए। पंजाब के विभिन्न स्थलों से योग्य मिस्त्री बुलाए गए और उन्हें इस कार्य पर लगाया गया। महाराजा के उद्योग का यह परिणाम हुआ कि पंजाब के मिस्त्रियों ने तोपसाज़ी की विद्या में शीघ्र ही योग्यता प्राप्त कर ली, और खालसा सेना के लिए अच्छी, सुंदर और उपयोगी तोपें तैयार कीं। महाराजा के कारख़ाने की ढली तोपें यूरोप की तोपों से किसी प्रकार घटिया न थीं बल्कि कई यूरोपियन फ़ौजी अफ़सरों की राय में उन से श्रेष्ठ थीं। सन् १८३१ ई० में, लार्ड विलियम बेंटिंक ने महाराजा को कुछ तोपें भेंट के रूप में दी थीं। महाराजा ने उसी नमूने पर और बहुत सी तोपें तैयार कराईं। ६ वर्ष बाद जब सर हेनरी फ़ीन, ब्रिटिश कमांडर-इन-चीफ़ लाहौर आया तो वह लार्ड विलियम बेंटिक वाली तोपों को न पहचान सका।[1]

महाराजा ने अपने तोपों को बड़े हृदयग्राही नाम दे रक्खे थे। जैसे जंग बिजली, फ़तेहजंग, ज़फ़रजंग, नश्तरजंग, शेरधाँय, सूरजमुखी, इत्यादि। प्रत्येक तोप का नाम और वर्ष उस पर अंकित होता था। उस के अतिरिक्त कुछ और भी वाक्य होते थे। कभी-कभी छंद, अंकित होते थे जिस से ढलने की तिथि उन्हीं छंदों से मालूम हो सकती थी।

महाराजा के तोपख़ाने में उन की मृत्यु के समय बड़ी-छोटी मिला कर

---

[1] तोपों के कारख़ाने की इतनी अद्भुत उन्नति में महाराजा के अफ़सर सरदार लहना सिंह मजीठिया का बहुत बड़ा भाग था। यह सरदार ज्योतिष-विद्या, गणित-शास्त्र और विज्ञान में दैवी शक्ति रखता था। उस के विस्तृत हाल के लिए देखिए—'पंजाब चीफ़्स', जिल्द १

चार सौ सत्तर के लगभग तोपें थीं, जिस के गोलंदाज़ों की मासिक तनख़्वाह तेंतीस हज़ार के लगभग थी।[१] गोलंदाज़ी के काम में सिख सिपाही इतने योग्य हो गए थे कि जब १८४५-४६ ई० में सिखों और अंग्रेज़ों के बीच युद्ध हुआ तो सिख गोलंदाज़ों ने ब्रिटिश तोपख़ाने का बड़ी दृढ़ता से सामना किया और वैरियों ने भी उन की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

सेना का नया रिसाला

पैदल सेना और तोपख़ाने के अतिरिक्त महाराजा ने सवारी सेना में भी न्यूनाधिक परिवर्तन किए और नए प्रकार के रिसाले तैयार किए, जिन्हें महाराजा के फ़्रांसीसी अफ़सर जर्नल इलार्ड ने शिक्षा दी। परंतु सेना के इस भाग पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया क्योंकि घोड़े पर सवार होकर युद्ध करने में ख़ालसा सैनिक पहले ही निपुण था, और न वह अपने युद्ध की प्राचीन परिपाटी को बदलने में राज़ी था।

पुरानी सवार सेना

पुरानी सवार-सेना में अधिकांश सिख सैनिक थे। इस सेना में अधिकांश उन सैनिकों का समावेश था जो किसी समय स्वतंत्र सरदारों के यहां नौकर थे जिन को महाराजा ने विजित किया था। सरदारों को विजय करने के बाद महाराजा उन की सेना को अपने यहां रख लेता था क्योंकि रंजीतसिंह का यह नियम था कि न तो वह किसी बहादुर सिपाही

---

[१]इन में वह तोपें सम्मिलित नहीं हैं जो विभिन्न क़िलों में रक्खी हुई थीं। छोटी हल्की तोपों को जंबूरक बोलते थे। यह ऊँटों की पीठ पर रखकर चलाई जाती थीं। तोपख़ाने के विषय पर देखिए लेखक का लेख जो 'जर्नल अव् इंडियन हिस्ट्री' में सितंबर १९२२ ई० में प्रकाशित हुआ था।

को हाथ से खोता था और न विजित सरदारों तथा उनकी सेना को असहाय अवस्था में छोड़ कर अपने लिए वैरियों की संख्या बढ़ाता था। महाराजा उन की शक्तियों को कार्य में लगाए रहने के उद्देश्य से उन्हें खालसा राज्य को विस्तृत करने में लगाए रहता था। महाराजा की मृत्यु के एक वर्ष पूर्व इस सेना की संख्या ११,००० के लगभग थी जिस का वार्षिक वेतन बत्तीस लाख रुपए के लगभग था।

जागीरदारों की सेना

इस सेना के अतिरिक्त बड़े-बड़े जागीरदारों के पास भी पुराने ढंग की सवारी सेना थी। जागीरदारी सेना की प्रथा हिंदुस्तान में मुसल्मानों के समय से बराबर चली आती थी। सिख मिस्लदारों ने भी इस प्रथा को जारी रक्खा और महाराजा रंजीतसिंह ने भी इसे ज्यों का त्यों रहने दिया। यद्यपि बाद में महाराजा ने उसे धीरे-धीरे कम कर दिया। सिख सरदारों की प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए महाराजा उन्हें जागीरें प्रदान किया करता था। उन के लिए यह आवश्यक था कि वह महाराजा की फ़ौजी सेवा करें। अतएव प्रत्येक जागीरदार को जागीर के मूल्य के अनुसार सरदारों की एक नियमित सेना अपने यहां रखनी पड़ती थी, और महाराजा की आज्ञा पाने पर उन्हें युद्ध पर भेजना पड़ता था। इस सेना को वस्त्र, अस्त्र तथा सवारी से सुसज्जित करने का संपूर्ण प्रबंध जागीरदार को करना पड़ता था। यह सब शर्तें जागीर के पट्टेनामे में दर्ज होती थीं, और हर एक सवार और उस के घोड़े का हुलिया रक्खा जाता था, जिस की नक़ल सरकारी दफ़्तर में रक्खी जाती थी, जिस में कि जागीरदार किसी प्रकार का धोखा न दे सकें। यह सब बातें केवल काग़ज तक ही सीमित न थीं, परंतु उन

पर महाराजा के राजत्व काल में पूर्ण रीति से अमल किया जाता था, जागीरदारों की सेना की समय-समय पर पड़ताल की जाती थी, और अंतर प्राप्त होने पर बड़े से बड़े सरदार का भी दंड देने में संकोच नहीं किया जाता था।[1] महाराजा के दफ़्तर के पत्रों से इस सेना का पूरा पता नहीं चलता, परंतु हमारे अनुमान के अनुसार उस की संख्या महाराजा की मृत्यु के समय पाँच-छः हज़ार से कम न थी क्योंकि उस के व्यय के लिए पचीस लाख से कुछ अधिक वार्षिक रक़म नियत थी।

ख़ालसा सेना की बहादुरी का सिक्का

यूरोपियन लोगों के हिंद में प्रकट होने के कारण यहां की युद्ध की प्राचीन परिपाटी अब कारगर न रह गई थी, और परिणाम यह हुआ कि हिंदुस्तानी सेना यूरोपीय सैनिकों के मुक़ाबले में हर बार हार खाती थी। महाराजा की तीव्रता, दूरदर्शिता, और समझदारी ने यह सब कुछ एक दम भाँप लिया था, और उस की ही निरंतर कोशिशों के कारण ख़ालसा सेना अजेय समझी जाने लगी थी। अतएव जब १८४६ ई० में अंग्रेज़ों और सिखों की चार बड़ी भयानक लड़ाइयां हुईं, तो उस समय यद्यपि महाराजा मर चुका था, और सेना का नेता कोई ईमानदार तथा विश्वस्त सेनापति न रह गया था, फिर भी ख़ालसा सेना अंग्रेज़ी सेना के बराबरी की ठहरी। ब्रिटिश सेना का कमांडर-इन-चीफ़ लार्ड गफ़ स्वयं इस बात को स्वीकार करता है कि "यदि ख़ालसा सेना में इस समय कोई योग्य सेनापति उपस्थित होता और उन्हें पूरी तरह अपनी सैनिक कुशलता को प्रदर्शित

---

[1] एक बार इसी प्रकार की भूल के लिए सरदार हरीसिंह नल्वा जैसा बड़ा जागीरदार दंड का भागी हुआ था—'उम्दतुल्तवारीख़' दफ़्तर, २, पृ० २७१

करने का अवसर देता तो हम नहीं कह सकते कि इस जंग का क्या परिणाम होता।''

यूरोपियन लोगों की राय

अंग्रेज़ तथा अन्य यूरोपियन यात्री महाराजा के दरबार में बहुधा आते-जाते थे। महाराजा उन्हें अपनी सेना के करतब दिखाया करता था। उन्हों ने जो राय ख़ालसा सेना के संबंध में बनाई थी उन में से कुछ हम नीचे अंकित करते हैं।

विलियम ऊज़बर्न अपनी पुस्तक के पृ० १३४ पर लिखता है कि २४ जून १८३८ ई० के प्रातःकाल हम महाराजा के तोपख़ाने की परेड देखने गए। हम उन की चाँदमारी देख कर बहुत चकित हो गए। दो सौ गज़ की दूरी से सिख गोलंदाज़ों ने चाँद पर ऐसी कुशलता से निशाना लगाया कि पहले ही बार में चाँद के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। ८०० गज़ से १२०० गज़ की लंबी दूरी की चाँदमारी भी इसी प्रकार अचूक ठहरी। जब हमें इस बात का पता चला कि इस प्रकार के गोले और तोपें अभी थोड़ा समय हुआ प्रचलित हुई हैं, तो हमारे आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

बैरन ह्यूगल आस्ट्रिया का एक यात्री १८३५-३६ ई० में लाहौर आया। वह अपने यात्रा-विवरण में लिखता है कि रंजीतसिंह ने कई बार मुझे अपनी सेना के सैनिक कौशल दिखाने को प्रतिष्ठा प्रदान की। मैं प्रत्येक बार उन की फुर्ती, रोबदार मुखाकृतियों और अचूक चाँदमारी को देख कर चकित रह गया। मेरा यह कहना यथार्थ होगा कि यह सेना इतनी ही समय की भरती की हुई यूरोपियन सेना की अपेक्षा कहीं अच्छी है। इस की सैनिक योग्यता देख कर मैं निश्चय-पूर्वक कह सकता हूं कि यह सेना

बाहर से आए वैरी के सामने लड़ कर विजय प्राप्त करेगी। आस्ट्रिया की फ़ौजें ठीक निशाना लगाने के लिए प्रसिद्ध हैं। परंतु ख़ालसा सेना उन से भी बढ़ी-चढ़ी है। जितनी गोलियां और गोले उन्हों ने चलाए सब के सब निशाने पर बैठे। कोई ख़ाली नहीं गया।

मिस्टर बार और विलियम ऊज़बर्न ने एक जगह लिखा है ख़ालसा सेना मारचंग के समय इस तरतीब से पाँव उठाती है, जैसे अंग्रेज़ी या अन्य यूरोपीय सेना। परंतु ख़ालसा सेना लंबा कूच करने में हमारी फ़ौजों से बढ़ी हुई है। वह बड़ी आसानी से एक स्थल से दूसरे स्थल तक कूच कर सकती है। कूच के समय हमारी सेना की भाँति बारबरदारी के लिए विशेष आश्रित नहीं हैं। प्रत्येक रेजिमेंट के साथ ठेकेदार होता है जो उन की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। जितने समय और व्यय में तीस हज़ार सिख सेना बड़ी सरलता से कूच कर सकती है इतने ही समय और व्यय में हमारी तीन हज़ार सेना कठिनाई से कूच कर सकती है।

महाराजा की सैनिक शक्ति

नीचे लिखी तालिकाओं पर सरसरी दृष्टि डालने से महाराजा रंजीतसिंह की सैनिक शक्ति और उस के व्यय का पूर्ण-रीति से अनुमान किया जा सकता है।[1]

महाराजा रंजीतसिंह की सेना-संबंधी तालिका—सन् १८३८-३९ ई०

विवरण	संख्या	वार्षिक वेतन रुपयों में
१—क़वायद-दां सेना—		
(अ) पैदल	२८६००	२,७५०,०००

[1] यह तालिकाएं लेखक ने लगभग ११ वर्ष हुए महाराजा रंजीतसिंह के दफ़्तर के सैनिक पत्रों का अध्ययन करके तैयार की थीं।

(आ) रिसाला	४६००	१,२३०,०००
(इ) तोपख़ाना	४८००	४००,०००
२—सवार सेना—		
(अ) सरादरों के अधीन डेरे	६६००	२,४२०,०००
(आ) ख़ास सवार	१२००	६३६,०००
(इ) जागीरदारों के डेरे	३४००	१,६००,०००
३—क़िलों की सेना—	१००००	६००,०००
जोड़	७२,२००	६,७३६,०००
४—अंग्रेज़ और फ़्रांसीसी अफ़सरों के वेतन जो पत्रों में अलग अंकित हैं।	लगभग	२००,०००
		६,६३६,०००

उपरोक्त अंकों के अतिरिक्त लगभग आठ लाख रुपए वार्षिक से अधिक सैनिक विभाग पर व्यय होता था। इस में फ़ौज की वर्दी, बारबरदारी का सामान, और मैगज़ीन इत्यादि के व्यय सम्मिलित थे, अर्थात् सैनिक विभाग पर कुल व्यय एक करोड़ सात लाख छत्तीस हज़ार रुपए के लगभग आता है, जो कि महाराजा की कुल आय का लगभग ३८ फ़ी सदी होता है।

माहवारी वेतन की तालिका

जो वेतन रंजीतसिंह के शासन-काल में सिपाहियों और अफ़सरों को मिलता था इस प्रकार है।

पद	प्रारंभिक वेतन	अंतिम वेतन
जरनल	४००	४६०

करनल	३००	३५०
कमीदान	६०	१५०
अजेटन	३०	६०
मेजर	२१	२५
सूबेदार	२०	३०
जमादार	१५	२१
हवलदार	१३	१५
नायक	१०	१२
सार्जंट	८	१२
फ़ॉरियर	७½	१०
सायर (सिपाही)	७	८½

अमले—जिस में ख़लासी, सक्का, घड़ियाली, सारबान, अलम-बरदार और लानगरी सम्मिलित थे, चार रुपया प्रति व्यक्ति पाते थे। बेलदार को अवश्य पाँच रुपए तथा मिस्त्री को छः रुपए मिलते थे।

महाराजा की नीति

महाराजा निस्संदेह देश का सर्वोच्च और प्रतिष्ठित व्यक्ति था। उस की प्रबल युक्तियों का तात्पर्य उस के दरबारी पूर्ण रीति से नहीं समझ पाते थे। वास्तव में महाराजा की नीति इतनी गहरी और दूरदर्शिता की होती थी कि बड़े से बड़े सरदार की तीव्र दृष्टि वहां तक न पहुँच पाती थी। सच तो यह है कि रंजीतसिंह मानुषी प्रकृति का पारखी था। उस का बहुधा यही प्रयत्न होता था कि वैरी का दमन कर के भी उसे इस बात का अनुभव न होने दे कि उस की पहली और प्रस्तुत प्रतिष्ठा में कोई अंतर

उपस्थित हो गया है। ऐसे व्यक्ति जिन्हें सल्तनतें स्थापित करने की इच्छा होती बिना संकोच मुल्कगीरी की नीति पर आचरण किया करते थे। अतः एव रंजीतसिंह ने भी आजन्म इसी कूटनीति पर आचरण किया। इसी लिए हमारी सम्मति में उस के विजय के कारणों की खोज करना आवश्यक है। हमें उस का उद्देश्य यही जान पड़ता है कि सिख जाति की गिरी अवस्था को बदल कर, उसे एक बलशाली शक्ति बनाना। इसी उद्देश्य में लगे हुए महाराजा ने मुल्तान, कश्मीर, पेशावर और लदाख़ तक के दूरस्थ प्रदेश पर विजय कर के उन पर ख़ालसा का झंडा ऊँचा किया। हमें इस में तनिक भी संदेह नहीं मालूम होता कि यदि सन् १८०९ ई० में सरकार अंग्रेज़ी की हद सतलज नदी तक न स्थापित हो जाती तो महाराजा यमुना नदी के तट तक अपनी विजय के क्षेत्र का अवश्य विस्तार कर लेता।

एक अच्छा अंश

परंतु इस जोश में आकर महाराजा ने सब कुछ नहीं भुला दिया था। उस की शासन-नीति में यह अच्छा अंश भी सम्मिलित था कि वह विजित हाकिमों को धक्का देकर बाहर नहीं निकाल देता था, वरन् उन के पद तथा योग्यता के अनुसार उन्हें अपने यहां उत्तरदायित्व के पदों पर नियुक्त करता था। उन के आराम और सुख के लिए बड़ी-बड़ी जागीरें प्रदान करता था। यह उदारता केवल सिखों तक ही सीमित न थी, वरन् मुसलमान सूबेदारों के साथ भी ऐसा ही वर्ताव किया जाता था। क़सूर के शासक नवाब कुत्बुद्दीन ख़ां, मनकीरा के शासक नवाब हाफ़िज़ अहमद ख़ां, मुल्तान के शासक नवाब सरफ़राज़ ख़ां और अन्य छोटे-बड़े रईसों को महाराजा की ओर से जागीरें और पेंशिनें मिलती थीं। दरबार में उन की प्रतिष्ठा

तथा आवभगत उन के पद के अनुसार की जाती थी ।

धर्म और राष्ट्र का प्रश्न

महाराजा का साम्राज्य समस्त सिखों का अपना शासन था । प्रत्येक सिख को, बिना दर्जा और पद की स्थिति के भेद के बराबरी के अधिकार प्राप्त थे । परंतु सिखों के अतिरिक्त भी लोगों को अपनी योग्यता तथा ज्ञान के अनुसार द्वार खुले थे । वास्तव में हमारी राय में महाराजा के शासन-काल में धर्म और राष्ट्र का प्रश्न कभी पैदा हो न हुआ । सरकारी नौकरी में कभी भी यह प्रश्न नहीं प्रस्तुत हुआ । आरंभ में महाराजा के तोप-ख़ाने का प्रधान अफ़सर मियां ग़ौस ख़ां था । उस की मृत्यु पर उस का बेटा सुल्तान महमूद ख़ां बढ़ते-बढ़ते अपने पिता के पद पर पहुँच गया । फ़क़ीर अज़ीज़ुद्दीन के मुसाहबी के पद के बराबर दरबार में किसी दूसरे व्यक्ति का पद प्रतिष्ठित न था । अन्य देशों में दूतत्व के महान कार्य पर फ़क़ीर अज़ीज़ुद्दीन ही नियुक्त किया जाता था । दीवान मुहकम चंद और मिश्र दीवान चंद ख़ालसा सेना के चुने हुए और प्रतिष्ठित सेनापतियों में से थे । दीवान मोती राम और दीवान सावन मल उच्चतम गवर्नर थे जिनकी अधीनता में महाराजा ने अपने सब से बड़े सूबे सौंप दिए थे । दीवान सावन मल का नाम आज तक मुल्तान के लोग बड़े गर्व और प्रेम से लेते हैं । उस की चौबीस वर्ष की सूबेदारी में सूबा मुल्तान उन्नति के शिखर पर पहुँच गया था । दीवान भवानी दास, दीवान गंगाराम और राजा दीनानाथ के निरीक्षण में सारी सलतनत के आय-व्यय का हिसाब रहता था । सरकारी ख़ज़ाना और तोशाख़ाना मिश्र बेलीराम और उस के भाइयों के आधीन था । मियां राजा ध्यान सिंह और उस के भाई मियां

राजा गुलाब सिंह डोगरा को जितना सम्मान महाराजा के दरबार में उस की आयु के अंतिम भाग में प्राप्त था, उतना कदाचित् ही किसी दूसरे दरबारी को प्राप्त हुआ हो। सारांश यह है कि हम इस प्रश्न को चाहे जिस दृष्टि-कोण से देखें हमें उस का एक ही उत्तर जान पड़ता है, अर्थात् महाराजा की प्रबंध-नीति उदार विचारों पर आश्रित थी, और उस में धर्म और जाति के प्रश्नों पर कुछ भी ज़ोर न दिया जाता था। [1]

[1] बहुधा यह कहा जाता है कि महाराजा के दरबार में इन विभिन्न और विरोधी दलों की उपस्थिति ही अंत में सिख समाज के पतन का प्रबल कारण बनी। विशेष कर ब्राह्मण और डोगरा अंश सिख धर्म और ख़ालसा की आकांक्षाओं के साथ सहानुभूति न रखते थे। हम यहां यह विवाद न उठाएंगे कि इस विचार-कोण में कितनी सत्यता है, और कितना झूठ। वह स्वतंत्ररूप से विचारणीय विषय है।



सोलहवां अध्याय

महाराजा के व्यक्तिगत गुण

महाराजा का रंग-रूप

रंजीतसिंह मियाना क़द का मनुष्य था। बचपन में ही चेचक निकल आने के कारण उस का चेहरा कुरूप हो गया था, और एक आँख भी बंद हो गई थी। परंतु प्रकृति की व्यवस्था में हमें क्षतिपूर्ति का नियम काम करता हुआ जान पड़ता है। यदि रंजीतसिंह को रूप-रंग कम मात्रा में प्राप्त हुआ था, तो प्रकृति ने बुद्धि और दूरदर्शिता कई गुना विशेष देकर इस कमी को पूरा किया था।

बहुत से यूरोपियन तथा हिंदुस्तानी सज्जन महाराजा के दरबार में आया जाया करते थे। उन्हों ने महाराजा के क़द, आकृति, और गुणों की चर्चा की है। वह लिखते हैं कि यद्यपि रंजीतसिंह रंग-रूप में सुंदर न था, परंतु उस के चेहरे से ऐसा रोब बरसता था कि देखने वालों के हृदयों में आप ही उस की बहादुरी और साहस का सिक्का जम जाता था। महाराजा की सफ़ेद दाढ़ी इतनी लंबी थी कि उस की नाभि तक पहुँचती थी, जिस से उस का चेहरा सुडौल और भरा हुआ मालूम होता था। उस का शरीर बड़ा चुस्त और फुर्तीला था। महाराजा की पोशाक सीधी-सादी और साफ़-सुथरी होती थी, यद्यपि रंजीतसिंह बहुधा अपने दरबारियों को अच्छी और मूल्यवान पोशाक धारण करने के लिए आदेश करता था।

रहन-सहन और व्यवहार

महाराजा अपने रहन-सहन में बहुत सादा था। राज्य के प्रधान वज़ीर से लेकर महल के छोटे कर्मचारियों तक सब से खुल्लमखुल्ला बिना संकोच बात-चीत करता था। कभी-कभी हँसी भी कर लिया करता था, और उत्तर में आमोद-युक्त बातें सुन कर क्रुद्ध न होता था। स्मृति इतनी तेज़ थी कि साधारण स्थिति के कर्मचारियों तक के नाम उसे याद थे। उन्हें नाम से पुकारता था। अवसर देख कर बड़ों के साथ बड़ा और छोटों के साथ छोटा हो जाता था। ग़रीबों की प्रार्थना स्वयं सुना करता था। उन्हें आश्वासन दिया करता और अपने हाथों से इनाम इत्यादि देता था। इन्हीं कारणों से वह सर्व-प्रिय था। परंतु इस के होते हुए भी महाराजा का रोबदाब इतना था कि बड़े से बड़ा अफ़सर भी भय के मारे काँपता था।

सैर व शिकार का शौक़

रंजीतसिंह को लड़कपन से ही सवारी का बड़ा शौक़ था। बड़ा होकर वह ऐसा बेधड़क शहसवार बन गया था कि उस की बराबरी का चाबुक सवार कदाचित् देश भर में मिलना कठिन था। यही कारण था कि महा-राजा को अपने अस्तबल में अच्छे से अच्छे घोड़े रखने का बड़ा शौक़ था। महाराजा को शिकार से भी बड़ा प्रेम था। जब कभी सरकारी काम से कुछ भी छुट्टी मिलती तो महाराजा अपने चुने हुए बहादुर सिपाहियों को साथ लेकर शिकार के लिए निकल जाता। शेर तथा चीते के शिकार से उसे विशेष प्रेम था, जिन्हें वह भाले या तेज़ तलवार की नोक से मारा करता था। मुंशी सोहन लाल ने 'रोज़नामचा रंजीतसिंह' में कई स्थलों पर यह अंकित किया है कि चाहे सेना के कूच के समय चाहे दौरे

के समय, जब कभी महाराजा को यह समाचार मिला कि निकट के जंगल में शेर या चीता रहता है, तो फ़ौरन उस ने सौ काम छोड़ कर अपना ध्यान शिकार की ओर दिया।

बहादुरी के गुण

रंजीतसिंह अत्यंत निडर और साहसी व्यक्ति था। युवावस्था में वह सदा आप सेना का नेतृत्व करता था। जहां कहीं देखता कि उस के सैनिकों को युद्ध-स्थल में कोई आपत्ति आ पड़ी है और उन के लिए वैरी पर विजय लाभ करना कठिन हो गया है, वह तुरंत अपनी तेज़ तलवार लिए आगे बढ़ता और वैरियों पर ऐसा बेधड़क आक्रमण करता कि वैरी का चित्त ठिकाने न रहता। वह स्वयं बड़ा साहसी और बहादुर था, और उसे शूरता की कथाएं सुनने-सुनाने का बड़ा प्रेम था। सभी यूरोपियन यात्रियों ने इस बात की चर्चा की है। बैरन वॉन ह्यूगल अपने यात्रा-विवरण में लिखता है कि मेरे हृदय पर सरदार हरी सिंह नलुवा की बहादुरी का हाल सुन कर बहुत प्रभाव पड़ा था, और यह सुन कर मैं चकित रह गया था कि इस बहादुर सरदार ने अकेले बिना किसी हथियार के एक चीते की गर्दन मरोड़ दी थी। इस प्रकार सरदार अमर सिंह मजीठिया जैसे ज़ोरदार सरदार ने अपनी कमान से चलाए तीर से शहतूत के वृक्ष को छेद कर पार कर दिया था[१]।

शूरों की प्रतिष्ठा

महाराजा बहादुर सिपाहियों की बड़ी इज़्ज़त करता था। उन की सदा

---

[१] जान पड़ता है कि वह वृक्ष सन् १८६५ ई० तक यूसुफ़ज़ई के इलाक़े में बना रहा। सर लैपेल ग्रिफ़िन लिखते हैं कि इस इलाक़े के बूढ़े लोग अब तक इस वृक्ष की ओर संकेत कर के बताते हैं कि इसे अमर सिंह ने अपने तीर से छेद डाला था।

हिम्मत बढ़ाता रहता था और पुरस्कार आदि दिया करता था। मुंशी सोहन लाल ने 'उम्दतुल्तवारीख़' में बीसियों ऐसी घटनाएं लिखी हैं। विलियम ऊज़बर्न भी इस बात की चर्चा करता है कि महाराजा के तोशाखाना बेहला में जो सदा उस के साथ-साथ रहता था सोने के कड़ों और कंठों की जोड़ियां हरदम मौजूद रहती थीं। जब कभी कोई सिपाही अपनी बहादुरी का परिचय देता तो महाराजा तुरंत सभी सेना की उपस्थिति में उसे कड़ा और कंठा प्रदान करता, जिस का प्रभाव शेष सेना पर ऐसा होता कि वह भी बढ़-चढ़ कर बहादुरी और योग्यता दिखाते, और पुरस्कार प्राप्त करते। इसी प्रकार जो सिपाही लड़ाई में घायल होकर सदा के लिए काम करने के अयोग्य हो जाते या मारे जाते, उन्हें और उन के आश्रितों को उन के गुज़ारे के लिए जागीर या रोज़ीना दिया जाता था[१]।

दिनचर्या

महाराजा समय का बड़ा पाबंद था। प्रत्येक कार्य, सोना, जागना, खाना, दरबार करना, नियत समय पर हुआ करता था। सर हेनरी फ़ीन अपनी पुस्तक में लिखता है कि रंजीतसिंह अपने खाने के वक़्त का बहुत पाबंद था। एक दिन प्रातःकाल महाराजा रूपड़ के मुक़ाम पर गवर्नर जनरल के साथ फ़ौज की क़वायद देख रहा था कि उस के जल-पान का समय आ गया। फिर गवर्नर-जनरल के पास आ बैठा। मुंशी शहामत अली ख़ां सन् १८३८ में महाराजा के दरबार में आया था। वह अपनी पुस्तक 'सिख और अफ़ग़ान' में महाराजा की रहन-सहन की चर्चा करते हुए लिखता है कि

[१] खालसा सरकार के फ़ौज़-विभाग के पत्रों में जो लेखक ने ११ वर्ष हुए तैयार किए थे ऐसे बहुत से नाम पाए जाते हैं, जहां घायलों और सेवा के अयोग्य लोगों के नाम पेंशिनें लगाई गई हैं।

रंजीतसिंह प्रातःकाल बहुत जल्द उठने का आदी है। नित्य-कर्म से निवृत्त होकर बहुधा घोड़े पर और कभी-कभी पालकी में बैठ कर वायु-सेवन के लिए निकल जाता है। आँधी हो या पानी, गर्मी हो या सर्दी, महाराजा बिलानाग़ा सवेरे घूमने जाता था। हवाख़ोरी के बाद जल्दी से कुछ जल-पान करके महाराजा दरबार किया करता था, जो साधारणतः १२ बजे तक रहता था। महाराजा सवेरे का दरबार निश्चित रूप से दरबार आम के भवन में नहीं किया करता था, वरन् जहां उस का जी चाहता कर लिया करता था। कभी वृक्षों की छाया में बैठ जाता, कभी शामियाना के तले। वह सवेरे के दरबार में विभिन्न विभागों के अफसरों से रिपोर्ट सुनता, उन पर आज्ञाएं निकलवाता और बाद में भोजन करता था। खाने के बाद आधा घंटा आराम करता था। फिर डेढ़ घंटे तक ग्रंथ साहब सुनता रहता।[1] दो-पहर के समय ही महाराजा बहुधा अपने कबूतर, बटेर, बाज़, इत्यादि को अपने हाथों से ही दाना डालता, और क़िले के भीतर वाले बाग़ में सैर के लिए कुछ काल तक टहलता। उस से छुट्टी पाकर फिर सरकारी काम की ओर ध्यान देता। एक छोटा-सा दरबार करता जिसे सरकारी पत्रों में दरबार सेह-पहरी लिखा है। उस में भिन्न-भिन्न विभागों के प्रधान अधिकारी एकत्र होते थे, और बहुधा हिसाब-किताब के विषय पर विचार किया जाता था। संध्या के समय महाराजा सैर के लिए निकल जाता था। साधारणतः उस समय फ़ौजी क़वायद का निरीक्षण करता, और रास्ते में जाता हुआ प्रजा

[1] ऊज़बर्न लिखता है कि महाराजा ने आज्ञा दे रक्खी थी कि उस के सोने के कमरे के नीचे ही एक घोड़ा तैयार रक्खा जाय जिस में सवेरे के समय वायु-सेवन के लिए जाने में देर न हो। अपनी ढाल और तलवार भी महाराजा अपने सिरहाने रख कर सोता था।

की प्रार्थनाओं और दुखों को सुनता।

परिश्रम की आदत

रंजीतसिंह बड़ा परिश्रमी व्यक्ति था। काम करने में उसे सुख प्राप्त होता था। बेकारी का जीवन उस के लिए कष्टकर था। छोटे से छोटे काम की ओर स्वयं ध्यान देता था। घोड़ों की नालबंदी और उन के रातिब के लिए स्वयं आज्ञा-पत्र निकालता था। अफ़सरों के नाम स्वयं परवाने लिखवाता था। बाहर से आई रिपोर्टों को स्वयं सुनता था। आज्ञा के वाक्य स्वयं बोलता था, जिसे पेशकार तुरंत अंकित कर लेते थे। उसे दूसरी बार सुनता था। जिस में कि देखे कि पेशकार ने पूरा अर्थ प्रकट किया या नहीं।[1] महाराजा की आज्ञा से प्रतिक्षण एक पेशकार उस के पास मौजूद रहता था, महाराजा चाहे महल में होता चाहे सैर पर, चाहे सेना की क़वायद देखता होता। बल्कि रात्रि के समय भी एक पेशकार सेवा में उपस्थित रहता था। महाराजा को जब कोई ज़रूरी काम याद आ जाता, उसे पेशकार फ़ौरन लिख लेता और नियमानुसार परवाने पर महाराजा की आज्ञा का समय, अवसर और स्थान भी अंकित कर देता। फिर महाराजा की आज्ञा से तुरंत आज्ञा-पत्र जारी कर दिया जाता। संसार के सभी महापुरुषों की भाँति महाराजा की आदत थी की कभी आज का काम कल पर न टालता। महाराजा की अद्भुत सफलता का बड़ा भेद इस में निहित है। परंतु इस परिश्रम ने उस के शरीर को तोड़ दिया। पचास वर्ष की अवस्था में ही रंजीतसिंह का स्वास्थ्य बिगड़ गया। यद्यपि महाराजा ने

[1] महाराजा के दरबार से परवाने फ़ारसी भाषा में प्रचारित होते थे। इन परवानों की भाषा पंजाबी-मिश्रित फ़ारसी है जिस का कारण यह भी है कि ज्यों-ज्यों महाराजा बोलता जाता था पेशकार उस का फ़ारसी में अनुवाद करता जाता था।

स्वास्थ्य-लाभ करने के बहुत प्रयत्न किए, परंतु निरंतर परिश्रम की आदत के कारण सब प्रयत्न विफल हुए और उनसठ वर्ष की थोड़ी अवस्था में ही महाराजा इस असार संसार से प्रस्थान कर गया।

महाराजा की शिक्षा

प्रारंभिक अवस्था में महाराजा रंजीतसिंह को शिक्षा प्राप्त करने का कोई अवसर न मिला। इस काल में सिख सरदारों को विद्योपार्जन से प्रेम न था, और न उन को इस ओर ध्यान देने का अवकाश था। अठारहवीं सदी के आरंभ में ख़ालसा धर्म और पंथ का अस्तित्व ही घोर कठिनाई की स्थित में था। इस लिए उसे बचाना प्रत्येक ख़ालसा का प्रधान धर्म था। ऐसी दशा में सिख सरदार विद्या-प्राप्त करने में किस प्रकार ध्यान दे सकते थे? विद्या और कला की उन्नति सदा शांति और चैन के काल में हुआ करती है। परंतु इन दिनों शांति और चैन देश में कहां थी? किताबी विद्या से अजान होते हुए भी रंजीतसिंह बहुत योग्य व्यक्ति था, और उस के मस्तिष्क में साधारण ज्ञान भरा हुआ था। यूरोपीय यात्री जो समय-समय पर महाराजा के दरबार में आया-जाया करते थे, स्पष्ट रूप से लिखते हैं कि महाराजा इतना सचेत है कि थोड़े समय के ही वार्तालाप में विभिन्न और महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर बातें कर जाता है।

विद्वानों की प्रतिष्ठा

महाराजा विद्वानों से मिल कर प्रसन्न होता था और उन को प्रतिष्ठा करता था।[1] इस में संदेह नहीं कि महाराजा अपने राजत्व-काल में किसी

[1] महाराजा के हृदय में शिक्षा के लिए कितनी प्रतिष्ठा थी इस का अनुमान इस घटना से किया जा सकता है कि जब सिख पेशावर के युद्ध में संलग्न थे, तो महा-

विशेषता के साथ देश में शिक्षा का प्रचार नहीं कर सका। परंतु हम यह यह बात दृष्टि से दूर नहीं कर सकते कि ऐसा करने के लिए न तो पंजाब में उसे ऐसी सुविधाएं प्राप्त थीं और न उसे जन्म भर इधर ध्यान देने का अवकाश ही मिला। फिर भी उस ने प्रयत्न करने में कुछ उठा न रक्खा। ईसाई प्रचारकों ने लुधियाने में अंग्रेज़ी पढ़ाने का स्कूल खोल रक्खा था। महाराजा ने सरकारी व्यय पर कुछ युवक विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने के लिए वहां भेजे। अपने बेटे शाहज़ादा शेरसिंह के लिए भी अंग्रेज़ी पढ़ाने का प्रबंध किया।[1] अपने कई दरबारियों को भी तैयार किया कि वह अपने बच्चों को अंग्रेज़ी शिक्षा दिलाएं। सरकारी व्यय पर लाहौर में अंग्रेज़ी स्कूल खोलने का प्रस्ताव किया गया था, जिस के लिए मिस्टर लारी को, जो लुधियाना के स्कूल का प्रसिद्ध विद्वान् था बुलवाया, परंतु यह प्रस्ताव असफल रहा क्योंकि मिस्टर लारी स्कूल में बाइबिल (इंजील) पढ़ाने पर ज़ोर दे रहा था, और महाराजा यह पसंद न करता था। फ़ारसी, हिंदी और गुरुमुखी पढ़ाने के शिक्षालयों को महाराजा की ओर से वज़ीफ़े और जागीरें मिलती थीं। जितने अंग्रेज़ी और फ़्रांसीसी सज्जन महाराजा के यहां नौकर थे, उन के साथ महाराजा अपनी ज़ात के होनहार बच्चे लगाए रहता था जिस में कि वह उन से कुछ न कुछ यूरोपीय विज्ञान सीख लें। डाक्टर मैक्रेगर और हांगबर्गर ने अपनी पुस्तकों में इस बात की कई स्थलों पर चर्चा की है कि उन के सिख विद्यार्थी अपने गोलंदाज़ों के लिए आज्ञाएं

राजा ने आज्ञा दी कि चमकानी की ज़ियारतगाह में जो मुसल्मानों का पुस्तकालय है उसे न नष्ट किया जाय।

[1] महाराजा शेर सिंह के अंग्रेज़ी हस्ताक्षर कई सरकारी पत्रों पर मौजूद हैं जो पंजाब सरकार के रेकार्ड दफ़्तर में रक्खे हैं।

अंग्रेज़ी भाषा से गुरुमुखी में अनुवाद कर दिया करते थे।[1]

महाराजा को स्वयं भी नए-नए ज्ञान प्राप्त करने का बड़ा शौक़ था। अतएव कप्तान वेड को सरकार के क़ानून दीवानी और इंग्लिस्तान की पार्ला-मेंट के शासन पर एक विस्तृत टिप्पणी लिखने के लिए कहा, और दरबार के वकील मुंशी सोहन लाल को उस का फ़ारसी में अनुवाद करने की आज्ञा दी।[2] इसी प्रकार अंग्रेज़ी कोर्ट मार्शल के क़ानून का भी अनुवाद कराया गया।

महाराजा को इतिहास से विशेष प्रेम था। वह इतिहास-लेखकों को पुरस्कार और प्रतिष्ठा देता था। इसी आश्रय के कारण मुंशी सोहन लाल दरबार के ऐतिहासिक विवरण लिखने के लिए वकील के पद पर नियुक्त किए गए। इन का लिखा हुआ रोज़नामचा महाराजा के हालात मालूम करने के लिए एक बड़ा और मूल्यवान् आधार है। इसी प्रकार दीवान अमर नाथ ने भी महाराजा की आज्ञा से 'ज़फ़रनामा-रंजीतसिंह' तैयार किया। इन के अतिरिक्त सैकड़ों रुपया व्यय कर के ग्रंथ साहब की गुरुमुखी भाषा में नक़लें कराईं और उन्हें बड़े-बड़े गुरद्वारों में रखवाया।

सारांश यह कि समय की प्रगति के अनुसार और काल की आवश्य-कताओं को देखते हुए रंजीतसिंह ने विद्या कि उन्नति के लिए न्यूनाधिक प्रयत्न अवश्य किया यद्यपि आधुनिक काल की कसौटी के अनुसार विशेष

[1] मियां क़ादिर बख़्श होनहार नवयुवक था और महाराजा के तोपख़ाने में नौकर था। महाराजा ने उसे अंग्रेज़ी पढ़ने के लिए लुधियाना भेजा। उस ने अंग्रेज़ी पुस्तकों की सहायता से तोपंदाज़ी की विद्या पर एक पुस्तक फ़ारसी भाषा में तैयार की थी।

[2] यह अनुवाद सोहन लाल की 'उम्दुतुल्तवारीख़' की अनुक्रमणिका के रूप में प्रकाशित हुआ था।

मूल्यवान् प्रयत्न नहीं समझा जा सकता।

महाराजा का धार्मिक जीवन

उस समय में किसी व्यक्ति का धार्मिक जीवन जाँचने की कसौटी केवल यह न थी कि उस का आचरण कैसा है, और उस के निजी व्यवहार क्या हैं, वरन् उस की कसौटी नियम-धर्म की पूर्ति और रिवाज-रस्म के मनाने पर आश्रित थी। जो व्यक्ति धर्म के भीतरी और बाहरी अंगों पर पूरी तरह से आचरण करता था वह धर्मवान् कहलाता था। अतएव रंजीतसिंह भी इसी प्रकार के धार्मिक मंतव्यों पर विश्वास रखता था। वह सिख धर्म में अटल विश्वास रखता था। नित्य ग्रंथ साहब का पाठ सुनता था।[1] गुरुबानी सुन कर उसे बहुत संतोष होता था। ग्रंथ साहब की अरदास कराने में बहुत नियम का पक्का था, और उस पर हज़ारों रुपया वार्षिक व्यय करता था। दरबार साहब अमृतसर में प्रसाद के लिए शहर की चुंगी की आमदनी में से नित्य एक निश्चित रक़म अलग की जाती थी, और अन्य बड़े-बड़े गुरुद्वारों के लिए भी ऐसा प्रबंध किया गया था। दरबार साहब के गुंबद पर सुनहरी काम करने में महाराजा ने एक बड़ी रक़म व्यय की थी। सिख गुरुद्वारों के अतिरिक्त ज्वालामुखी के मंदिर की सजावट पर भी हज़ारों रुपए ख़र्च किए। श्री तरनतारन और कनास राज के प्रसिद्ध तीर्थ को महाराजा बहुधा स्नान के लिए जाया करता था और वहां सैकड़ों रुपया ख़ैरात, दानपुण्य में व्यय किया करता था।

धार्मिक नीति

शासक होने के नाते रंजीतसिंह की धार्मिक नीति उदार थी। उस ने

---

[1] यह ग्रंथ साहब महाराजा ने सन् १८१८ ई० में करतारपुर से मँगाया था।

कभी किसी व्यक्ति को बलपूर्वक सिख धर्म में लाने के लिए प्रयत्न न किया; और न कुछ ऐसे बहुत उदाहरण मिलते हैं जिन से सिद्ध हो कि महाराजा ने किसी प्रकार का, रुपया या जागीर का लालच देकर लोगों को अपने मत में आने के लिए निमंत्रित किया हो।[1] महाराजा का राज्य स्थापित होने से पहले भी हिंदुओं की प्रवृत्ति गुरुबानी सुनने की तरफ़ थी, यद्यपि वह नियमित रूप से ख़ालसा धर्म में सम्मिलित न थे। महाराजा के समय में क़स्बों और शहरों में धर्मशालाओं की संख्या बढ़ती गई और इस प्रकार लोगों की प्रवृत्ति गुरुबानी सुनने की ओर बढ़ती गई। 'यथा राजा तथा प्रजा' वाली कहावत सदा से चरितार्थ होती आ रही है। ख़ालसा की बढ़ती हुई संख्या को देख कर महाराजा प्रसन्न अवश्य होता था। अतएव बहुत से हिंदू महाराजा की कृपा प्राप्त करने के लिए अपनी इच्छा से पावहल दीक्षा लेने में गर्व समझते थे। इसी संबंध में अलेग्जेंडर बर्नज़ ने, जो कई बार महाराजा के दरबार में आया, एक प्रतिष्ठित सिख के मुँह से सुन कर यह लिखा है कि लगभग पाँच हज़ार आदमी प्रति वर्ष सिख धर्म की दीक्षा लेते थे।[1] सर लैपल ग्रिफ़िन भी इस बात की पुष्टि में लिखता है कि महाराजा के राजत्व-काल में ख़ालसा धर्म के अनुयायियों की संख्या बहुत बढ़ गई।

[1] हमारे अध्ययन में केवल दो-तीन उदाहरण मिले हैं जहां किसी व्यक्ति को पावहल लेने पर पुरस्कार दिया गया हो या ऐसा करने का लालच दिया गया हो। एक सरकारी परवाने (९ वैशाख संवत् १८९१ वि०) में यह चर्चा आती है कि दीवान सिंह नायक नाम के नौकर को 'पावहल लेने' के बदले पाँच सौ रुपए की जागीर प्रदान हुई। मुंशी सोहन लाल 'उम्दतुत्तवारीख़' दफ़्तर ३ के पृ० २०४ पर इसी प्रकार की घटना अंकित करते हैं कि पंडित मधुसूदन के पुत्र को महाराजा ने कहा कि अगर तुम पावहल ले लो तो सेना में पद दिया जाय।

[1] बर्नज़ सन् १८३१ में पर्याप्त समय तक महाराजा के दरबार में ठहरा।

महाराजा का चरित्र

ऊपर के वर्णन से प्रकट हो गया होगा कि महाराजा स्वभावतः एक असाधारण व्यक्ति था। परंतु इन विशेषताओं के साथ ही उस में कई प्रकार की कमज़ोरियां भी थीं। वह अफ़ीम खाता था। शराब पीने की उसे बान थी; उसे नाच-रंग की महफ़िलों से प्रेम था, और ऐसे अवसरों पर भरी मजलिस में भी, लज्जा का परित्याग कर देता था। मोरां व गुल बेगम वाली घटनाएं भी इन्हीं माहफ़िलों का परिणाम थीं। परंतु महाराजा के जीवन के इस अंग का अध्ययन करते समय हमें यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि वह पंजाब में उस समय पैदा हुआ जब कि इन बातों को विशेष बुरी दृष्टि से न देखते थे। इस के अतिरिक्त वह ऐसे समाज में पला जिस में यह कोई बड़ा दोष न समझा जाता था। वरन् इस के विरुद्ध ऊँची स्थिति के लोग नाच-रंग की महफ़िलों को अपने जीवन का आवश्यक अंग समझते थे, अतएव महाराजा के दरबारी लोग भी ऐसा जीवन व्यतीत करते थे। जैसे वह थे वैसा ही महाराजा भी था। इस ने अपने उच्च पद से ऐसे ख़राब कार्यों के लिए कभी अनुचित लाभ न उठाया; और अपनी राजकीय शक्ति का कभी इस कार्य में दुर्व्यवहार न किया। एशिया और यूरोप के इतिहास में ऐसे सैकड़ों उदाहरण पाए जाते हैं जहां बादशाहों ने कई घरानों के गृहस्थ-जीवन की पवित्रता को ख़राब और बरबाद किया है। लेकिन रंजीतसिंह का चाल-चलन इस विचार से बिल्कुल पाक व साफ़ है। लारेंस, हांग बर्गर, ह्यूगल, सर हेनरी फ़ीन और अन्य कई यूरोपीय सज्जनों ने जिन का महाराजा से निजी संसर्ग हुआ, महाराजा की योग्यता और चरित्र के संबंध में उच्च सम्मति प्रकट की है।

संसार के इतिहास में ऐसे उदाहरण कम मिलते हैं कि एक व्यक्ति ने रंजीतसिंह की भाँति अकिंचनता की दशा से उठ कर इतना बड़ा राज्य स्थापित किया हो। फिर उस ने किसी भारी सामाजिक पाप का बोझ अपने सिर पर न लिया हो, और वह अपने परास्त वैरियों के क्रोध का पात्र न हुआ हो। महाराजा के लिए यह बड़े गर्व और प्रतिष्ठा की बात है कि जब से उस ने शासन की बागडोर अपने हाथ में ली, किसी व्यक्ति को भी मृत्यु का दंड न दिया। यह उस की नेकी, उदारता और सर्वप्रियता का परिणाम था कि उस की प्रजा बच्चे से लेकर बूढ़े तक उसे प्यार करती थी। उस के वैरी भी उस की कृपाओं के बोझ के नीचे दब कर चुप हो जाते थे।

महाराजा का इतिहास में स्थान—आश्चर्य-जनक उन्नति

रंजीतसिंह के उपरोक्त वर्णन को पढ़ कर यह प्रकट हो गया होगा कि यह असाधारण व्यक्ति एक छोटे से गाँव की सरदारी से जीवन आरंभ कर के थोड़े ही काल में एक विस्तृत राज्य का स्वामी बन बैठा। जी जान से प्रयत्न करके इस ने अपनी सेना को उन्नति के शिखर पर पहुँचा दिया। सोने चाँदी और जवाहिरात से भरा हुआ बृहत् ख़जाना एकत्र कर लिया। अपने दरबार की प्रतिष्ठा और शान को बढ़ाया। बड़ी योग्यता-पूर्वक अधीन तथा बाहरी—अंग्रेज़ों की—प्रबल शक्ति के साथ मैत्री का संबंध स्थापित किया। यह सब बातें महाराजा की महान् योग्यता और कार्य-संपादन शक्ति के प्रमाण उपस्थित करती हैं।

ख़ालसा की सम्मिलित शक्ति

परंतु मेरी सम्मति में इस से भी कई गुनी अधिक योग्य सेवा जो

महाराजा ने अपने जाति तथा देश की की वह ख़ालसा की छितरी हुई शक्ति को एक जगह एकत्र करना था। अठारहवीं सदी के अंत में ख़ाल-सा की नाव भँवर में फँसी हुई थी और डूबना चाहती थी, परंतु महाराजा उसे भँवर से निकाल कर किनारे पर ले आया और नियम-पूर्वक उस की मरम्मत कर के फिर उसे एक बार इस योग्य बनाया कि वह प्रबल तूफ़ानों का मुक़ाबला करती हुई, राजनीतिक समुद्र की यात्रा कर सके। मुग़ल शक्ति के ह्रास के समय ख़ालसा मिस्लदारों ने पंजाब के बड़े-बड़े इलाक़ों पर अधिकार कर लिया था, और आपस में जत्थाबंदी कर के ख़ालसा के लिए महत्त्वपूर्ण राजनीतिक शक्ति स्थापित कर दी थी। लेकिन अठारहवीं सदी के अंत में मिस्लें अपना काम कर चुकी थीं। उन में किसी प्रकार का मेल और जत्थाबंदी शेष नहीं रह गई थी। उन के इतिहास का ध्यान से अध्ययन करने से जान पड़ता है कि बड़े-बड़े सरदारों के दिल में आपस की सहानुभूति के स्थान पर स्वार्थ समा गया था, और वह एक-दूसरे की सहायता तो क्या करें एक दूसरे को निर्बल करने के उद्योग में लगे थे। आपस का युद्ध ज़ोरों पर था, और एक सरदार अपने पड़ोसी दूसरे सर-दार के रक्त का प्यासा बना हुआ था। अगर यही दशा कुछ और समय तक बनी रहती तो आश्चर्य नहीं कि थोड़े ही काल में ख़ालसा की संपूर्ण शक्ति नष्ट हो जाती, और इस कारण कि वह चारों ओर से ग़ैर-सिख शक्ति-यों से घिरे हुए थे, जल्द ही वह अपने महान् बलिदान से प्राप्त की हुई शक्ति को खो बैठे। उन के दक्षिण, उत्तर और पश्चिम में भावलपूर, सिंध, मुल्तान, डेराजात, पेशावर, हज़ारा और कश्मीर की शक्तिशाली मुसल्मानी शक्तियां स्थित थीं। उत्तर और पूर्व में जम्मू और काँगड़ा के पहाड़ी प्रदेशों

पर राजपूत राजे शासन कर रहे थे। पूर्व में अंग्रेज़ों का शासन यमुना नदी तक पहुँच चुका था। अतएव सिख मिस्लदार बत्तीस दाँतों में जीभ की तरह ग़ैर-सिख शक्तियों से घिरे हुए थे।

ख़ालसा की शक्ति को स्थायी बनाए रखने के लिए सिख मिस्लदारों में मेल और एकता स्थापित करने की इस समय अत्यंत आवश्यकता थी। रंजीतसिंह ने समय की आवश्यकता को पहचान कर सोचा कि मिस्लदारों का जत्थेबंद होना कठिन है। इस लिए उन सब को एक भारी राज्य के पुर्ज़ों में बदल देना चाहिए, अन्यथा अलग रहते हुए उन सब की शक्ति नष्ट हो जायगी। अतएव महाराजा अपने साहस, महत्त्व तथा ईश्वर प्रदत्त योग्यता से अपनी ऊँची आकांक्षा में सफल हुआ, और तीस वर्ष के भीतर-भीतर ख़ालसा की महान् सल्तनत स्थापित कर दी; वरन् अपने जाति के लिए एक गर्व के योग्य उदाहरण बन गया और यह दिखलाया कि सिखों ने पंजाब में शासन किया। यह भी सिद्ध कर दिया कि सदियों तक ग़ुलामी की ज़ंजीर में जकड़ा रहने और बाहरी देशों के शासन के कुचल डालने वाले बोझ के तले दबे रहने और शासन-प्रबंध में कोई भाग न लेने पर भी हिंदुस्तान ऐसे व्यक्ति उत्पन्न कर सकता है, जो न केवल अधीन रह कर मूल्यवान् सेवाएं कर सकते हैं, बल्कि स्वतंत्र शासक बन कर भी प्रबल राज्य स्थापित कर सकते हैं। निस्संदेह रंजीतसिंह संसार के असाधारण व्यक्तियों में एक था। ऐसे केवल बिरले उत्पन्न होते हैं, और संसार के तख़्ते को पलट दिया करते हैं। हम उस के व्यक्तित्व पर जितना भी गर्व करें थोड़ा है।

सिख-राज के पतन में रंजीतसिंह का उत्तरदायित्व

इस के संबंध में पाठकों के हृदय में यह प्रश्न अवश्य उत्पन्न होता

होगा की महाराजा की मृत्यु के बाद यह राज्य क्यों अधिक समय तक न स्थायी रहा, और शीघ्र ही नष्ट-भ्रष्ट हो गया। पंजाब-केसरी की मृत्यु के दस वर्ष के भीतर ही ख़ालसा ने अपनी राजनीतिक शक्ति खो दी, और रंजीतसिंह के परिश्रम और संलग्नता से स्थापित राज्य, १८४६ ई० में अंग्रेज़ी राज्य में मिला लिया गया। इस प्रश्न के कई अंग हैं जिन पर अलग-अलग विचार करने और उस का उत्तर देने में एक पूरी पुस्तक तैयार हो सकती है। इस लिए हम इस अवसर पर इस विवाद में नहीं पड़ना चाहते। हम अपने अध्ययन द्वारा इस परिणाम पर अवश्य पहुँचते हैं—यह कह देने में हमें तनिक भी संकोच नहीं है—कि सिख शासन के अधिक काल तक स्थायी न रहने का उत्तरादायित्व रंजीतसिंह के सिर पर नहीं रहता। जिस समय महाराजा ने अपनी अंतिम श्वास ली राज्य में पूर्ण शांति व्याप्त थी। सरकारी आमदनी बिना कठिनाई या दबाव के कौड़ी-कौड़ी वसूल हो जाती थी। ख़ालसा सेना नियम का पूर्णतः पालन करती थी। पतन का कोई चिह्न दिखाई न देता था, जिस से यह पता चलता कि रंजीत-सिंह की आंखें बंद होते ही ख़ालसा राज्य राजनीतिक भँवर में पड़ जायगा, और उसी भँवर में सदा के लिए विलीन हो जायगा। यह राजनीतिक भँवर कैसे उत्पन्न हुआ इस का उत्तर हम यहां न देंगे। यहां कवि के शब्दों में केवल इतना लिख कर संतोष करेंगे कि—

"इस भँवर में हज़ारों नावें डूब गईं—इस प्रकार डूब गईं कि उन का एक तख़्ता भी किनारे पर दिखाई न दिया।"

अनुक्रमणिका—१

महाराजा के नामी अफ़सरों की सूची[1]

इस अनुक्रमणिका के आकार को अधिक विस्तार न देने के ख़याल से हम ने यहां पर केवल थोड़े से मुख्य-मुख्य अफ़सरों के नाम दे कर ही संतोष किया है। इस का यह तात्पर्य नहीं कि इन अफ़सरों के अतिरिक्त और भी अफ़सरों को महाराजा के दरबार में प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त थी।

(१) सरदार फ़तेह सिंह कालियानवाला—पुराने फ़ौजी सरदारों में से था। महाराजा की ओर के इस सरदार को युद्ध और संधि संबंधी सब अधिकार प्राप्त थे। यह नरायणगढ़ के युद्ध में सन् १८०७ ई० में मारा गया।

(२) सरदार फ़तेह सिंह धारी—यह भी पुराने फ़ौजी सरदारों में से था। सन् १७९९ ई० में लाहौर दमन के समय महाराजा के साथ था।

(३) सरदार अतर सिंह धारी—सरदार फ़तेह सिंह का बेटा था, बाप के बाद अपनी सेना का नेता नियुक्त हुआ। मुल्तान-युद्ध में सन् १८१० ई० में, सुरंग से फटने से जल कर मर गया।

(४) सरदार मत सिंह भड़ानिया—महाराजा के दरबार में इस सरदार को बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त थी। सन् १८१३ ई० में पोंछ (कश्मीर) में युद्ध में मारा गया।

[1] यह अनुक्रमणिका अधिकांश मुंशी सोहन लाल की 'उम्दतुलतवारीख़' और सर लैपल ग्रिफ़न की पुस्तक 'पंजाब चीफ़्स' पर आश्रित है।

(५) सरदार ज्वाला सिंह भड़ानिया—सरदार मत सिंह का बेटा था। बाप की जागीर के अतिरिक्त एक लाख पचीस हज़ार वार्षिक आय की इस को अपनी जागीर मिली हुई थी। मुल्तान, कश्मीर और मनकीरा के युद्धों में इस ने विशेष कार्य संपादन किया।

(६) सरदार दल सिंह नहेरना—सरदार फ़तेह सिंह कालियानवाला का सुपुत्र था, और पिता की संपूर्ण सेना और जागीर इसे प्रदान हुई। आयु में अधिक होते हुए भी युद्ध के अवसर पर सरदार दल सिंह जवानों की भाँति लड़ता था। इस की सन् १८२३ में मृत्यु हुई।

(७) सरदार हुकुम सिंह अटारीवाला—महाराजा के पुराने सरदारों में से था। महाराजा इस सरदार से बहुधा परामर्श किया करता था। एक लाख वार्षिक के अधिक की उस की जागीर थी। सन् १८१३ में इस की मृत्यु हुई।

(८) सरदार निहाल सिंह अटारीवाला—दरबार में इस की बड़ी प्रतिष्ठा थी, यह महाराजा का बड़ा ही स्वामिभक्त सरदार सिद्ध हुआ।

(९) सरदार शाम सिंह अटारीवाला—सरदार निहाल सिंह का पुत्र था। पिता की मृत्यु पर उस की संपूर्ण जागीर और सेना तथा पद इसे प्रदान हुए। सन् १८४६ में सुबरावां के युद्ध में वीरता-पूर्वक लड़ता हुआ मारा गया।

(१०) दीवान मुहकम चंद—सर्वोच्च सैनिक अफ़सरों में से था। वीरता तथा सैनिक कुशलता में अपनी बराबरी नहीं रखता था। महाराजा को दीवान मुहकम चंद की स्वामिभक्ति का पूरा भरोसा था। अक्तूबर सन् १८१४ ई० में इस की मृत्यु हुई।

(११) दीवान मोती राम—दीवान मुहकम चंद का बेटा था। बहुत समय तक कश्मीर का गवर्नर रहा।

(१२) दीवान राम दयाल—दीवान मोती राम का बेटा था। छोटी अवस्था में ही सेना में एक ऊँचे पद पर आसीन था। अपने दादा की भाँति वीरता और रण-कौशल में अपनी बराबरी नहीं रखता था। सन् १८२० ई० में अठारह वर्ष की छोटी अवस्था में हज़ारा की लड़ाई में मारा गया।

(१३) दीवान हुकम सिंह चमनी—खेवड़ा के नमकसार और राजधानी लाहौर के चुंगी विभाग का अफ़सर था। इस के अतिरिक्त फ़ौजी पद पर भी आसीन था। तीन लाख वार्षिक की जागीर थी।

(१४) सरदार बुध सिंह सिंधानवालिया—महाराजा के बहादुर सरदारों में से था। सन् १८२७ ई० में, हैज़े के रोग में उस की मृत्यु हुई। बड़ी शान और गर्व का आदमी था।

(१५) अतर सिंह, लहना सिंह व दसावा सिंह—यह सरदार बुध सिंह सिंधानवालिया के भाई थे, और उस के बाद उस की फ़ौज तथा जागीर पर नियुक्त हुए।

(१६) सरदार करम सिंह चाहल—यह सरदार रंग-रूप तथा रहन-सहन में बड़ा सुंदर था। महाराजा के यहां इस की बड़ी पहुँच थी। सन् १८२३ में यूसुफ़ज़ई के युद्ध में मारा गया। उस के बाद उस का बेटा सरदार गुरमुख सिंह फ़ौज़ तथा जागीर का स्वामी हुआ।

(१७) सरदार जोध सिंह रामगढ़िया—रामगढ़िया मिस्ल का सरदार था। महाराजा उस की बड़ी प्रतिष्ठा किया करता था। सन् १८१६ में इस की मृत्यु हुई।

(१८) सरदार जोध सिंह व अमीर सिंह, लुधियानवाला—बाप और बेटा दोनों महाराजा के बड़े सरदारों में से थे। उन की डेढ़ लाख के लगभग की जागीर थी।

(१९) मियां ग़ौस ख़ां—पुराने फ़ौजी अफ़सरों में से था। सारा पैदल तोपख़ाना उस के अधीन था। बड़ा शूर और शान-शौकत का अफ़सर था। कश्मीर के युद्ध में उस की मृत्यु हुई।

(२०) सरदार सुल्तान महमूद— मियां ग़ौस ख़ां का बेटा था। बाप के स्थान पर तोपख़ाने का अफ़सर नियुक्त हुआ।

(२१) जनरल इलाही बख़्श—सवार तोपख़ाने का अफ़सर था। अच्छे रूप का और बोली का मीठा मनुष्य था।

(२२) इमाम शाह—ख़ास तोपख़ाने का अफ़सर और लाहौर क़िले के भीतर नियुक्त था।

(२३) मज़हर अली बेग—तोपख़ाना घुरनाल का अफ़सर था।

(२४) फ़क़ीर अज़ीज़ुद्दीन—इस की महाराजा के दरबार में बड़ी प्रतिष्ठा थी। प्रत्येक राजनीतिक मामले में महाराजा फ़क़ीर अज़ीज़ुद्दीन से परामर्श लिया करता था। फ़क़ीर अज़ीज़ुद्दीन के दोनों भाई नूरुद्दीन और इमामुद्दीन बड़े-बड़े पदों पर प्रतिष्ठित थे।

(२५) राजा ध्यान सिंह व गुलाब सिंह व सुचित सिंह— यह तीनों भाई जम्मू के रहने वाले थे। लाहौर में साधारण घुड़-सवारों में भरती हुए, परंतु अपनी योग्यता और बुद्धिमत्ता के कारण बड़े ऊँचे पद पर पहुँच गए। राजा ध्यान सिंह प्रधान वज़ीर नियुक्त हुआ। राजा सुचेत सिंह सवार सेना में चहारयारी डेरे का प्रधान अधिकारी था; और राजा गुलाब सिंह नाज़िम

के उच्च पद पर अधिष्ठित था। यह बाद में महाराजा गुलाब सिंह, जम्मू तथा कश्मीर का शासक, बना।

(२६) जमादार ख़ुशहाल सिंह—यह ज़िला मेरठ का रहने वाला था। जाति का गौड़ ब्राह्मण था। ग़रीबी की दशा में लाहौर पहुँचा, और साधारण पैदल सेना में भरती हुआ। अच्छे डील डौल का जवान था। बढ़ते-बढ़ते ड्योढ़ी प्रभावशाली पद तक पहुँचा।

(२७) सरदार तेजा सिंह--जमादार ख़ुशहाल का भतीजा था; अपने चचा के प्रभाव के कारण कंपुए-मुअल्ला के प्रधान अफ़सर के पद पर नियुक्त हुआ।

(२८) सरदार धना सिंह मलवई—महाराजा के पुराने सरदारों में से था। बड़ी सेना और जागीर का स्वामी था।

(२९) सरदार जोद सिंह मोकल—ऊँचे दर्जे के फ़ौजी सरदारों और महाराजा के मुख्य परामर्शकारियों में से था।

(३०) सरदार दलीसा सिंह मजीठिया—काँगड़े के पहाड़ी इलाक़े का नाज़िम था। बड़ी शान के साथ रहता था। मुंशी सोहन लाल उस को प्रतिष्ठत व्यक्ति और अपनी अक़्ल को औरों से ऊपर मानने वाला लिखते हैं।

(३१) सरदार लहना सिंह मजीठा—सरदार दिलीसा सिंह का बेटा था, पिता के बाद काँगड़ा का नाज़िम नियुक्त हुआ, ज्योतिष-विद्या और विज्ञान का अच्छा जानकार था।

(३२) सरदार रतन सिंह गिरजाखिया—फ़ौज तथा जागीर का स्वामी था। दरबार में एक समय इस की बड़ी प्रतिष्ठा थी।

(३३) मिश्र दीवान चंद—सर्वोच्च सेना के अफ़सरों में था। मुल्तान कश्मीर, मनकीरा की विजय में उस का बड़ा भाग था। मुल्तान-विजय के उपलक्ष में महाराजा ने मिश्र दीवान चंद को ज़फ़रजंग बहादुर व फ़तह व नसरत नसीब की उपाधियां प्रदान की थीं। सन् १८२५ में कुलंज के रोग में मरा।

(३४) सरदार गुलाब सिंह कुबता—सवार सेना का प्रधान अफ़सर था।

(३५) दीवान देवी सहाय—सरदार गुलाब सिंह कुबता के साथ ख़ास सवार सेना का प्रधान अफ़सर था।

(३६) सरदार हरी सिंह नलुवा—महाराजा का प्रसिद्ध जरनल था। बहादुरी व वीरता में एक ही था। कुछ काल के लिए कश्मीर तथा हज़ारा देश का गवर्नर भी था, और बड़ी सेना तथा जागीर का स्वामी था। सन् १८३७ ई० में जमरूद युद्ध में वैरी की गोली से मारा गया।

(३७) दीवान सावन मल—मुल्तान सूबे का नाज़िम था। यह अत्यंत न्यायी तथा बुद्धिमान् नाज़िम हुआ है। महाराजा के दिल में दीवान सावन मल के लिए बड़ी प्रतिष्ठा था।

(३८) दीवान भवानी दास—महाराजा का माल का वज़ीर था। पहले-पहल इसी ने माल का दफ़्तर चलाया। दरबार में दीवान भवानी दास का विशेष पद था। बड़ी अमीरी से जीवन व्यतीत करता था। इस का भाई दीवान देवी दास भी ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित था।

(३९) दीवान गंगा राम—यह कश्मीरी पंडित था। दरबार में ऊँचे पद पर नियुक्त था। महाराजा का आबकारी तथा सेना का दफ़्तर इसी ने चलाया; बड़ा मिलनसार आदमी था।

(४०) दीवान अयोध्या प्रसाद—दीवान गंगा राम का बेटा था, और अपने पिता के स्थान पर ख़ास फ़ौज के दफ़्तर का अफ़सर नियुक्त हुआ। यह बड़ी शान के साथ रहता था।

(४१) दीवान दीना नाथ—कश्मीरी पंडित था। अपनी योग्यता और बुद्धिमता के कारण बढ़ते-बढ़ते माल विभाग के वज़ीर के पद पर पहुँचा। पहले दीवान और बाद में राजा की पदवी पाई।

(४२) मिश्र बेली राम—आमरा खज़ाने का प्रधान अफ़सर था। कोह-नूर भी इस की रक्षा में रहता था। मिश्र बेली राम के दूसरे भाई भी ऊँचे पदों पर प्रतिष्ठित थे। मिश्र रूप लाल दोआबा जालंधर का नाज़िम था, मिश्र मेघ राज के पास गोविंदगढ़ के क़िले का ख़ज़ाना व तोशाख़ाना था, मिश्र राम किशन कुछ समय के लिए ड्योढ़ी बरदार के पद पर नियुक्त रहा, और पाँचवां भाई मिश्र सुखराज फ़ौज के एक ब्रिगेड का नेता (कमांडर) था।

(४३) बख़्शी भगत राम—संपूर्ण फ़ौजी क़ानून के दफ़्तर का प्रधान अफ़सर था, फ़ौज विभाग का समस्त हिसाब-किताब उसी के पास था।

(४४) मुंशी करम चंद—लाला करम चंद महाराजा के ख़ास मुंशियों में से था। दीवान तारा चंद, दीवान मंगल सेन व दीवान रतन चंद लाला करम चंद के बेटे थे, और दरबार में अच्छे पदों पर नियुक्त थे।

(४५) मुंशी राम दयाल—हज़ूरी मुंशी था। लेखनी का बड़ा पक्का था। महाराजा के शासन के व्यस्त दिनों में दफ़्तर की समस्त कार्यवाही इसी के हाथों हुआ करती थी।

(४६) भाई राम सिंह व भाई गोविंद राम—भाई बस्ती राम के पोते थे। महाराजा के दरबार में इन की बड़ी प्रतिष्ठा थी।

अनुक्रमणिका—२

महाराजा रंजीतसिंह के यूरोपीय कर्मचारियों की सूची

यह सूची हम ने फ़ौजी दफ़्तर के पत्रों से बनाई है। मिस्टर ग्रे ने अपनी पुस्तक में इस का विस्तृत हाल दिया है और इस के नामों के सिवा अन्य नाम भी दिए हैं, जो कि उन्हों ने विभिन्न पुस्तकों तथा रिपोर्टों से एकत्र किए हैं।

संख्या	नाम	मासिक वेतन	नियुक्ति की तिथि	विशेष परिचय
१	विंतूरा	२५००	१८२२	जनरल विंतूरा महाराजा रंजीतसिंह के प्रसिद्ध अफ़सरों में से था शिक्षित पैदल सेना इसी के निरीक्षण में थी। यह लगभग २० वर्ष तक खालसा दरबार की नौकरी में रहा।
२	अलार्ड	२५००	१८२२	जनरल अलार्ड और विंतूरा एक साथ ही महाराजा के यहां नौकर हुए थे। अलार्ड ने महाराजा के लिए शिक्षित सँवार पलटन तैयार की। यह जनवरी सन् १८२९ ई० में मरा और लाहौर में दफ़न किया गया।

संख्या	नाम	मासिक वेतन	नियुक्ति की तिथि	विशेष परिचय
३	अबूतवीला	१६६६	१८२७	जनरल अबूतवीला फ़ौजी अफ़सर होने के अतिरिक्त वज़ीराबाद और पेशावर का गवंनर भी नियुक्त हुआ।
४	मूसा ऑम्स	१०००	,,	यह व्यक्ति पैदल सेना में कमीदानी (नेतृत्व) के पद पर नियुक्त था।
५	ब्रौन दि मर्विस	७००	,,	पैदल सेना में कमीदानी के पद पर आसीन था।
६	कोर्ट	१६६६	,,	जनरल कोर्ट भी महाराजा के आधीन अफ़सरों में था। यह तोपखाने का अफ़सर था।
७	डाक्टर मार्टिन होनिग्बर्गर	६००	१८३०	यह व्यक्ति डाक्टर था। पंद्रह वर्ष तक लाहौर दरबार में रहा। इस ने पंजाब के विषय में एक मनोरंजक पुस्तक लिखी है।
८	कोर्टलैंड	५००	१८३२	पैदल सेना में नौकर था। कोर्टलैंड की स्त्री को भी महाराजा की

संख्या	नाम	मासिक वेतन	नियुक्ति की तिथि	विशेष परिचय
				ओर से ८००) वार्षिक वज़ीफ़ा मिलता था। सन् १८४२ में इन के नन्हें लड़के के लिए भी वज़ीफ़ा लगाया गया।
९	लेसली	१५०	१८३४	पैदल सेना में नौकर था।
१०	बियांकी	२७०	१८३५	इस के कार्य के संबंध में पत्रों में 'आबादकार' लिखा है। मिस्टर ग्रे इस को इंजीनियर लिखते है।
११	दंतरवेस	५००	१८३४	यह तोपख़ाने में नौकर था, और बारूदख़ाने का अफ़सर था। यह केवल कुछ मास के लिए लाहौर दरबार में रहा; बाद में अलग कर दिया गया।
१२	हार्लन	१०००	,,	नूरपुर चसरोठा और बाद में गुजरात का शासक (गवर्नर) नियुक्त हुआ। हार्लन का प्रायः एक ही उदाहरण है जो बड़ी बेइज़्ज़ती से नौकरी

संख्या	नाम	मासिक वेतन	नियुक्त की तिथि	विशेष परिचय
				से अलग किया गया था। विस्तार के लिए देखिये 'ज़फ़रनामा रंजीत-सिंह', पृ० २४३
१३	फ़ोक्स	५००	१८३६	सवार फ़ौज में नौकर था। सन् १८४१ ई० में जब अपनी पलटन (रजीमेंट) के साथ पहाड़ी स्थान मंडी में गया था, अपने सिपाहियों के हाथ से वध किया गया था।
१४	आर्गू	४००	,,	पैदल सेना में रंगरूटों को क़वायद सिखाने के लिए नौकर रक्खा गया था। सन् १८४३ में नौकरी से अलग कर दिया गया।
१५	स्टाइनबैक	७००	,,	पैदल सेना में कर्मचारी था। इस ने भी पंजाब के संबंध में एक पुस्तक लिखी है।
१६	फ़ोर्ड	८००	१८३७	फ़ौज में नौकर था।
१७	लाफोंट	२७०	१८३८	अवूतवीला के अधीन पलटन में

संख्या	नाम	मासिक वेतन	नियुक्त की तिथि	विशेष परिचय
				कमीदानी के पद पर नियुक्त था।
१८	देला रोश	५००	,,	पैदल सेना में कमीदानी के पद पर नियुक्त था।
१९	जैकब	३००	,,	नजीब पलटन में अमीर ख़ां के साथ कमीदानी के पद पर नियुक्त था।
२०	डाक्टर बेनेट	१०००	,,	यह व्यक्ति महाराजा के दरबार में डाक्टर के पद पर नौकर था।
२१	मौटन	८००	,,	यह सवार-सेना में नौकर था।
२२	लुई द फ़ियों	८००	१८४०	सवार सेना में था।
२३	राय द फ़ियों	३००	,,	यह लुई द फियों का बेटा था। पिता-पुत्र साथ नौकर हुए थे।
२४	ह्यर्वे	७००	,,	यह व्यक्ति डाक्टर था।
२५	हूरबान	२००	१८४२	यह व्यक्ति बेलदारों में नौकर था।
२६	कैनबिट	२५०	,,	यह व्यक्ति तोपख़ाने में था।
२७	ला फौंट द्वितीय	८००	१८४३	यह पलटन में कमीदारी के पद पर था।

संख्या	नाम	मासिक वेतन	नियुक्त की तिथि	विशेष परिचय
२८	जॉन होम	१५०	१८२६	यह व्यक्ति पलटन का कमीदान नियुक्त हुआ। धीरे-धीरे उन्नति कर के करनल के पद पर पहुँचा। कुछ समय के लिए गुजरात का गवर्नर भी रहा।
२९	गार्डोना	१५०	१८३१	यह व्यक्ति तोपख़ाने में नौकर था। बाद में राजा ध्यान सिंह पंजाब की सेना में प्रविष्ट हुआ। इस ने पंजाब के विषय में मनोरंजक वर्णन लिखा है, जो पुस्तक-रूप में निकला है।
३०	गारन	१५०	१८२०	रंगरूटों को क़वायद सिखाने के लिए नौकर रक्खा गया।
३१	कनूरा	२००	१८४१	यह व्यक्ति तोपख़ाने में नौकर था। सन् १८४८ ई० में सरदार चतुर सिंह, हज़ारा गवर्नर की आज्ञा से गोली से मारा गया।

अनुक्रमणिका—३

महाराजा रंजीतसिंह का कुटुंब[1]

रंजीतसिंह

- खड़क सिंह १८०२–४०
  - नौनिहाल सिंह १८२१—४०
- ईशर सिंह १८०४–०५
- शेर सिंह १८०७–४३
  - परताब सिंह १८३१–४३
  - देवा सिंह जन्म १८४२
  - सहदेव सिंह जन्म १८४३
- तारा सिंह १८०७–०९
- पेशोरा सिंह १८१९–४३
  - जगजोत सिंह जन्म १८४३
- कश्मीरा सिंह १८१९–४४
  - फ़तेह सिंह जन्म १८४४
- मुल्ताना सिंह १८१८–४६
  - किशन सिंह जन्म १८४०
  - केसरा सिंह जन्म १८४२
  - अर्जुन सिंह जन्म १८४०
- दलीप सिंह १८३७–९२

---

[1] यह अनुक्रमणिका सर लैपल ग्रिफ़न की पुस्तक 'पंजाब चीफ़्स' पर अवलंबित है।

महाराजा रंजीतसिंह की सोलह रानियां थीं जिन के नाम नीचे दिए जाते हैं। इन में से पहली आठ तो ऐसी थीं, जिन के साथ महाराजा का नियमपूर्वक विवाह हुआ था, और शेष आठ को महाराजा ने केवल चादर डालने की रीति पूरी कर के हरम में ग्रहण कर लिया था—

(१) रानी महताब कुँवर—सरदार गुरुबख़्श सिंह कन्हैया और उस की पुत्री रानी सदा कुँवर की बेटी थी। सन् १७९६ में उस का विवाह रंजीत-सिंह के साथ हुआ था। महाराजा शेर सिंह और कुँवर तारा सिंह इसी रानी के बेटे समझे जाते हैं। सन् १८१३ ई० में इस की मृत्यु हो गई।

(२) रानी राज कुँवर—इस रानी का दूसरा नाम दातार कुँवर भी था। साधारण लोगों में यह रानी माई नकीं के नाम से प्रसिद्ध थी। रानी राज कुँवर सरदार ज्ञान सिंह नकई की बहन थी। सन् १७९८ ई० में इस का विवाह रंजीतसिंह के साथ हुआ था। महाराजा खड़क सिंह इसी रानी के पेट से था। सन् १८१८ में इस की मृत्यु हुई।

(३) रानी रूप कुँवर – यह कोट सैयद महमूद ज़िला अमृतसर के एक ज़मींदार सरदार जयसिंह की बेटी थी। सन् १८१९ ई० में इस का विवाह हुआ था।

(४) रानी लक्ष्मी—यह गुजरानवाला के एक सरदार दीसा सिंह सिंधू की बेटी थी। सन् १८२० में इस की महाराजा के साथ शादी हुई।

(५-६) रानी महताब कुँवर और रानी राजबंसो दोनों बहनें थीं, और राजा संसार चंद काँगड़ा-नरेश की एक रखैली के पेट से थीं। महाराजा ने इन दोनों के साथ सन् १८३० ई० में विवाह किया।

(७) रानी राम देवी—गुजरानवाला के सरदार गुरमुख सिंह की बेटी थी।

(८) रानी गुलबेगम—गुलबेगम अमृतसर की एक सुंदरी मुसलमान वेश्या थी। सन् १८३२ ई० में महाराजा ने नियमपूर्वक उस के साथ विवाह कर लिया, और उसे अपने महल में ग्रहण कर के रानी गुलबेगम की पदवी दी।

(९) रानी देवी—यह रियासत जसवां के वज़ीर की बेटी थी।

(१०-११) रानी रतन कुँवर और रानी दया कुँवर—यह दोनों सरदार साहब सिंह हाकिम गुजरात की विधवाएं थीं। सन् १८११ में जब सरदार साहब की मृत्यु हुई तो महाराजा ने इन दोनों को अपने महल में ग्रहण कर लिया। रानी रतन कुँवर के पेट से कुँवर मुल्ताना सिंह और रानी दया कुँवर के पेट से कुँवर कश्मीरा सिंह और पेशौरा सिंह उत्पन्न हुए थे।

(१२) रानी चाँदकुँवर—मौज़ा चैनपुर ज़िला अमृतसर के एक सरदार जयसिंह की बेटी थी। सन् १८१५ ई० में महाराजा के साथ उस का विवाह हुआ।

(१३) महारानी महताब कुँवर—मौज़ा मूला ज़िला गुरदासपूर के चौधरी सुजान सिंह की बेटी थी। सन् १८२२ ई० में उस का विवाह महाराजा के साथ हुआ था।

(१४) रानी सम्मान कुँवर—सतलज पार के सूबा सिंह नामी एक मलवी जाट की पुत्री थी। सन् १८३२ में इस का विवाह हुआ था।

(१५) रानी गुलाब कुँवर—मौज़ा जगदेव, ज़िला अमृतसर के एक ज़मीदार की बेटी थी। सन् १८३९ ई० में इस की मृत्यु हो गई।

(१६) रानी जिन्दां—मौज़ा चार ज़िला अमृतसर के मना सिंह नामी एक जाट की पुत्री थी। मना सिंह महाराजा की सवारी सेना में नौकर था। महाराजा दिलीप सिंह इसी के पेट से था।

उपरोक्त रानियों के अतिरिक्त महाराजा रंजीतसिंह के महल में बहुत सी रखैलियां भी थीं, इन में कुछ का पद तो रानियों के बराबर था। और उन में से कुछ महाराजा के साथ चिता में जल कर सती भी हो गई थीं।

महाराजा रंजीतसिंह के सात बेटे थे, जिन के नाम नीचे दिए जाते हैं।

(१) कुँवर खड़क सिंह--यह महाराजा का सब से बड़ा बेटा था। रानी दातार कुँवर के पेट से सन् १८०२ में उत्पन्न हुआ। महाराजा के पीछे सन् १८३९ में गद्दी पर बैठा, परंतु डेढ़ साल के भीतर ही वह इस असार संसार से उठ गया।

(२-३) कुँवर शेर सिंह व कुँवर तारा सिंह--यह दोनों राजकुमार रानी महताब कुँवर के बेटे थे। कुँवर शेर सिंह जनवरी सन् १८४१ ई० में गद्दी पर बैठा। सितंबर सन् १८४३ ई० में सरदार अजीत सिंह सिंधानवालिया के हाथों क़त्ल हुआ। कुँवर तारा सिंह की मृत्यु सन् १८५९ ई० में हुई।

(४-५) कुँवर कश्मीरा सिंह तथा कुँवर पेशौरा सिंह। यह दोनों राजकुमार रानी दया कुँवर गुजरातवाली के पेट से थे।[1] इन दोनों भाइयों को महाराजा ने स्यालकोट का तालुका जागीर में दे रक्खा था। सन् १८४३ ई० में जब लाहौर दरबार में खलबली मची हुई थी तो कुँवर कश्मीरा सिंह

[1] इन राजकुमारों के जन्म के संबंध में इतिहासकारों ने भिन्न-भिन्न मत निश्चित किए हैं, जो हम ने विस्तार के साथ इस पुस्तक में दिए हैं। देखिए, पृ० ९६

खालसा सेना के क्रोध का शिकार हुआ। इस के एक साल बाद दूसरा भाई कुँवर पेशौरा सिंह का भी क़िला अटक में वध कर दिया गया।

(६) कुँवर मुल्ताना सिंह—यह राजकुमार रानी रतन कुँवर गुजरात वाली के पेट से था। इस की मृत्यु सन् १८४६ में हुई।

(७) कुँवर दिलीप सिंह—यह राजकुमार रानी जिंदां के पेट से था, और सन् १८३७ में उत्पन्न हुआ था। महाराजा शेर सिंह के पीछे, सन् १८४३ ई० में गद्दी पर बैठाया गया। पंजाब विजय के दो साल बाद, महाराजा दिलीप सिंह इंग्लिस्तान को चला गया, और शेष आयु वहीं पर व्यतीत की। इस की माता रानी जिंदां भी बाद में इंग्लिस्तान चली गई थी, और उस की भी वहीं मृत्यु हुई।



अनुक्रमणिका—४

आधार-ग्रंथों की सूची

नीचे की सूची में केवल उन पुस्तकों के नाम अंकित किए गए हैं जिन में से हवाले के रूप में हम ने उद्धरण लिए हैं। इस का यह तात्पर्य नहीं कि इस सूची में महाराजा रंजीतसिंह के इतिहास के संबंध में संपूर्ण पुस्तकें आ गई हैं —

(१) ख़ालसा दरबार रेकार्ड्स—भाग १ व २। यह दोनों पुस्तकें लेखक ने स्वयं संपादित की हैं, और यह पंजाब सरकार द्वारा प्रकाशित हुई हैं। पहली जिल्द में, ख़ालसा सरकार के सेना-विभाग के कुल पत्रों की सूची लिखी है।

(२) ज़फ़रनामा रंजीतसिंह—यह पुस्तक फ़ारसी भाषा में है, और दीवान अमर नाथ की रचना है। लेखक ने इस पुस्तक को प्रथम बार सन् १९२८ में प्रकाशित किया था।

(३) उम्दतुत्तवारीख़—अर्थात् रोज़नामचा महाराजा रंजीतसिंह। मुंशी सोहन लाल लिखित। यह पुस्तक फ़ारसी भाषा में, महाराजा के इति-हास के लिए एक मूल्यवान ख़ज़ाना है।

(४) फ़तेहनामा मुल्तान और पेशावर युद्ध—लेखक गणेश दास पिंगल। यह पुस्तक हिंदी भाषा के छंदों में है, और अभी तक हस्तलिखित ही है।

(५) तवारीख़ पंजाब—लेखक, बूटो शाह—यह पुस्तक भी फ़ारसी भाषा में है और अभी तक हस्तलिखित रूप में है।

(६) तारीख़ महाराजा रंजीतसिंह—लेखक, प्रिंसप साहब। यह पुस्तक सन् १८३४ ई० में महाराजा के जीवन-काल में प्रकाशित हुई थी।

(७) सिक्खों का इतिहास—लेखक, मैकग्रेगर साहब। यह पुस्तक सन् १८४६ ई० में प्रकाशित हुई थी।

(८) सिक्खों का इतिहास—लेखक, कनिंगहम साहब। यह पुस्तक सन् १८४९ में प्रकाशित हुई थी।

(९) महाराजा रंजीतसिंह का दरबार—लेखक, विलियम ऊज़बर्न। यह पुस्तक सन् १८४० ई० में प्रकाशित हुई थी।

(१०) पंजाब का इतिहास—लेखक, लैफ़्टनेंट स्टैनबेक। यह पुस्तक सन् १८४५ में प्रकाशित हुई थी।

(११) मेटकाफ़ साहब का पत्र-व्यवहार—लेखक, के साहब।

(१२) फ़ारेस्टर साहब का यात्रा-विवरण—यह पुस्तक सन् १७९८ ई० में प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तक में सिख मिस्लों के कुछ अपनी आँखों से देखे हाल वर्णन किए गए हैं।

(१३) अलेग्जैंडर बर्नज़ का यात्रा-विवरण—यह पुस्तक सन् १८३९ में प्रकाशित हुई थी।

(१४) सिख और अफ़ग़ान—लेखक, शहामत अली। शहामत अली सन् १८३६ ई० के लगभग अंग्रेज़ी मिशन के साथ अफ़ग़ानिस्तान जाता हुआ महाराजा के पास लाहौर में कुछ समय के लिए ठहरा था। दो-एक वर्ष पीछे उस ने अपना यात्रा-विवरण अंग्रेज़ी भाषा में प्रकाशित किया था।

(१५) मोरक्राफ़्ट साहब का यात्रा-विवरण—मिस्टर मोरक्राफ़्ट सन् १८१९ ई० के लगभग तिब्बत और लद्दाख़ जाता हुआ लाहौर में ठहरा

था। इस ने डायरी अर्थात् रोज़नामचे के रूप में अपनी यात्रा का विवरण लिखा था। जो कि बाद में मिस्टर विल्सन ने प्रकाशित किया था।

(१६) बैरन ह्यूगल साहब का यात्रा-विवरण—मिस्टर ह्यूगल सन् १८३२ के लगभग कश्मीर जाता हुआ रास्ते में महाराजा के पास कुछ समय के लिए ठहरा था। इस का यात्रा-विवरण जर्मन भाषा में प्रकाशित हुआ था, जिसे बाद में मिस्टर जरोस ने अंग्रेज़ी भाषा में अनुवादित किया।

(१७) डाक्टर हांग बर्गर का यात्रा-विवरण—डाक्टर हांग बर्गर हिंदुस्तान में पैंतीस वर्ष तक रहा। वह महाराजा के दरबार में डाक्टर के पद पर था और साथ ही बारूद ख़ाना का अफ़सर भी था।

(१८) सर हेनरी फ़ीन का यात्रा-विवरण—इस पुस्तक में सर हेनरी फ़ीन की पाँच वर्ष की नौकरी के हाल दर्ज हैं। सर हेनरी फ़ीन ने लार्ड आकलैंड गवर्नर-जनरल के साथ महाराजा से भेंट की थी।

(१९) पंजाब चीफ़्स—लेखक, सर लैपल ग्रिफ़न। यह पुस्तक पहले-पहल सन् १८६५ में प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तक में महाराजा रंजीतसिंह के दरबारियों और सिख सरदारों के हाल विस्तार के साथ लिखे हुए हैं।

(२०) महाराजा रंजीतसिंह—लेखक, सर लैपल ग्रिफ़न।

(२१) तवारीख़ पंजाब—लेखक, सैयद मुहम्मद लतीफ़। सन् १८९२ ई० में यह लिखी गई।

(२२) डाक्टर लोगन और महाराजा दिलीप सिंह—यह पुस्तक लेडी लोगन ने सन् १८९० ई० में प्रकाशित की थी।

(२३) सिक्खों और अंग्रेज़ों का युद्ध—लेखक, सर जी गफ़।

(२४) आर्मी अव् रंजीतसिंह—रंजीतसिंह की फ़ौज के संबंध में यह पाँच लेखों का संग्रह है, जो कि लेखक ने 'जर्नल अव् इंडियन हिस्ट्री' (मद्रास) में फ़रवरी सन् १९२२ ई० से सन् १९२६ ई० तक में प्रकाशित किया था।

(२५) यूरोपियन एडवेंचरर्स इन नार्दन इंडिया—यह पुस्तक अभी थोड़े दिन हुए प्रकाशित हुई है।

(२६) तवारीख़ पंजाब—लेखक, राय बहादुर मुंशी कन्हैया लाल। यह पुस्तक उर्दू भाषा में है और अधिकांश उपर्युक्त अंग्रेज़ी पुस्तकों पर आश्रित है।

(२७) तवारीख़ महाराजा रंजीतसिंह —लेखक, भाई प्रेम सिंह। यह पुस्तक पंजाबी भाषा में, गुरमुखी अक्षरों में हाल में प्रकाशित हुई है। भाई प्रेम सिंह जी ने पर्याप्त परिश्रम और खोज के बाद अपनी पुस्तक प्रकाशित की है।

